उत्तर—पश्चिमी—भारत

में

स्त्री-शक्ति-जागरण

का

मूर्त-रूप

कन्या महाविद्यालय जालन्धर

लेखक

शादीराम जोशी एम० ए०

पूर्व प्रिंसीपल तथा संस्कृत प्राध्यापक

कन्या महाविद्यालय जालन्धर।

प्रकाशक

प्रिंसिपल रामचन्द्र जावेद

मंत्री-कन्या महाविद्यालय जालन्धर।

प्रकाशक :
रामचन्द्र जावेद
मंत्री-कन्या महाविद्यालय जालन्धर

प्रथम संस्करण—5000
मूल्य : दस रुपये

मुद्रक :
पेटैन्ट प्रिंटिंग प्रैस
पुरानी मण्डी रोड
जालन्धर शहर।

एक चिर-साध पूर्ण हुई

कन्या-महाविद्यालय के सम्बन्ध में मेरी सदा से यह धारणा रही है कि यह केवल एक संस्था ही नहीं प्रत्युत एक आन्दोलन है। इसी कारण मेरी चिर-काल से यह उत्कट इच्छा रही है कि इसके लगभग एक शताब्दी के जीवन को जीवित रखने के लिए इस का इतिहास संकलित करके प्रकाशित किया जाए। यह काम केवल वही लोग कर सकते थे जिनका आरम्भ से इस संस्था के साथ सम्बन्ध चला आ रहा हो। मेरी अपनी सम्मत्ति में राय बहादुर दीवन बद्रीदास जी और कुमारी लज्जावती जी दो ऐसे महान् व्यक्ति थे जो यह काम कर सकते थे। राय बहादुर जी के जीवन-काल में ही मैंने इस दिशा में अपने प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये थे, किन्तु उनके निधन के पश्चात् तो कुमारी जी को मैंने निरन्तर यह प्रार्थना करनी आरम्भ कर दी। अपनी गत वर्ष की बीमारी में उन्होंने भी कई बार यह अनुभव किया कि हमें विद्यालय की स्मृतियां अपने साथ नहीं ले जानी चाहिएं। इसी कारण कुछ स्वस्थ होने पर उन्होंने स्वयं मुझ से कहा कि उनसे विद्यालय के सम्बन्ध में जो कुछ पूछना है पूछ लिया जाए।

अब मेरे लिए यह समस्या खड़ी हुई कि कौन घटनाओं को संकलित करे और उन्हें इतिहास का रूप दे। इस के लिए मुझे एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो न केवल स्वयं लेखक हो प्रत्युत विद्यालय से भी उसका निकट का और पुराना सम्बन्ध हो। इस के लिए मैंने विद्यालय के पूर्व प्रिंसिपल तथा संस्कृत के प्राध्यापक श्री पं० शादीराम जी जोशी से प्रार्थना की जो उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर ली। उन्होंने आचार्या जी से संकेत पाकर विद्यालय के इतिहास को जो रोचक और प्रेरक रूप दिया है उसके लिए उनकी अपनी प्रतिभा तथा विद्यालय के प्रति उनके स्नेह और श्रद्धा की जितनी प्रशंसा की जाए, कम है। मेरी अपनी सम्मति में वे विद्यालय की आत्मा को समझते हैं और इसी कारण उसके आधार पर वे उसके शारीरिक विकास की उपयुक्त रूप रेखा भी दे पाए हैं। मैं जहां उनके प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूं वहां विद्यालय के इतिहास की मूल स्रोत पूज्या आचार्या जी के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। मुझे सन्तोष है कि उन के जीवन में ही हमारी यह चिर-साध पूर्ण हो रही है।

विद्वान-लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक के चार खण्ड किये हैं। पहले खण्ड में उन्होंने भारतीय संस्कृति और उस में नारियों के स्थान की विवेचना करते हुए उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में आर्य समाज के भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करने की

चर्चा की है और आर्य समाज के स्त्री-शिक्षा आन्दोलन का संक्षिप्त वर्णन किया है। दूसरे खण्ड में उन्होंने विद्यालय के संस्थापक ला० देवराज जी का संक्षिप्त जीवन दिया है। तीसरे खण्ड में विद्यालय का इतिहास और चौथे में विद्यालय की कुछ सेवा-भावी स्नातिकाओं के निजी संस्मरण दिए हैं। संक्षेप में प्रस्तुत पुस्तक जहां विद्यालय का एक रोचक इतिहास है वहां इस संस्था की आधारभूत नैतिक और धार्मिक भावनाओं की भी परिचायक है।

मुझे विश्वास है कि इसके अध्ययन से विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने वाली नई पीढ़ी की बेटियों को उचित मार्ग-प्रदर्शन मिलेगा। प्रबन्ध-कर्तृ-सभा की ओर से उन के लिए हमारा यह दूसरा उपहार है।

रामचन्द्र जावेद

दो शब्द

पिछली एक शताब्दी देश के इतिहास में एक निहायत महत्त्वपूर्ण शताब्दी है। इस शताब्दी में भारत की लग-भग एक हज़ार वर्षों से सोई हुई प्रतिभा ने अंगड़ाई लेकर, देखते ही देखते, एक प्रबुद्ध जागरण के रूप तक पहुंचने की सभी मंजिलें तै कर लीं। पंजाब यानि उत्तर-पश्चिमी भारत में यह जागरण आर्य-समाज की स्थापना के साथ आरम्भ हुआ और एक लम्बे समय तक, चालीस पच्चास वर्षों तक, इस प्रदेश में आर्य समाज का युग रहा। आर्य समाज के कार्यों में स्त्री-शक्ति-जागरण का कार्य विशेष महत्त्व का है और कन्या महाविद्यालय को इस जागरण का मूर्त-रूप रहने का अवसर मिला है। 1890 से लेकर, जब किसी कन्या के हाथ में अक्षर-दीपिका देखकर उसकी सगाई टूटने तक की नौबत आ सकती थी, आज 1980 तक का ज़माना इस संस्था ने देखा है। इसके महान् संस्थापक ला० देवराज के मार्ग-दर्शन में इस संस्था ने, देश की जन-जागृति के, शायद सब से महत्त्व-पूर्ण अंग, नारी-जीवन-जागृति में एक क्रांतिकारी कार्य किया।

बहुत आवश्यकता थी कि इस संस्था के इतिहास के रूप में इस महान् कार्य की स्मृति को सुरक्षित किया जाए। बहुत वर्ष पहले प्रसिद्ध लेखक श्री सत्यदेव विद्यालंकार द्वारा ला० देवराज का एक जीवन-चरित लिखा गया। वह बहुत उपयोगी रहा, परन्तु उसका रूप कुछ दूसरा था। मुद्दत से मेरी इच्छा थी कि संस्था के इतिहास के रूप में एक पुस्तक लिखी जाए, जो ऐतिहासिक जानकारी देने के साथ-साथ देश की वर्तमान पीढ़ी को, विशेषत: विद्यालय की वर्तमान छात्राओं को, जीवन के आदर्शों के प्रति प्रेरणा दे।

ला० देवराज, जिन्हें हम प्यार और आदर से 'चाचा जी' पुकारती थीं हमारे पिता तो थे ही, साथ माता भी थे। 1903 से लेकर, 1935 में उनकी मृत्यु तक, मुझे उन से प्यार मिला और प्रेरणा मिली। उन्हीं की प्रेरणा से हम, उनकी छात्राओं में, एक समाज-क्रान्ति की भावना जागृत हुई, जिस के आधार पर हम भी कुछ कार्य कर पाईं। ऐसे ऋषि-तुल्य महापुरुष की स्थापित की गई और परवान चढ़ाई गई संस्था का इति-हास समाज के लिए उपयोगी होना ही चाहिए।

लज्जावती

लेखक की भूमिका

किसी पुस्तक के लेखक का पुस्तक के विषय के प्रति एक दृष्टिकोण होता है, पुस्तक के विषय के सम्बन्ध में उसकी एक मानसिक पृष्ट-भूमि होती है, विषय के प्रति उसकी हार्दिक भावनाएं और प्रेरणाएं होती हैं। इन बातों के जान लेने से पुस्तक के विषय को ठीक से समझने में आसानी होती है। लेखक की भूमिका का यही तात्पर्य है।

कन्या महाविद्यालय के साथ इस लेखक का एक बहुत पुराना, लगभग पैंसठ वर्ष का, एक भावात्मक सम्बन्ध है जिसे लेखक ने तीस पैंतीस वर्ष तक नहीं पहचाना था। 1920 से दो-तीन वर्ष पहले का ज़माना होगा कि एक बार लेखक, अपने बचपन में, तेरह-चौदह वर्ष की आयु में, अपने एक सम्बन्धी के साथ, उस ज़माने की प्रचलित सवारी, यक्के की, अनुमानत: आगे की सीट पर बैठा आदमपुर से जालन्धर आ रहा था। आदमपुर को जालन्धर से मिलाने वाली उस ज़माने की सड़क वही थी जो आज जंडू सिंघा गांव से सीधी जालन्धर आती है और जो रामामंडी होकर आने वाली सड़क के बन जाने से एक साधारण ग्रामीण सी सड़क रह गई है। जालन्धर से लगभग एक मील की दूरी पर पहुंच कर यह सड़क, वहाँ से लगभग आध मील पर, टांडा रोड पर स्थित, कन्या महाविद्यालय के बराबर से गुज़रती है। उस ज़माने में, इस स्थान के और कन्या महाविद्यालय के दर्मियान न तो आबादी थी और न कन्या महाविद्यालय के पीछे के बाग के, दृष्टि को रोकने वाले, ऊंचे सफेदे के वृक्ष होंगे। उस तांगे के इस स्थान पर पहुंचने पर लेखक की बचपन की आंखों में, दाईं तरफ, काफी दूर दिखाई दे रही, एक ऊंची धनुषाकार, लाल से रंग की, काफी लम्बी मेहराब की आकृति, एक सुन्दर, आकर्षक और स्थायी चित्र बना गई, जो चित्र मानस-पटल पर अब तक तरो-ताज़ा और सुरक्षित है। गांव में रहने वाले बच्चे को, जिस ने गांव ही के घर और मकान देखे थे, दूर पर दिखाई दे गई वह मेहराब की धनुषाकार आकृति एक दिव्य चित्र मालूम हुई। तीस पैंतीस वर्ष बाद, विद्यालय में रहते और कार्य करते हुए, विद्यालय के किलानुमा छात्रावास के 'फ्रन्ट विंग' पर, दूसरी मंजिल के ऊपर बनी हुई, धनुषाकार मेहराब जैसी आकृति को, ध्यान-पूर्वक देखते हुए, बचपन के मानस-पटल पर सुरक्षित उस दिव्य चित्र का ठोस आधार सामने आ गया। परिपक्व आयु के प्रबुद्ध मानस ने अन्त:करण की चित्र-शाला के उस पुराने चित्र के आधार को पहचान लिया। विद्यालय के विकास और निर्माण के इतिहास के अध्ययन से लेखक को यह मालूम हो चुका था कि

1913 तक छात्रावास का आगे का विंग और दूसरी मंजिल के तीन कमरे भी, जिनके ऊपर यह धनुषाकार आकृति है, बन चुके थे। उस घटना के समय विद्यालय के पीछे के बाग् के ऊंचे वृक्ष नहीं होंगे या बहुत छोटे होंगे, जिस से उस नई बनी इमारत का ऊपर का, चोटी का भाग, दूर से स्पष्ट दिखाई देता होगा।

1923 से 1927 तक जालन्धर में स्कूल और कालिज की अपनी शिक्षा के दौरान, अपने शिक्षा-क्षेत्र से अलग, शहर के दो ही समारोहों के साथ लेखक का परिचय था, 'हरिवल्लभ' का संगीत-मेला और कन्या महाविद्यालय का वार्षिक-उत्सव। आर्य-समाज के स्कूल और कालिज में शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद उस समय आर्य-समाज के इतिहास तथा उसकी गति-विधियों से गहरा परिचय नहीं था। उस समय गांधी-युग आरम्भ हो चुका था और लेखक के हृदय पर 1920-21 से गांधी-जीवन का एक प्रभाव था। कन्या महाविद्यालय के वार्षिक उत्सव में अपने उस प्रभाव के अनुकूल वातावरण होने से लेखक को एक मानसिक समाधान मिलता था। एक उत्सव पर छात्राओं के द्वारा स्टेज पर दिखाए गए एक सादा से राष्ट्रीय एकांकी नाटक की स्मृति अब तक लेखक के अन्तःकरण में सुरक्षित है।

उन दिनों कन्या महाविद्यालय की प्रतिभा का दर्शन, शहर के 'गांधी मंडप' नाम के स्थान पर, और कभी-कभी अन्यत्र भी, प्रसिद्ध कांग्रेसी नेताओं के व्याख्यानों के समय होता था। उन राष्ट्रीय जलसों में उस समय का राष्ट्र-गान, 'बन्दे-मातरम्' तथा अन्य राष्ट्रीय-गान गाने वाली लड़कियां सामान्यतः कन्या महाविद्यालय ही की छात्राएं होती थीं। ऐसे समारोहों में कभी-कभी आचार्या कु० लज्जावती को भी, अपनी ओजस्वी वाणी में, बोलते या किसी अंग्रेज़ी में बोलने वाले वक्ता का, वाक्य के साथ वाक्य, अनुवाद करते सुनने का अवसर भी मिलता था।

1932-33 में लाहौर में अपनी पढ़ाई समाप्त करके लेखक के जालन्धर में रहने के समय, अधिक प्रबुद्ध मानस के साथ, शहर की गति-विधियों को देखने के समय भी, विद्यालय का प्रभाव शहर के सामाजिक जीवन में प्रत्यक्ष दिखाई देता था। ला० देवराज जी के साथ प्रत्यक्ष बात-चीत का अवसर तो कभी नहीं मिला, परन्तु एक बार आर्य-समाज अड्डा होशियारपुर के पास से गुज़रते हुए लेखक को, सामने से आ रहे उस महा पुरुष को गौर से देखने का अवसर ज़रूर मिला। लाला जी लेखक को जानते नहीं थे परन्तु पास से गुज़रते हुए ध्यान-पूर्वक देख रहे थे मानो पहचानने की कोशिश कर रहे हों। उनकी वह दृष्टि अभी तक लेखक के सामने है और मानो उसे यह सब लिखने की प्रेरणा दे रही है।

1935 में लेखक के, स्थानीय डी. ए. वी. कालिज में, प्रध्यापक नियुक्त होने के वर्ष लाला जी का देहान्त हुआ। उस समय से लेखक का निवास प्रायः कोट किशन चन्द के आस-पास, यानी कन्या महाविद्यालय के प्रभाव-क्षेत्र ही में रहा। संस्था के राष्ट्रीय वातावरण का सौरभ इर्द-गिर्द की हवा में महसूस होता ही था। संस्था के

विशाल आँगन में गड़े ऊंचे स्तम्भ पर लहराता राष्ट्र-ध्वज दूर से दिखाई देता था। 1939 से आरम्भ हुए अंग्रेज़ के दमन-चक्र के समय, राष्ट्रीय ध्वज के दर्शन भी दुर्लभ हो गए थे, तब भी विद्यालय के सामने से सड़क पर सैर के लिए जाते आते हुए राष्ट्र-ध्वज के दर्शन और 'बन्दे-मातरम्' गान के श्रवण से लेखक के हृदय में एक आशा पैदा होती थी।

1942 के मई मास में लेखक ने गांधी जी के रचनात्मक कार्य के क्षेत्र में जाने की दृष्टि से अपना अध्यापन-कार्य छोड़ा। परन्तु कुछ ही मास बाद, अगस्त में, आरम्भ हुए 'भारत-छोड़ो' आन्दोलन के फल-स्वरूप रचनात्मक कार्य की योजनाएं कार्यान्वित न हो सकीं। कई वर्षों से लेखक के अन्त:करण में, अपने मानस के अनुरूप किसी राष्ट्रीय शिक्षा-संस्था में, कार्य करने की आकांक्षा थी। अब वह इच्छा बर आई। 1941 में जालन्धर में दोआबा कालिज की स्थापना हुई। इस की स्थापना कन्या महाविद्यालय ही की प्रबन्ध-कर्तृ-सभा ने की थी और दोनों संस्थाओं का सम्पर्क और सहयोग था। कई वर्षों तक कन्या महाविद्यालय का कालिज-विभाग दोआबा कालिज ही का गर्ल्ज़ सैक्शन रहा। 1943 में लेखक की नियुक्ति दोआबा कालिज में हो गई।

इस नियुक्ति में लेखक को एक आश्चर्य भी नज़र आया। अपनी गांधी-दृष्टि और अपने गांधी-क्षेत्र के सम्पर्क के कारण लेखक का नाम सरकार की ब्लैक-लिस्ट में था ही और एक से अधिक बार लेखक के घर की तलाशी भी हो चुकी थी। शहर के इसी भाग में, दोआबा कालिज और कन्या महाविद्यालय के क्षेत्र में, रिहायश के कारण, प्रबन्ध-कर्तृ-सभा के कई सदस्य यह सब जानते भी होंगे। और फिर दोआबा कालिज के प्रिंसीपल, राय साहिब मुकन्द लाल धवन, एक 'राय साहिब' थे और प्रबन्ध-कर्तृ-सभा के अध्यक्ष, राय बहादुर बदरीदास, एक 'राय बहादुर' थे। बाद में मुझे मालूम हुआ कि इन दोनों महानुभावों की वे उपाधियां उनकी किसी सरकार-परस्ती के कारण नहीं थीं, बल्कि उनकी जन-सेवा के फल-स्वरूप, बिना चाहे और मांगे, प्रदान की गई थीं। राय साहिब मुकन्द लाल धवन की सेवा शिक्षा के क्षेत्र में मान्य की गई थी और राय बहादुर बदरीदास की 'कोप्रेटिव बैंकिंग' के क्षेत्र में।

नियुक्ति के प्राय: साथ ही आचार्या कु० लज्जावती ने लेखक को कन्या महा-विद्यालय के कैम्पस ही में रहने का स्थान भी दे दिया। कुछ वर्ष तक, 1945 में कन्या महाविद्यालय के, स्वतन्त्र रूप में विश्व-विद्यालय के साथ सम्बन्धित होने तक, लेखक का नाम यद्यपि दोआबा कालिज के स्टाफ पर था, परन्तु अध्यापन-कार्य, मुख्य रूप में कन्या महाविद्यालय ही में था, क्योंकि, जैसे कि पहले कहा जा चुका है, तब तक विद्यालय का कालिज विभाग दोआबा कालिज ही का 'गर्ल्ज़ सैक्शन' था। विद्यालय के विश्व-विद्यालय के साथ स्वतन्त्र रूप में सम्बन्धित हो जाने पर लेखक अपनी रुचि और सुविधा के कारण विद्यालय ही के स्टाफ पर आ गया।

विद्यालय का जीवन लेखक के लिए एक नया और प्रिय अनुभव था। अपनी गांधी-दृष्टि और राष्ट्रीय भावनाओं के अनुरूप वातावरण पाकर लेखक को जीवन में एक धन्यता का अनुभव हुआ। देर से लेखक के अन्तःकरण में प्रकृति के सामीप्य में रहने की, एक आश्रम-जीवन बिताने की, आकांक्षा थी। शहर के गली मुहल्लों के वातावरण से निकल कर विद्यालय के आश्रम जैसे वातावरण में आना एक अति सुखद अनुभव था। उस समय विद्यालय के आस-पास दूर तक कोई आबादी नहीं थी। शहर से आने वाली सड़क, टांडा रोड, टूटी-फूटी थी, इस पर तांगे और छकड़े चलते थे। आज की तरह बसों और ट्रकों की 'ट्रैफिक' का नाम तक नहीं था। विद्यालय के गेट के अन्दर प्रवेश करना मानो एक नई शान्त और स्वच्छ दुनिया में प्रवेश करना था। न कहीं धुंआ था, न कहीं गर्दो-गुबार था और न कहीं 'ट्रैफिक' का कोलाहल था।

उस समय विद्यालय अपने नए रूप में विकसित होने लगा था, परन्तु अभी पुरानी परम्पराएं सुरक्षित थीं। छात्राएं कम थीं परन्तु उनके जीवन में एक राष्ट्रीय आदर्शवाद नज़र आता था। छात्रावास की छात्राएं सामान्यतः खादी पहनती थीं। उनकी बातचीत में एक गहराई दिखाई देती थी। विद्यालय के अपने निवास-स्थान में रिहायश करने के कुछ ही दिन बाद, गुरु-पूर्णिमा के दिन, जब आश्रम की कुछ खादी-वेष-धारी छात्राएं गुरु-पूजन की परम्परा के निमित्त से लेखक के घर में पकवान और फल आदि देने आईं तो लेखक को आश्चर्य हुआ। बाद में विद्यालय का विकास जानने पर लेखक को विद्यालय की इस पुरानी परम्परा का, जो वास्तव में भारत के प्राचीन शिक्षा-क्षेत्र की परम्परा है, परिचय मिला।

विद्यालय में आकर लेखक को अतीव अपनेपन की अनुभूति हुई। लेखक के अपने अन्तःकरण और जीवन में जो राष्ट्रीय भावनाएं थीं वही इस संस्था के जीवन और वातावरण में थीं। लेखक को राष्ट्रीय विषयों पर बोलने का शौक था। उस शौक का संस्था में प्रयोग होने लगा। आचार्या जी ने संस्था की मासिक पत्रिका के लिए लेखक का सुझाया नाम स्वीकृत किया और इस के मुख्य, हिन्दी विभाग के, सम्पादन की जिम्मेवारी लेखक को सौंप दी। छात्राओं में लिखने की रुचि जागृत करने के लिए लेखक के मार्ग-दर्शन में 'लेखिका-परिषद्' की स्थापना की गई। संस्था की साहित्य-परिषद् का मार्ग-दर्शन भी प्रायः इस लेखक का रहा। इस सब कार्य-क्रम के संचालन के फल-स्वरूप लेखक की अपनी साहित्य-प्रतिभा का विकास भी होता गया।

विद्यार्थी-जीवन से लेखक में थोड़ी-बहुत काव्य-प्रतिभा थी जिसे तब तक विकास का अवसर नहीं मिला था। एक तो विद्यालय का स्वच्छ और शान्त वातावरण, दूसरे राष्ट्रीय आदर्शवाद और उस पर आचार्या जी की प्रेरणा। जब से आचार्या जी को मेरी काव्य-प्रतिभा का पता लगा, तब से उन्हें संस्था की परम्पराओं को एक सुन्दर मूर्त-रूप देने की मानो एक दिशा मिल गई। इस सम्बन्ध में संस्था की परम्पराओं के अध्यायों में विस्तार से लिखा गया है। संस्था में जो पुरानी सांस्कृतिक परम्पराएं

चली आती थीं उन को एक नया प्रभावशाली रूप देने के लिए लेखक को कविताएं लिखने की स्वत: प्रेरणा होती थी। आचार्या जी के प्रोत्साहन तथा मार्ग-दर्शन से भिन्न-भिन्न अवसरों के अनुरूप कविताओं की रचना हुई, जिन में से कुछ पुस्तक में यथा-स्थान दी गई हैं।

अंग्रेज़ी राज्य में, देश की सरकारी, और सरकार तथा विश्व-विद्यालय से सम्बन्धित संस्थाओं में, राष्ट्रीय विषयों पर बोलने और राष्ट्रीय समारोहों के आयोजन के बारे में पाबन्दी थी, या कम से कम भय और संकोच रहता था। परन्तु लेखक को दोआबा कालिज में आते ही एक नया अनुभव हुआ। 1943 में गांधी जी ने आग़ाखां महल की अपनी नज़रबन्दी के दौरान, एक लम्बा अनशन किया और एक स्टेज पर उनकी हालत इतनी नाज़ुक हो गई कि किसी भी समय उनके जीवन के अन्त का समाचार आता नज़र आ रहा था। इंग्लैंड के प्रधान-मन्त्री चर्चिल ने पार्लियामैंट में पूछे गए एक प्रश्न के उत्तर में कह दिया था कि 'चन्दन की लकड़ी और घी तैयार रखे गए हैं।' उस अवसर पर स्थान-स्थान पर गांधी जी के जीवन के लिए प्रार्थनाएं हुई थीं। दोआबा कालिज के हाल में भी एक ऐसी भव्य सभा, प्रिंसिपल राय साहिब मुकन्द लाल धवन की अध्यक्षता में हुई, जिस में इस लेखक को प्रार्थना के रूप में अपने अन्त:करण की वेदना प्रकट करने का अवसर मिला। सभा के तत्क्षण बाद प्रिंसिपल साहिब ने लेखक को अपने आफिस में बुला कर, अपने मितभाषी स्वभाव के अनुरूप, केवल पांच छ: शब्द कहे, 'शार्ट ऐंड स्वीट। आई कांग्रैचुलेट यू' और इतने में सब कुछ कह दिया। जब नए नए खुले, लड़कों के उस सामान्य कालिज का, जिस के प्रिंसीपल, गवर्नमैंट कालिज से सेवा-मुक्त एक पैंशनर और 'राय साहिब' की उपाधि धारण करने वाले व्यक्ति थे, ऐसा स्वतन्त्र वातावरण था तो कन्या महाविद्यालय की तो बात ही क्या थी, जिस का जन्म ही राष्ट्रीय और सांस्कृतिक आदर्शों के लिए हुआ था और जो कांग्रेस की राष्ट्रीयता में सहयोगी रहा था। दोआबा कालिज के उस अनुभव से लेखक ने देखा और बाद में चिंतन तथा इतिहास के अध्ययन से इस बात की पुष्टि हो गई, कि आर्य समाज के गुरुकुल विभाग की संस्थाओं में राष्ट्रीयता की गहरी भावनाएं थीं। गुरुकुल कांगड़ी और कन्या महाविद्यालय जालन्धर इन भावनाओं के प्रतीक रहे थे।

विद्यालय के ऐसे वातावरण में देश के राष्ट्रीय पर्वों को मनाने का एक चाव रहता था, देश के राष्ट्रीय महापुरुषों को संस्था में निमंत्रित करने का कोई अवसर नहीं जाने दिया जाता था। देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात्, देश के प्राय: सभी राष्ट्रपति और प्रधान-मन्त्री किसी न किसी समय, संस्था में पधारे। देश के ऊंचे राष्ट्रीय क्षेत्र में आचार्या जी की ऐसी पहुंच थी कि कोई उन्हें 'न' नहीं कह सकता था।

यह लेखक, अपनी जवानी की आयु में, केवल अड़तीस वर्ष की आयु में, संस्था में आया और बुढ़ापे में, बेसठ वर्ष की आयु में सेवा-मुक्त हुआ। इस पच्चीस वर्ष के अरसे में उसे संस्था की तरफ से पूरा आदर और विश्वास मिला, छात्रावास तक में,

आवश्यतानुसार जाने-आने की छूट भी रही। सायंकाल की छात्राओं की प्रार्थना-सभा में लेखक का सहयोग रहता ही था।

विद्यालय-भूमि में अपने लगभग पच्चीस वर्ष के निवास में से लेखक ने एक लम्बा समय छात्रावास के पीछे के तपोवन जैसे बाग़ में बने एक मकान में गुज़ारा। यह एकांत स्थान लेखक की प्रकृति के बिल्कुल अनुरूप था। उस ज़माने की रचित लेखक की बहुत सी कविताएं उसी तपोवन में घूमते और विचरते हुए गुनगुना कर, रची गई हैं। अपने उस निवास-स्थान को यह लेखक पृथ्वी का सब से सुन्दर और पवित्र स्थान मानता था। इस मान्यता के लिए उस की अपनी एक युक्ति थी। 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' के अनुसार हिंदोस्तां सर्व-श्रेष्ठ हो ही गया। हिंदोस्तान की प्राचीन आध्यात्मिक संस्कृति इस मान्यता का ठोस आधार है। यह पंजाब प्रदेश वेदों की, गीता की और गुरुओं की भूमि होने के कारण तथा अपनी इतिहास-प्रसिद्ध वीरता और वर्तमान प्रफुल्लता के कारण हिन्दोस्तान में सर्वोत्तम प्रदेश कहा जा सकता है। पंजाब प्रदेश में दोआबा का इलाका, सतलुज और ब्यास के बीच का इलाका, देश के वर्तमान सांस्कृतिक और राष्ट्रीय जागरण में, प्रदेश में अग्रणी रहा है। आर्य समाज के तीनों महान नेता, महात्मा हंसराज, ला० देवराज और स्वामी श्रद्धानन्द इसी इलाके की उपज हैं। क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रतीक और नव-युवकों के हृदय-सम्राट सरदार भगत सिंह इसी प्रदेश में पैदा हुए। इस तरह यह इलाका पंजाब का सर्व-श्रेष्ठ इलाका कहला सकता है। इस इलाके में, वर्तमान काल में, सबसे अधिक सतत सेवा और तपस्या, जालन्धर शहर में हुई। इस सेवा और तपस्या के मूर्त-रूप ला० देवराज का 'देव-निवास' नाम का निवास-स्थान, जहां वे अक्सर एकांतवास के लिए आकर रहते थे, इसी तपोवन के एक कोने में है। इस युक्ति-शृंखला से और अपने हृदय की भावना से लेखक को अपने इस निवास-स्थान को दुनिया में सर्व-श्रेष्ठ स्थान मानने में कोई संकोच नहीं था।

अपने जीवन-कार्य के केन्द्र, इस संस्था के सम्बन्ध में लिख कर, इस की ऐतिहासिक भूमिका का वर्णन करके, इस संस्था में हुए सांस्कृतिक और राष्ट्रीय कार्य का चित्रण करके और इस यज्ञ में यजन करने वाले महानुभावों के गुणों का वर्णन करके लेखक को संतोष और आनन्द मिला है। मनुष्य के सभी गुण आत्मा और परमात्मा के ऐश्वर्य हैं। उन का वर्णन भगवान् ही के गुणों का वर्णन है। गुणों के दर्शन और मनन से मनुष्य के उन गुणों का विकास होता है। पुस्तक को पढ़ने वालों में, विशेषत: संस्था की छात्राओं में, इन गुणों का विकास हो, यही दृष्टि लेखक के सामने रही है।

आज स्त्री-शक्ति-जागरण अपने ज्वलंत रूप में प्रकट है। जिस जागृति-ज्योति को ला० देवराज जी ने लगभग एक शताब्दी पहले प्रज्वलित किया था, आज के स्वतन्त्र भारत में उस का प्रकाश दिशाओं को आलोकित कर रहा है। वर्तमान भारत में स्त्री

आवश्यतानुसार जाने-आने की छूट भी रही। सायंकाल की छात्राओं की प्रार्थना-सभा में लेखक का सहयोग रहता ही था।

विद्यालय-भूमि में अपने लगभग पच्चीस वर्ष के निवास में से लेखक ने एक लम्बा समय छात्रावास के पीछे के तपोवन जैसे बाग़ में बने एक मकान में गुज़ारा। यह एकांत स्थान लेखक की प्रकृति के बिल्कुल अनुरूप था। उस ज़माने की रचित लेखक की बहुत सी कविताएं उसी तपोवन में घूमते और विचरते हुए गुनगुना कर, रची गई हैं। अपने उस निवास-स्थान को यह लेखक पृथ्वी का सब से सुन्दर और पवित्र स्थान मानता था। इस मान्यता के लिए उस की अपनी एक युक्ति थी। 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' के अनुसार हिंदोस्तां सर्व-श्रेष्ठ हो ही गया। हिंदोस्तान की प्राचीन आध्यात्मिक संस्कृति इस मान्यता का ठोस आधार है। यह पंजाब प्रदेश वेदों की, गीता की और गुरुओं की भूमि होने के कारण तथा अपनी इतिहास-प्रसिद्ध वीरता और वर्तमान प्रफुल्लता के कारण हिन्दोस्तान में सर्वोत्तम प्रदेश कहा जा सकता है। पंजाब प्रदेश में दोआबा का इलाका, सतलुज और ब्यास के बीच का इलाका, देश के वर्तमान सांस्कृतिक और राष्ट्रीय जागरण में, प्रदेश में अग्रणी रहा है। आर्य समाज के तीनों महान नेता, महात्मा हंसराज, ला० देवराज और स्वामी श्रद्धानन्द इसी इलाके की उपज हैं। क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रतीक और नव-युवकों के हृदय-सम्राट सरदार भगत सिंह इसी प्रदेश में पैदा हुए। इस तरह यह इलाका पंजाब का सर्व-श्रेष्ठ इलाका कहला सकता है। इस इलाके में, वर्तमान काल में, सबसे अधिक सतत सेवा और तपस्या, जालन्धर शहर में हुई। इस सेवा और तपस्या के मूर्त-रूप ला० देवराज का 'देव-निवास' नाम का निवास-स्थान, जहां वे अक्सर एकांतवास के लिए आकर रहते थे, इसी तपोवन के एक कोने में है। इस युक्ति-शृंखला से और अपने हृदय की भावना से लेखक को अपने इस निवास-स्थान को दुनिया में सर्व-श्रेष्ठ स्थान मानने में कोई संकोच नहीं था।

अपने जीवन-कार्य के केन्द्र, इस संस्था के सम्बन्ध में लिख कर, इस की ऐतिहासिक भूमिका का वर्णन करके, इस संस्था में हुए सांस्कृतिक और राष्ट्रीय कार्य का चित्रण करके और इस यज्ञ में यजन करने वाले महानुभावों के गुणों का वर्णन करके लेखक को संतोष और आनन्द मिला है। मनुष्य के सभी गुण आत्मा और परमात्मा के ऐश्वर्य हैं। उन का वर्णन भगवान् ही के गुणों का वर्णन है। गुणों के दर्शन और मनन से मनुष्य के उन गुणों का विकास होता है। पुस्तक को पढ़ने वालों में, विशेषत: संस्था की छात्राओं में, इन गुणों का विकास हो, यही दृष्टि लेखक के सामने रही है।

आज स्त्री-शक्ति-जागरण अपने ज्वलंत रूप में प्रकट है। जिस जागृति-ज्योति को ला० देवराज जी ने लगभग एक शताब्दी पहले प्रज्वलित किया था, आज के स्वतन्त्र भारत में उस का प्रकाश दिशाओं को आलोकित कर रहा है। वर्तमान भारत में स्त्री

विषय सूची

क्रम	विषय	पृ० नं०
	खण्ड—I.	
	हिन्दोस्तान (कविता)	3
1.	अविच्छिन्न भारतीय संस्कृति	5
2.	कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी	7
3.	भारतीय संस्कृति में स्त्री का स्थान	9
4.	उन्नीसवीं शताब्दी का पंजाब-प्रदेश	11
5.	भारत का नव-जागरण	13
	महा-मानव का आगमन (कविता)	15
6.	स्वामी दयानन्द सरस्वती का आगमन	18
7.	आर्य समाज	21
8.	जालन्धर आर्य-समाज	23
9.	स्वामी श्रद्धानन्द	25
10.	प्रेरणा-स्रोत माई भगवती	28
11.	नारी की सप्त-शक्तियां	31
12.	स्त्री-जीवन का विकास	35
13.	भारत-कोकिला सरोजिनी नायडू	37
14.	कस्तूरबा गांधी	41
	खण्ड—II.	
1.	लाखों में एक	47
2.	छात्राओं के पिता ही नहीं, माता भी	49
3.	जालन्धर का प्रभावशाली सोन्धी वंश	52
4.	माता का प्रभाव	55
5.	पत्नी का सहयोग	58
6.	सरकार-परस्त वंश का देश-भक्त बेटा	60
7.	आरम्भिक सेवा-कार्य—खत्तरी-बिरादरी का क्षेत्र	62
8.	कड़ी परीक्षा	64

		66
9.	लोक-संग्रह की वृत्ति	68
10.	एक-निष्ठ भावना	70
11.	काम की लगन	72
12.	गुण-दर्शन की वृत्ति	74
13.	आध्यात्मिक दृष्टि	76
14.	उदार हृदय	78
15.	पिता के प्रति आदर	80
16.	शरीर-श्रम का शौक	82
17.	डायरी लिखने की आदत	84
18.	स्वभाव से एक लेखक	86
19.	पंजाब की एक अन्य समानान्तर सेवा-साधना	88
20.	समग्र स्त्री-जीवन के निर्माता	90
21.	विचार-क्रांति के अनथक यात्री	92
22.	चाचा जी	95
23.	बेदाग् आँचल	

खण्ड—III.

1.	परिस्थितियां	99
2.	आरम्भ	101
3.	विरोध का तूफान	103
4.	विकास	105
5.	प्रगति	107
6.	संस्था के भवन	110
7.	नगर से बाहिर खुले में	113
8.	छात्राओं की श्रद्धा	115
9.	प्रथम आचार्या—पंडिता सावित्री देवी	117
10.	धार्मिक शिक्षा	120
11.	साथी और सहयोगी	122
12.	पारिवारिक-वातावरण	125
13.	कुछ स्वस्थ परम्पराएं	127
14.	राष्ट्रीयता	129
15.	समाज-क्रान्ति की भावना	131
16.	संस्था का पाठ्य-क्रम	133
17.	मध्यम मार्ग	135

18.	अन्य प्रदेशों के साथ सम्पर्क	137
19.	महाराष्ट्रीय बहिन सुभद्राबाई की सेवा-साधना	139
20.	सरकारी मदद से स्वतन्त्र	142
21.	संस्था का आर्थिक आधार—भिक्षा-पात्र	144
22.	संस्थापक की कल्पना	147
23.	अखिल भारतीय ख्याति	149
24.	एक तीर्थ-स्थान	152
25.	तीर्थ-पुरुष के आशीर्वाद	154
26.	कुछ प्रमुख दर्शकों की संक्षिप्त सम्मतियां	156
27.	पत्र-पत्रिकाओं द्वारा यशोगान	159
28.	परिवर्तन	162
29.	आचार्या कु० लज्जावती	164
30.	व्यक्तित्व तथा प्रतिभा	168
31.	आचार्या जी से कुछ प्रश्नोत्तर	171
32.	नए युग में पुरानी भावनाओं की रक्षा	174
33.	सरस्वती-वन्दना-समारोह (नवागत छात्राओं के स्वागत में, नवागत छात्राओं का उत्तर, सरस्वती प्रार्थना) कविताएं	177
34.	अमर-ज्योति-समारोह (मातृ-वन्दना, अमर-ज्योति-गान), कविताएं	182
35.	वन-महोत्सव-समारोह (वन-महोत्सव-समारोह का गान,) कविता	188
36.	राखी	191
37.	शहीदों की याद	192
38.	स्वतन्त्रता-दिवस	194
39.	गण-राज्य-दिवस	196
40.	नए स्वरूप का विकास	197
41.	आज के कर्णधार	200

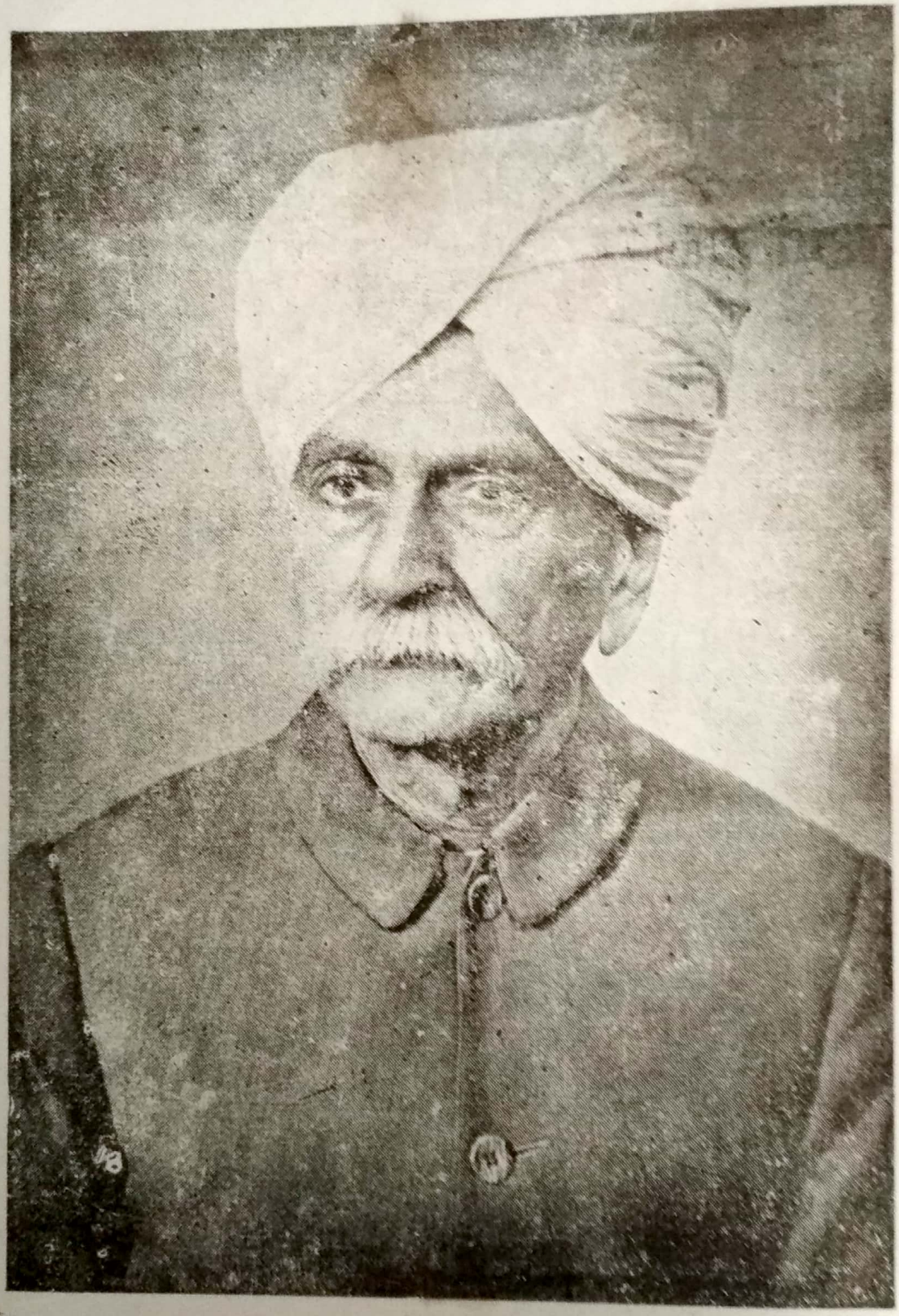
खण्ड—IV_3

1.	वट-वृक्ष के बिखरे बीज	207
2.	माता गौरां देवी	208
3.	श्रीमती दुर्गेश्वरी वुवेजा	212
4.	श्रीमती ठाकुर देवी	216

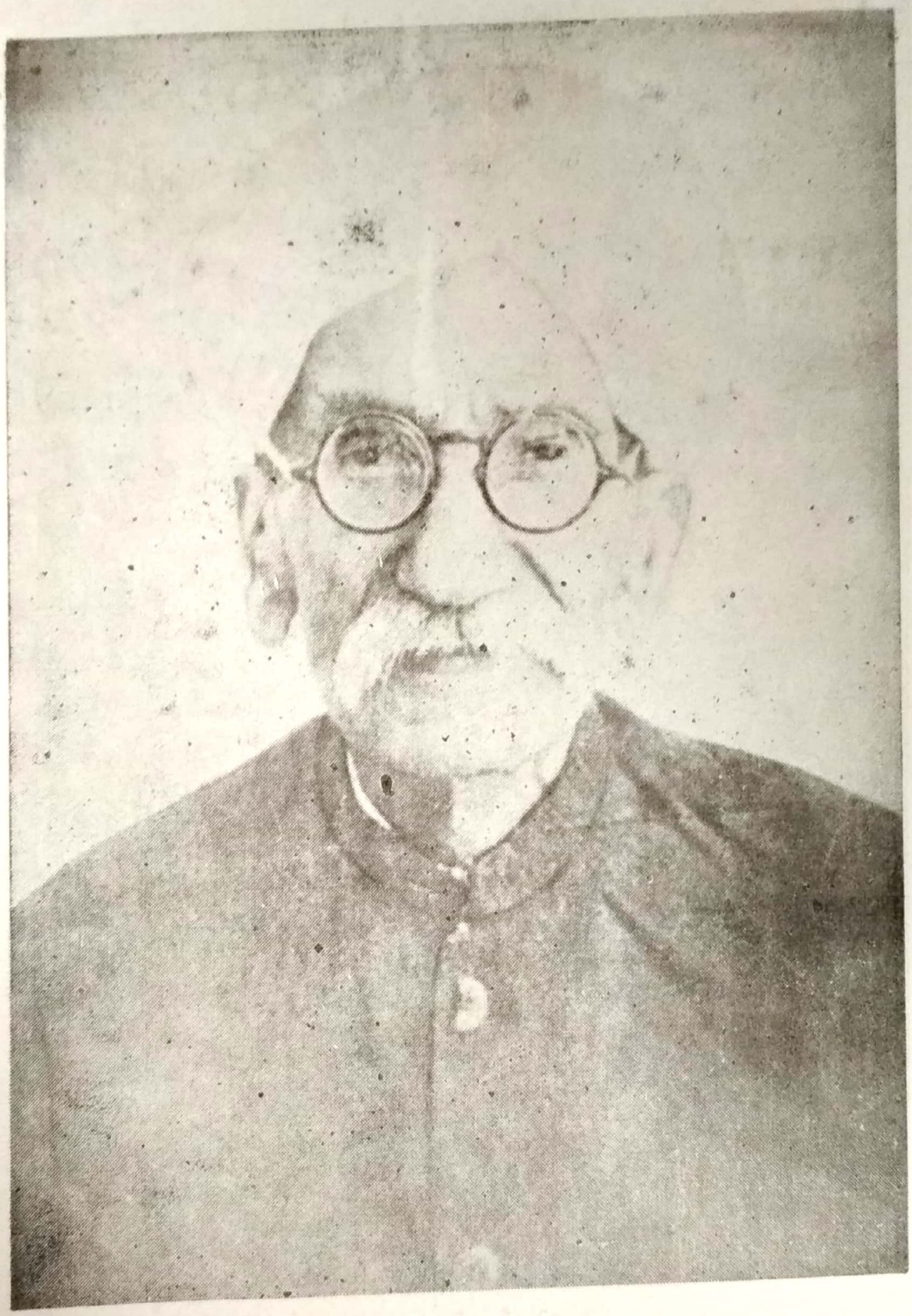
5.	सुशीला दीदी	219
6.	श्रीती सत्यवती स्नातिका	225
7.	कुमारी शान्ता बहन	231
8.	श्रीती सत्यवती	235
9.	कु० शकुन्तला देवी	239
10.	प्रिंसिपल कुमारी शिवा दूआ	242
11.	पद्म-भूषण कु० सुरेन्द्र सैनी	247



कन्या महा विद्यालय के संस्थापक स्व० ला० देव राज जी सोंधी



स्व० राय बहादुर दीवान बद्रीदास जी
जो सन् 1935 से 1972 तक विद्यालय के प्रधान रहे



स्व० श्री कर्म चन्द जी कांहरी
जो कई वर्षों तक विद्यालय के प्रधान तथा उपप्रधान रहे



स्व० श्री वृन्दावन जी सोंधी जो 1952 तक विद्यालय के वरिष्ठ उपप्रधान रहे



क. म. विद्यालय के वर्तमान प्रधान सेठ सत्यपाल जी



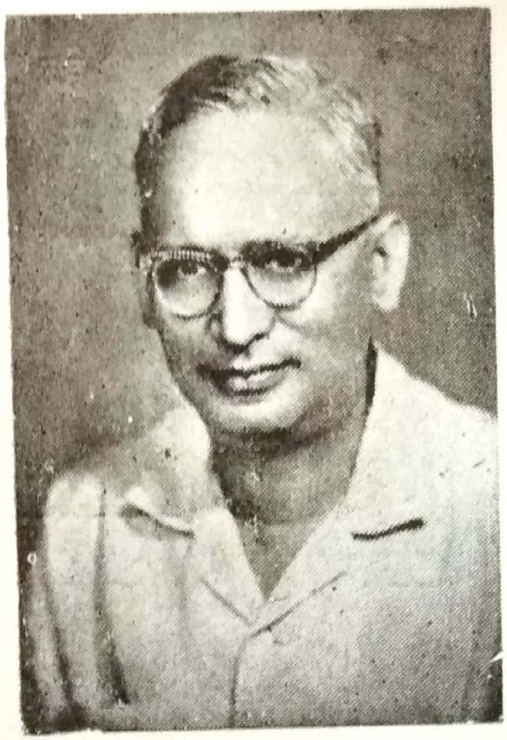
विद्यालय की उप प्रधानाआचार्या कु. लज्जा वती जी
जो आरम्भ से विद्यालय की सेवा में हैं।



श्री जगन्नाथ जी मित्तल जो लगभग आधी शताब्दी तक
विद्यालय से सम्बधित रहे तथा 35 वर्ष विद्यालय के
महामन्त्री रहे



विद्यालय के वर्तमान वरिष्ट
उपप्रधान श्री वीरेन्द्र जी



विद्यालय के वर्तमान महामंत्री
प्रिंसीपल राम चन्द्र जावेद



विद्यालय की वर्तमान प्रिंसीपल श्रीमती सन्तोष पुरी

खण्ड—I

पृष्ट-भूमि

यूनानो-मिस्र-रोमां सब मिट गए जहां से,
बाकी मगर है अब तक नामो-निशां हमारा ।

सुदीर्घ रजनी अब समाप्त हुई जान पड़ती है। महानिद्रा में निद्रित शव मानो जागृत हो रहा है। जिस सुदूर अतीत के अंधकार को भेदने में कल्पना भी असमर्थ है, वहीं से मानो एक अपूर्व वाणी सुनाई दे रही है। ज्ञान, भक्ति और कर्म के विशाल हिमालय की हर एक चोटी पर प्रति ध्वनित होकर, वह वाणी मृदु परन्तु दृढ़ स्पष्ट भाषा में किसी अपूर्व राज्य के समाचार ला रही है।

जो अन्धे हैं वे देख नहीं सकते और जो चिंतन-विहीन हैं, वे समझ नहीं सकते कि हमारी मातृभूमि अपनी गम्भीर निद्रा से जाग रही है। अब कोई इस की उन्नति को रोक नहीं सकता। अब कोई शक्ति इसे दबा भी नहीं सकती।

—स्वामी विवेकानन्द

हिन्दोस्तान

नजर आती नहीं सारे जहां में,
कुछ ऐसी बात है हिंदोस्तां में।

यहां ऋषियों ने वैदिक गान गाए, यहां अवतार आए, संत आए,
यहां बुद्ध और दयानन्द और गाँधी, नये युग-धर्म के सन्देश लाए।

उतरते हैं वे तारे इस ज़मीं पर,
नहीं है जिनका सानी आसमां में।

दिया है बहुत कुछ इसने जहां को, लिया है खींच किस-किस फाहियाँ[1] को,
उठी याँ से घटा रूहानियत की, किया सरसब्ज़ सारे गुलसितां को।

कमल खिलते हैं इस पानी में ऐसे,
नहीं खिलते कहीं बागे जिनां[2] में।

न जाने कब चला था कारवां यह, युगों से अपनी राह पर है रवां यह,
रहे हैं कारवां कितने ही राह में, नहीं पहुंचे वहां, पहुंचा जहां यह।

बहुत सी मंज़िलें तै कर चुका है,
अभी है गरमजोशी कारवां में।

बहुत रफ्तार से सदियों चले हम, बहुत देशों से थे आगे बढ़े हम,
सभी हैरान होकर देखते थे, गए आगे ही, जिस रस्ते गए हम।

वही फिर तेज़गामी है हमारी,
ज़रा हम थम गए थे दर्मियां में।

युगों पहले खिला था मन हमारा, हरा है तब से यह उपवन हमारा,
खिंचे आए हैं सैलानी जहां के, बना है सैरगाह गुलशन हमारा।

खिले रूहानियत के फूल कलियां,
सदा से हैं हमारे गुलसितां में।

1. एक चीनी यात्री
2. जिना = स्वर्ण

यहां रूहानियत ने जन्म पाया, यहां गीता ने दूई को मिटाया,
मुहब्बत की चलीं ऐसी हवाएं, रहा दुशमन न कोई, ना पराया।

इसे मारा, उसे जीता की बातें,
बहुत कम हैं हमारी दासतां में।

यहां उद्योग घर-घर चल रहे थे, यहां व्यापारियों के जमघटे थे,
ज़मीं सोना उगलती थी यहां की, विदेशी सब तरफ से देखते थे,

चमकते दूर से नज़र आ रहे थे,
ये पर्वत सुवर्ण के हिंदोस्तां में।

पठानों के कभी हमले हुए फिर, कभी मुगलों के बादल आ झुके फिर,
कभी नादर, कभी अहमद की लूटें, कभी योरुप के बेड़े आ लगे फिर,

हर इक वह तीर हम पर चल चुका है,
कि जो भी था ज़माने की कमां में।

निशां चारों तरफ बिखरे पड़े हैं, कहीं पत्थर, कहीं खम्भे गड़े है,
महल तहज़ीब का ऊंचा है अब भी, ये पहरेदार पहरे पर खड़े हैं,

गड़े बुनियाद में वेद उपनिषद हैं,
तभी है ऐसी मज़बूती मकां में।

हज़ारों साल है भारत पुराना, हर इक देखा है भारत ने ज़माना,
बसे उजड़े हैं कितने आशियाने, मगर आबाद है यह आशियाना।

चमन में यह पुराना आशियां है,
सोये हैं युग हमारे आशियां में।

—"शान्त"

: 1 :

अविच्छिन्न भारतीय संस्कृति

प्राचीन काल से मनुष्य अपने जीवन का, रहन-सहन का, विचार और चिंतन का विकास करता आया है। जहां तक इस विकास का सम्बन्ध मनुष्य के बाह्य जीवन के साथ है, रहन-सहन, खान-पान, वेषभूषा आदि के साथ है, यह विकास मनुष्य की सभ्यता कहलाता है और जहां तक इस विकास का सम्बन्ध उसके आन्तरिक जीवन के साथ है. चिन्तन-मनन के, विचारों और भावनाओं के साथ है, इस विकास को उस की संस्कृति कहते हैं। मनुष्य जाति के किसी वर्ग का, किसी जाति का, विकास-स्तर उस की सभ्यता और संस्कृति में दिखाई देता है।

विश्व के इतिहास में स्थान-स्थान पर अनेक सभ्यताओं और संस्कृतियों का उद्‌गम हुआ। जिस जाति या वर्ग में संस्कृति का अंश प्रधान था, उसके जीवन में गहराई थी और उस गहराई के कारण उस में एक जीवन-शक्ति पैदा हो गई। जिस जाति या वर्ग में आन्तरिक गहराई का विकास कम हुआ, उसमें अपनी बाह्य सम्पन्नता के होते हुए भी, वह जीवन-शक्ति पैदा न हो सकी। जीवन-शक्ति से पुष्ट सभ्यता और संस्कृति ही इतिहास में दीर्घ-जीवी हो सकी। जीवन-शक्ति से, विकास की गहराई से खाली जातियां इतिहास में दीर्घ-जीवी नहीं हो सकीं, कुछ समय तक, कभी-कभी सैंकड़ों वर्षों तक भी, अपनी तड़क-भड़क दिखाकर, भौतिक ऐश्वर्य दिखा कर, अन्त में विश्व के रंग-मंच से लुप्त हो गईं।

विश्व के इतिहास में भारतीय संस्कृति उन चन्द संस्कृतियों में से एक प्रमुख संस्कृति है जो हज़ारों वर्षों तक अपने अस्तित्व को सुरक्षित रख रही है। भारतीय संस्कृति में तरह-तरह के उथल-पुथल हुए. संघर्ष और संकट आए, क्रांति-मय परिवर्तन आए, परन्तु शताब्दियों और सहस्राब्दियों की लम्बी पराजय को सहन करके भी इसने अपनी जीवन-ज्योति को बुझने नहीं दिया है। जिस प्रकार पतझड़ के मौसम में, रुण्ड मुण्ड हुआ, ईंधन मात्र दिखाई दे रहा वृक्ष, बसन्त ऋतु के आते ही अंकुरित और पल्लवित हो जाता है, उसी तरह पराजयकाल की जीर्ण-शीर्ण अवस्था में दयनीय

दिखाई दे रही भारतीय संस्कृति ने अनुकूल परिस्थितियों के आते ही अपनी प्रतिभा की छटा दिखा दी है।

जब किसी देश और जाति के लोग अपनी परम्पराओं और भावनाओं को तिलांजलि देकर एक नया ही, अतीत से विच्छिन्न रूप धारण कर लेते हैं तो उस देश और जाति की पुरानी मृत संस्कृति के स्थान पर एक नई संस्कृति का आविर्भाव हो जाता है। अब उस देश और जाति के लोग अपनी पुरानी परम्पराओं को अपनी नहीं मानते और उनका गौरव नहीं करते। इस प्रकार बहुत सी संस्कृतियां विश्व के इतिहास से लुप्त हो गई हैं। अब उनके खण्डहर-मात्र खुदाई में मिलते हैं। भारतीय संस्कृति की कहानी दूसरी तरह की है। इस में बहुत से परिवर्तन आ चुके हैं, बहुत-सी क्रांतियां हो चुकी हैं, तो भी यह संस्कृति अविच्छिन्न चली आ रही है। आज का ब्राह्मण भी अपने पूजन-अर्चन में उन्हीं वेद-मन्त्रों का उच्चारण करता है जिनका उच्चारण हज़ारों वर्ष पहले किया जाता था। आज के हिन्दू विवाह-संस्कार में भी उन्हीं वेद-मन्त्रों का उच्चारण होता है जिन का उच्चारण राम और सीता के विवाह में हुआ था।

भारतीय संस्कृति की यह अविच्छिन्न धारा इस संस्कृति की जीवन-क्रान्ति का प्रत्यक्ष परिचय दे रही है। पराजय और दासता की लम्बी शताब्दियों के बाद भी आज का भारतीय मनुष्य उन्हीं प्राचीन परम्पराओं का गौरव मानता है। आज के वैज्ञानिक युग की चकाचौंध के बावजूद वह अपने तपोवनों में रहने वाले सीधेसादे ऋषि-मुनियों के प्रति श्रद्धा रखता है और उनकी सन्तान होने से अपने को गौरवान्वित मानता है। भारत की इसी शाश्वत जीवन-शक्ति को देख कर ही उर्दू के प्रसिद्ध कवि इकबाल ने कहा था—

यूनानो मिस्रो रोमां सब मिट गए जहां से,
बाकी मगर है अब तक नामो निशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुशमन दौरे ज़मां हमारा।

—×—

: 2 :

'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी'

'इकबाल' ने भारतीय संस्कृति की जिस 'कुछ बात' का संकेत किया है। वह 'कुछ बात' क्या है ? भारत की संस्कृति किस आधार पर अविच्छिन्न चली आई है ? कौन-सी ऐसी शक्ति है जिस ने इस संस्कृति को इतनी लम्बी आयु प्रदान की है ? किस आधार-भूत तत्त्व पर इस संस्कृति के लिए भावी अमरता की भी आशा है।

बहुत बहुत प्राचीन काल में, विश्व इतिहास के प्रातः काल में भारतीय ऋषियों ने यह प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया था कि इस दृश्य प्रकृति के पीछे एक अनन्त अदृश्य शक्ति विद्यमान है, जिसके आधार पर यह विविध आकारों वाला जीवन टिका हुआ है। वैदिक ऋषियों ने उस अनन्त शक्ति को भिन्न-भिन्न नामों से गाया है। उन्होंने कहा—

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति,
अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।

(उस एक ही शक्ति को ऋषियों ने बहुत नामों से कहा है। किसी ने उसे 'अग्न' कहा है, किसी ने 'यम' कहा और किसी ने 'पवन' कहा)

इसी प्राचीन काल से भारत का मस्तिष्क और हृदय इस शक्ति की खोज में, उसके साक्षात्कार के प्रयत्न में, उसके महिमा-गान में लग गया। वेद इस देश ही के नहीं, बल्कि विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। वेदों के बाद की रचना 'उपनिषदों' में इसी परमात्म-शक्ति के सम्बन्ध में चिंतन और मनन हैं, उसी सत्ता के प्रत्यक्ष अनुभव के उद्गार हैं। इसके बाद की रचनाओं, रामायण और महाभारत में, कहानी और वार्त्ता की पृष्ठ-भूमि में, उसी आधार-भूत शक्ति की झलक है। आगे आने वाले कालिदास आदि भारतीय कवियों ने अपने काव्यों और नाटकों की पृष्ठ-भूमि में, उसी सूक्ष्म चेतन सत्ता का आभास देखा है। संस्कृत-साहित्य के युग के पश्चात् आधुनिक

भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी उसी अध्यात्म-तत्त्व की खोज जारी है। क्या कबीर, क्या तुलसी, क्या कवि सम्राट् रवीन्द्रनाथ टैगोर, सभी उस रहस्यमयी अध्यात्म-शक्ति की अनुभूति के लिए समर्पित हैं। भारत की इस निरंतर आध्यात्मिक खोज ने उस के लक्ष्य को शाश्वत बना दिया है। इतिहास की आंधियों ने, राजनैतिक और सामाजिक क्रांतियों ने भारत के बाह्य जीवन पर तो कुछ प्रभाव डाला परन्तु उसकी आध्यात्मिक खोज के सामने हार मान ली। जब तक भारत अपनी इस आध्यात्मिक प्रतिभा को बनाए रखेगा, तब तक इतिहास के झंझावत उसे विचलित करने में असमर्थ रहेंगे।

अपने ऊँचे आध्यात्मिक लक्ष्य की धुन में भारत ने बहुधा जीवन के भौतिक पहलू को, विज्ञान को नज़र अन्दाज़ भी कर दिया, सांसारिक सुख-सुविधा के प्रति नितांत उदासीनता भी दिखाई, तप और त्याग ही को सर्वस्व मान लिया, तो भी संसार की भौतिक दौड़ में काफी पीछे रह कर भी उसने अपनी धुन को नहीं छोड़ा।

परन्तु आज का विज्ञान भी अध्आत्म का, रूहानियत का, मित्र और साथी बन गया है। आज का विज्ञान, कैमिस्ट्री, फिज़िक्स और जीव-विज्ञान, भौतिक जगत् की सीमाओं को पार करके अध्यात्म के समीप पहुंच रहा है। आज के युग में अध्यात्म और विज्ञान, रूहानियत और साइंस, एक दूसरे का हाथ पकड़ कर विकास के मार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं। यह भारत के आध्यात्मिक लक्ष्य की विजय है कि आधुनिक विज्ञान इस का विरोधी नहीं बल्कि पोषक सिद्ध हो गया है।

आज विज्ञान ने विश्व को एक बना दिया है। भारतीय प्राचीन काल से विश्व को एक मानता चला आया है। आज दुनिया के सभी देश एक दूसरे के इतने समीप आ गए हैं कि उन में से किसी एक की प्रतिभा किसी दूसरे को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकती। आज भारत की आध्यात्मिक प्रतिभा के लिए एक विशाल क्षेत्र है। परन्तु भारत की यह प्रतिभा तभी अपना तेज दिखा सकती है जब वह हमारे जीवन में एक ज्वलंत रूप में दिखाई दे सके। अपने देश के ऊंचे आध्यात्मिक साहित्य के अध्ययन से तथा वर्तमान युग के महान् भारतीय चिंतकों और मनीषियों के जीवन, विचार और कार्य के चिंतन और मनन से ही देश के युवक-युवतियों में एक नई आशा प्रकट हो सकती है।

विज्ञान के द्वारा जुटाई गई सुख-सुविधाओं का समुचित आदर करते हुए भी भारत की बुनियादी कमाई, आध्यात्मिक तेज की साधना करके ही देश की वर्तमान और भावी सन्तान अपने को कृत-कृत्य कर सकती है। किसी कवि ने कहा है—

अब बह रही है गंगा, खेतों को दे लो पानी,
कुछ कर लो, नौजवानो ! उठती जवानियां हैं।

—X—

: 3 :

भारतीय संस्कृति में स्त्री का स्थान

प्राचीन काल से भारतीय संस्कृति में स्त्री के लिए बहुत ऊंचा आदर का स्थान है। सृष्टि में ओत-प्रोत परमात्मा और मनुष्य के शरीर में आविर्भूत आत्मा तो स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समान-रूप है। परमात्मा और आत्मा स्त्री-पुरुष के भेद से पृथक् है। स्त्री-पुरुष का भेद तो शरीर से है, आत्मा और अन्तः करण से नहीं। शरीर तो हमारा बाह्य रूप है, हमारा आन्तरिक रूप तो मन और आत्मा है। मन और आत्मा में स्त्री-पुरुष का कोई भेद-भाव नहीं है। शरीर सम्बन्धी कुछ भेद के कारण स्त्री और पुरुष के शारीरिक कार्यों में कुछ भेद हो सकता है, परन्तु वह भेद ऊपर ऊपर का है।

स्त्री और पुरुष की इस समानता को भारत ने प्राचीन काल से स्वीकृत किया है। वेदों के ऋषियों में, जिन मनीषी लोगों ने मन्त्रों के भाव का साक्षात्कार किया उनमें पुरुषों के साथ स्त्री-ऋषि भी हैं। उपनिषदों में ऐसी प्रतिभाशाली और तेजस्वी स्त्रियों का वर्णन है, जिन्होंने पुरुषों के समान आध्यात्मिक साधना की।

रामायण और महाभारत में स्त्री का स्थान आदर और महत्त्व का है। रामायण में सीता और दूसरे स्त्री-चरितों को एक पूज्य स्थान दिया गया है। महाभारत में द्रौपदी की भूमिका किसी पुरुष चरित से कम ओजस्वी नहीं है। संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ कवि कालिदास ने अपने काव्यों और नाटकों के स्त्री चरितों को एक उदात्त स्थान प्रदान किया है।

भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर ने, अपनी आध्यात्मिक साधना का मार्ग, पुरुषों के समान स्त्रियों के लिए प्रस्तुत किया। दोनों ने पुरुषों के भिक्षु और श्रमण-संघों के बराबर ही स्त्रियों के लिए भी संघों की स्थापना की। इस तरह स्त्री-पुरुष दोनों के लिए जीवन के अन्तिम लक्ष्य निर्वाण का साधना-मार्ग समान रूप से प्रस्तुत करके उन्होंने स्त्री-पुरुष की समानता के आदर्श को व्यवहार में मान्य किया।

सातवीं आठवीं शताब्दी के भवभूति कृत प्रसिद्ध संस्कृत नाटक, 'उत्तर रामचरित' में उत्तर भारत में स्थित वाल्मीकि ऋषि के आश्रम की एक विद्यार्थी बहन के उस आश्रम को छोड़ कर, दक्षिण भारत में स्थित अगस्त्य ऋषि के आश्रम में अध्ययन के लिए जाने की कथा का एक स्वाभाविक वर्णन है। इससे स्पष्ट है कि इस समय तक भी हमारे देश में विद्या प्राप्ति के लिए इतनी लम्बी यात्राएं करना स्त्री के लिए एक सामान्य बात मानी जाती थी। स्त्री के लिए ऐसी स्वतन्त्रता और समानता उस काल में भी मौजूद थी जब भारत की संस्कृति ह्रासोन्मुखी थी। लगभग इसी काल में शंकराचार्य और मण्डन मिश्र के ऐतिहासिक शास्त्रार्थ में मण्डन मिश्र की विदुषी पत्नी का अध्यक्षता करना भी यही सिद्ध करता है।

परन्तु उसके बाद, वर्तमान काल तक, एक हज़ार वर्ष से भी अधिक लम्बा एक ऐसा युग आया, जबकि विशेषत: उत्तर भारत में, देश के सामान्य ह्रासोन्मुख जीवन के साथ समाज में स्त्री का स्थान भी गिरता गया। इस्लामी राज्य के साथ देश में आई परदे की प्रथा से स्त्री को सामाजिक जीवन से अलग-थलग, घर में कैद कर दिया गया। आहिस्ता-आहिस्ता स्त्री जीवन के विशाल रंगमंच से हट कर घर की चार-दीवारी में, चौके चूल्हे में बंध गई।

देश के उस पतन के बहुत से ऐतिहासिक कारण बताए जा सकते हैं। उस काल में देश में एक जड़ता आ गई थी, जिसका प्रभाव जीवन के प्राय: सभी क्षेत्रों में पड़ा। देश के सामान्य जीवन के विकास के रुक जाने के साथ स्त्री का विकास रुक जाना भी स्वाभाविक था।

तो भी इसका यह मतलब नहीं है कि स्त्री के जीवन में कोई विशेष नैतिक गिरावट आ गई थी। इससे उलट उस काल में भी भारत की स्त्री ने अपने कर्त्तव्य और नैतिक जीवन के प्रति एक दृढ़ता दिखाई। एक माता, बहन, बेटी और पत्नी के रूप में स्त्री ने अपने सामने ऊंचे आदर्श रखे। प्रतिकूल परिस्थितियों में जब पुरुष बहुधा अपने कर्त्तव्य तथा नैतिक आदर्श से गिरा, स्त्री ने अपने संकीर्ण गार्हस्त्य क्षेत्र में पूरी कर्मठता दिखाई। यह बात बहुधा कही जाती है कि देश में धर्म की रक्षा स्त्री ने की है। इसने अपने घर और परिवार की मर्यादाओं का दृढ़ता पूर्वक पालन किया, वे परम्पराएं कैसी थीं, इस तरफ उसका ध्यान जाने की प्रबुद्धता सामान्यत: स्त्री में नहीं थी। धार्मिक और सामाजिक रूढ़ियों का बचाव स्त्री ने पुरुष से अधिक किया।

19वीं शताब्दी तक पहुंचते पहुंचते भारतीय स्त्री के जीवन में जड़ता की पराकाष्ठा हो गई थी तो भी अपनी सेवा और कर्त्तव्य परायणता की भावनाओं से माता, बहन, बेटी और पत्नी के रूप में स्त्री घर के जीवन को सुखी और सुन्दर बनाने के लिए प्रयत्नशील रही।

—×—

: 4 :

उन्नीसवीं शताब्दी का पंजाब-प्रदेश

देश की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर स्थित पंजाब-प्रदेश, हिन्दुस्तान में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का वाहक रहा है। पिछली कुछ शताब्दियों में योरुप के देशों की जातियों के, पुर्तगीज, डच, फ्रांसीसी और अंग्रेजों के समुद्र के मार्ग से आने से पहले भारत में आक्रमणकारियों के रूप में आने वाले प्रायः सभी लोग उत्तर-पश्चिम की तरफ से आए। इस प्रकार उन आक्रमणकारियों का सामना सब से पहले पंजाब ने किया। इस प्रदेश को परास्त करके ही कोई आक्रमणकारी आगे दिल्ली की तरफ बढ़ सकता था।

दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी तक पंजाब प्रदेश ने भारत के खड्ग-धारी हाथ की भूमिका कटि-बद्धता के साथ निभाई। तत्पश्चात्, महमूद गजनवी के आक्रमणों से लेकर, आक्रमणकारियों को रोकने वाला वह बांध टूट गया और देश के लिए पराधीनता का युग आरम्भ हो गया। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में इस प्रदेश में एक नई शक्ति का विकास हुआ, जो अन्त में कुछ देर के लिए एक मजबूत सिक्ख राज्य के रूप में प्रकट हुई। महाराजा रणजीत सिंह अपने जमाने की एक बड़ी भारतीय शक्ति थे। देश में अन्य प्रदेशों में भी ऐसी दूसरी शक्तियां थीं। मरहटा सरदार और गोरखा आदि। भारतीय शक्तियों ने अंग्रेज शक्ति के साथ अकेले-अकेले भिड़ कर पराजय स्वीकृत की। उसी प्रकार महाराजा रणजीत सिंह के पश्चात् पंजाब की सिक्ख शक्ति ने भी, अंग्रेज शक्ति के साथ अकेले लड़ कर, अद्भुत वीरता दिखा कर भी अन्त में हार मानी। यदि इन सब भारतीय शक्तियों में ताल-मेल हो सकता तो देश का इतिहास कुछ और ही होता। परन्तु देश के भाग्य में अभी पराधीनता और आर्थिक शोषण का एक और युग लिखा था और ये सब भारतीय शक्तियां एक-एक करके समाप्त होती गईं।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक पंजाब प्रदेश में अंग्रेजी राज्य स्थापित हो चुका था। परन्तु यह प्रदेश भारत के प्रायः सभी दूसरे भागों के बाद अंग्रेजी राज्य में शामिल हुआ था और यह अभी-अभी एक मजबूत सिक्ख राज्य को देख चुका था। इतनी

देर तक अंग्रेज़ी राज्य से बाहिर रहने के कारण यह प्रदेश तब तक अंग्रेज़ी राज्य की आर्थिक लूट से बचा रहा था। देश के दूसरे भाग, जो बहुत पहले अंग्रेज़ी राज्य में आ गए थे, तब तक एक भयानक आर्थिक शोषण के शिकार रह चुके थे।

इस के अतिरिक्त सिक्ख गुरुओं द्वारा फैलाई गई एक सामाजिक जागृति के कारण भी इस प्रदेश में एक जीवन-ज्योति सुरक्षित थी। सिक्ख शक्ति की पराजय के बाद भी इस प्रदेश में अभी इतनी निराशा नहीं थी।

जैसे कि कहा गया है पंजाब प्रदेश प्रायः सदा ही से बाहर से आने वाले आक्रमण-कारियों के साथ संघर्ष करता आया था। बाहर से आने वाले जो जन-समूह इस प्रदेश में बस गए थे, वे भी शक्तिशाली थे। उन के साथ घुल-मिल जाने से इस प्रदेश की जनता में अभी एक साहस और उत्साह था, एक जीवन-शक्ति थी।

पंजाब प्रदेश में आई नई अंग्रेज़ सरकार ने पहले-पहले तो सिक्ख शक्ति को दबाया परन्तु बाद में प्रभावशाली सिक्ख सरदारों और खानदानों की तरफ मैत्री का हाथ बढ़ाया। स्वभावतः एक-एक करके बहुत से सरदार अंग्रेज़ सरकार के प्रभाव में आ गए। सतलुज से दक्षिण की सिक्ख रियासतें तो पहले ही अंग्रेज़ी प्रभाव में थीं। सिक्ख सरदारों को सेना में ऊंचे पद देकर और उन की जागीरों को बहाल करके अंग्रेज़ सरकार ने उन्हें अपने प्रभाव में ले लिया।

उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध, पंजाब में अंग्रेज़ी शक्ति के जमने और सुदृढ़ होने का जमाना था। तो भी अभी लोगों में, कुछ प्रबुद्ध लोगों में, स्वतन्त्रता की स्मृति बाकी थी। इसी स्मृति के आधार पर इस प्रदेश में एक नई चेतना का उभार हुआ।

—×—

: 5 :

भारत का नव-जागरण

जैसे कि पहले कहा जा चुका है भारत का अतीत-काल बहुत उज्ज्वल था। वैदिक काल से लेकर हर्ष-वर्धन के समय तक, छटी सातवीं शताब्दी तक, यह देश प्राय: हर दृष्टि से, उस समय की दुनिया के लगभग सभी देशों से आगे था। इस देश के विद्वान् और तपस्वी भिक्षु भगवान् बुद्ध का संदेश लेकर लंका, ब्रह्मा, दक्षिण-पूर्वी एशिया, चीन, मध्य एशिया और पश्चिमी एशिया तक गए। दूसरे देशों में, विशेषत: महान् देश चीन के विद्वान् बुद्ध-धर्म की शिक्षा-दीक्षा के लिए, भारत आए। भगवान् बुद्ध का भारतीय संस्कृति का सन्देश प्राय: एशिया के सारे देशों तक पहुँच गया था। तक्षशिला और नालंदा के विश्व-विद्यालय संसार के पहले विशाल विश्व-विद्यालय थे। परन्तु हर्ष-वर्धन के पश्चात् उत्तरी भारत की शक्ति क्षीण होने लगी और दसवीं ग्याहरवीं शताब्दी तक पहुंचते यह क्षीणता चरम-सीमा तक पहुंच गई। दसवीं ग्यारहवीं शताब्दियों में उत्तर-पश्चिम से आने वाले महमूद गज़नवी आदि आक्रमणकारियों की विजय-यात्रा इस बात का प्रमाण है।

इस्लामी राज्य की लम्बी शताब्दियों में भारत की आत्मा विजित और सुप्त दशा में रही। मुसलमान सूफी फकीरों के विचारों के सम्पर्क से, मध्य-युग में, देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में संतों की आध्यात्मिक परम्परा चली। सम्राट् अकबर की उदार धर्म नीति के फल-स्वरूप भारतीय संस्कृति में नए जीवन के चिन्ह नज़र आने लगे। संतों की इस परम्परा से देश में एक चेतना पैदा हुई।

अंग्रेज़ी राज्य के स्थापित होने तक देश का आर्थिक ढांचा निस्सन्देह सुरक्षित रहा, क्योंकि इस्लामी राज्य में भारत के किसी अन्य देश द्वारा शोषण की बात नहीं थी। अंग्रेज़ी राज्य में देश का आर्थिक शोषण आरम्भ हुआ और देश का ग्रामीण जीवन अस्त-व्यस्त हो गया।

अंग्रेज़ सरकार ने अपने राज्य को सुदृढ़ करने के लिए जो शासन का जाल फैलाना था, उस के लिए सस्ते भारतीय क्लर्कों आदि की ज़रूरत थी। इसके लिए उस

सरकार ने अपनी जरूरत की शिक्षा-प्रणाली को अपनाया। उस शिक्षा-प्रणाली में अंग्रेजी भाषा के लिए मुख्य स्थान था। इस शिक्षा से सरकारी नौकरी मिलती थी, इसलिए इस का प्रसार बहुत तेजी के साथ हुआ।

इस शिक्षा-प्रणाली के द्वारा भारतीय मानस का सम्पर्क पाश्चात्य संस्कृति से होना स्वाभाविक था। पहले-पहले तो पाश्चात्य विचारों की चकाचौंध से अंग्रेजी पढ़े लिखे युवकों में भारतीय धर्म और संस्कृति के प्रति उपेक्षा, बल्कि घृणा और निरादर की भावनाएं पैदा हुईं और उन के सामने पाश्चात्य जीवन-पद्धति एक आकर्षक और मोहक रूप में आई। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में देश में कुछ ऐसे महापुरुष पैदा हुए जिन्होंने प्राचीन भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल आदर्शों और विचारों को समयानुकूल भाषा में देश के सामने रखा तो पाश्चात्य संस्कृति की इस चकाचौंध के स्थान पर एक नव-जागरण, एक नई चेतना का जन्म हुआ। योरप के विद्वानों ने भी प्राचीन भारतीय साहित्य का अध्ययन करके उसका गुण-गान किया तो भारतीय मानस पर उस का विशेष प्रभाव पड़ा।

उन्नीसवीं शताब्दी के इस सांस्कृतिक नव-जागरण के आदि पुरुष तो बंगाल के विद्वान् और समाज-सुधारक राजा राम मोहन राए थे, जिन्होंने कलकत्ता में ब्रह्म-समाज की स्थापना करके सामाजिक जीवन में एक नई शक्ति का संचार किया। अरबी, फारसी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषाओं के अध्ययन और समाज-सुधार की लगन के आधार पर उन की प्रतिभा ने देश में एक नए युग का आरम्भ कर दिया। उन के आन्दोलन का मुख्य केन्द्र बंगाल रहा।

उन्नीसवीं शताब्दी के इस भारतीय नव-जागरण के दूसरे युग-पुरुष स्वामी दयानन्द सरस्वती थे। 1825 में गुजरात काठियावाड़ में जन्म लेकर और आध्यात्मिक साधना के लिए चढ़ती जवानी में घर बार छोड़ कर, उन्होंने देश में घूम फिर कर देश की स्थिति और समस्याओं का अध्ययन किया। उन्होंने देखा कि प्राचीन वैदिक आदर्शों और विद्याओं को छोड़ने ही के कारण भारत का पतन हुआ था। अपने वेदों के अध्ययन से उन्होंने देखा कि वैदिक आदर्शों की पुनःस्थापना ही से देश के जीवन में नई शक्ति और प्रतिभा पैदा हो सकती है। अपने इस उद्देश्य को लेकर वे भारत में भ्रमण करने और विचार-प्रचार करने लगे। अपने भ्रमण के दौरान वे पंजाब आए। इस प्रदेश के प्रबुद्ध मानस ने स्वामी दयानन्द के वैदिक संदेश से एक नई चेतना प्राप्त की। भारत के इसी प्रदेश ने स्वामी जी की आत्मा को सब से अधिक समझा और उन के सन्देश को हृदयंगम किया। इस प्रकार पंजाब प्रदेश में सांस्कृतिक नव-जागरण के वाहक गुजरात काठियावाड़ में जन्म लेने वाले स्वामी दयानन्द सरस्वती बने।

—×—

महा मानव का आगमन

सौ-सौ बरसों जब यह दुनिया तप करती है,
सौ-सौ बरसों मानवता आहें भरती है,
सृष्टि वेदनाएँ सहती है सौ-सौ बरसों,
सौ-सौ बरसों जब तपती रहती धरती है,
तब जाकर ऐसा कोई इन्सान आता है,
इन्सानी चोले में वह भगवान आता है।

जब दुनिया सच्चाई की राह से भटकी हो,
जब दुनिया की मंज़िल उससे दूर हुई हो,
जब उदास होकर दुनिया उत्कंठित मन से,
आने वाले रहबर का रस्ता तकती हो,
तब कुदरत में एक जोश पैदा होता है,
फूट निकलता करुणा का कोई सोता है।

जब गरमी में फूल-पात मुरझा जाते हैं,
तरु बेलों के प्राण लबों पर आ जाते हैं,
आसमान से आग बरसने लग जाती है,
जीव-जन्तु औ मानव सब घबरा जाते हैं,
तो समुद्र से मेघों के दल चल पड़ते हैं,
आग बुझाने को लेकर जल चल पड़ते हैं।

कृष्ण-पक्ष में जब घटती है ज्योति निशा की,
कम होती जाती है आभा चन्द्रकला की,
घटते-घटते चन्द्रकला के अंत एक दिन,
छा जाती है घुप अंधेरी रात अमा की,
तो प्रकाश के सागर में फिर जोश आता है,
कृष्ण-पक्ष के बाद शुक्ल पक्ष आ जाता है।

अंधकार में जब मानव पथ नहीं पाता है,
प्रेम प्यार की ज्योति लिये कोई आता है,
उसके जीवन के प्रकाश से मानवता को
अंधकार में लुप्त हुआ पथ मिल जाता है,

सत्पथ पर जीवन प्रदीप जलने लगते हैं,
पथिकों के दल सत्पथ पर चलने लगते हैं।

जब दुनिया में एक महा मानव आता है,
मानवता के लिए एक आशा लाता है,
नफ़रत के संबंध टूटने लग जाते हैं,
जुड़ने लगता प्यार मुहब्बत का नाता है,

भटकी दुनिया को इक रस्ता मिल जाता है,
मुरझाया जीवन दुनिया का खिल जाता है।

बिगड़े थे जो काम रास आने लगते हैं,
दूर हुए आदर्श पास आने लगते हैं,
जीर्ण-शीर्ण पतझड़ का मौसम चल देता है,
नव-नूतन वासंत मास आने लगते हैं,

तदबीरें जो बिगड़ गयी थीं बन जाती हैं,
तकदीरें जो रूठ गयीं थीं मन जाती हैं।

एक नये जीवन का आयोजन होता है,
हरा-भरा दुनिया का तन औ मन होता है,
शाश्वत और सनातन की आधार शिला पर,
खड़ा नये जीवन का एक भवन होता है,

मानवता की बेल लहलहाने लगती है,
पात-पात में नयी जान आने लगती है।

मानव का इतिहास बदलने लग जाता है,
नया रक्त नसनस में चलने लग जाता है,
नयी प्रेरणा पाकर जन-जन के हृदयों में
एक नया उत्साह मचलने लग जाता है,

जीवन में जो जंग लगा था घुल जाता है,
मार्ग उन्नति का बंद हुआ था, खुल जाता है।

पुरखों के पौरुष की संस्मृति आती है,
निष्क्रिय जड़ जीवन में फिर से कृति आती है,
स्वप्न-निशा का अंधकार छूटने लगता है,
निद्रा जाती रहती है जागृति आती है,

प्रातः के जागरण-शंख बजने लगते हैं,
जन-जीवन में नये साज सजने लगते हैं ।।

"शान्त"

—×—

: 6 :

स्वामी दयानन्द सरस्वती का आगमन

जैसे कि कहा जा चुका है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती के वैदिक आदर्शों के सन्देश को सब से ज्यादा पंजाब प्रदेश ने पसन्द किया। हज़ारों बर्ष पहले पंजाब की नदियों के तटों पर शिवालक और हिमालय के आंचल में, वेद-मन्त्रों का गान होता रहा था और उस गान की स्मृति इस प्रदेश के मानस के किसी कोने में सुरक्षित थी। सिक्ख गुरुओं की शिक्षा ने भी इस प्रदेश में एक आध्यात्मिक ज्योति प्रज्वलित कर रखी थी। स्वामी दयानन्द का जन्म-स्थान काठियावाड़, पंजाब ही की तरह शक्ति और कर्मठता का प्रदेश है और इस प्रदेश ने स्वामी जी के काठियावाड़ी वीर मानस में अपनी ही प्रतिमा के दर्शन किए।

पंजाब में स्वामी जी के सन्देश के प्रिय होने का एक और भी बड़ा कारण हो सकता है। स्वामी जी के गुरु स्वामी विरजानन्द, पंजाब ही के रहने वाले थे। जिला जालन्धर के कस्बे करतारपुर के समीप एक गांव में जन्म लेकर, अपने अन्धेपन की अवस्था में आरम्भिक आयु ही में वे घर छोड़ कर निकल गए थे। उनकी वृद्धावस्था में स्वामी दयानन्द उनके मथुरा के निवास स्थान पर उनसे मिले। स्वामी विरजानन्द ने अपने प्रतिभाशाली शिष्य को संस्कृत, विशेषत: व्याकरण की शिक्षा दी और दक्षिणा के रूप में उन्हें वेदों के प्रचार करने की तथा देसी राज्यों में सुधार-कार्य की आज्ञा दी। अपने पंजाबी गुरु की आज्ञा के पालन के लिए भ्रमण करते हुए स्वामी दयानन्द जब पंजाब आए, तो पंजाब ने मानो विरजानन्द द्वारा प्रदान की गई अपनी वैदिक विरासत को पहचान लिया।

स्वामी दयानन्द का ऊंचा कद, हृष्ट-पुष्ट और विशाल पहलवानों जैसा शरीर और गौर वर्ण, उनकी प्रकाण्ड विद्वता, ओजस्वी वाणी और ऋषि प्रतिभा के साथ मिल कर पंजाव के लिए एक आकर्षक व्यक्तित्व बन गया। जैसे कि पहले कहा

जा चुका है कि पंजाब को अपनी स्वतन्त्रता खोए अभी थोड़ा ही समय हुआ था और उसके मानस में अभी तक स्वतन्त्रता की आन और अनख सुरक्षित थी। स्वामी जी के वीरोचित आह्वान को सुन कर पंजाब की प्रतिभा को विशेष प्रेरणा मिली।

स्वामी दयानन्द जहां वेद के विद्वान् और वैदिक विचारों के प्रचारक थे, वहां साथ ही वे एक प्रगतिशील समाज-सुधारक और कट्टर देश-भक्त भी थे। वर्तमान काल में 'स्वराज्य' का शब्द सबसे पहले स्वामी जी ने ही प्रयुक्त किया। 1857 में अंग्रेज़ के विरुद्ध भारतीय संघर्ष के समय स्वामी जी बत्तीस वर्ष के युवक होंगे। उनका उन वर्षों का जीवन वृत्तान्त इतना ही मिलता है कि उन दिनों वे मध्य भारत में नर्बदा आदि के तटों पर विचरते थे। वह प्रदेश भी उस राष्ट्रीय संघर्ष का एक प्रमुख घटना स्थल था। हो सकता है कि स्वामी जी की देश-भक्ति ने उन्हें उस समय की स्थानीय राष्ट्रीय शक्तियों को प्रेरणा देने के लिए भी तैयार किया हो।

भारतीय नव-जागरण के ऐसे ही वीर-योद्धा के व्यक्तित्व का प्रभाव पंजाब प्रदेश के वीर और प्रगतिशील मानस पर पड़ सकता था और वह प्रभाव पड़ा। स्वामी जी ने लाहौर की ब्रह्म-समाज और एक अन्य संस्था के निमंत्रण पर पंजाब आना स्वीकृत किया था। परन्तु स्वामी जी की स्वतन्त्र वृत्ति और निर्भय व्याख्यान शैली के कारण उन संस्थाओं ने उनके कार्यक्रम में सहयोग देना कठिन समझा तो एक उदार-चेता मुसलमान डॉ० रहीम खां ने अपनी कोठी पर उनके व्याख्यानों का प्रबन्ध किया। उसी मुसलमान महानुभाव की कोठी पर लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना की बात सामने आई।

स्वामी दयानन्द को सत्य के प्रति बहुत आग्रह था। जिस बात को वे सत्य मानते थे, उसे निर्भयता से कह देते थे। उन्होंने अपने मुख्य ग्रन्थ का नाम भी सत्यार्थ प्रकाश रखा। सत्य के प्रति ऐसा ही आग्रह काठियावाड़ के एक दूसरे सुपूत महात्मा गाँधी को था। उन्होंने अपने अहिंसक संग्राम के शस्त्र का नाम ही 'सत्याग्रह' रखा। आज के भारत में सत्य के ये दोनों पुजारी काठियावाड़ की वीर भूमि में पैदा हुए। आधुनिक भारत के निर्माण में काठियावाड़ का कैसा महान् योगदान है।

मूलशंकर नाम के संस्कार-वान् काठियावाड़ी ब्राह्मण युवक ने अपने बचपन की, शिव-रात्रि की रात के जागरण के समय की एक साधारण सी घटना से प्रेरित भगवान् के वास्तविक रूप के उत्कट जिज्ञासु ने अपने चाचा और अपनी बहन की मृत्यु के बारे में चिन्तन करते हुए, विवाह के बंधन-जाल से बचने के लिए घर छोड़ा था

और कुछ समय ब्रह्मचारी के रूप में विचरण करने के बाद संन्यास लेकर स्वामी दयानन्द सरस्वती नाम ग्रहण किया था। उन के जीवन में ब्रह्मचर्य का तेज और संन्यास का तप ओत-प्रोत थे। उन्होंने अपने विचार-प्रचार के लिए बहुत से विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ किए। अपने काशी निवास के समय शहर में उनके शास्त्रार्थों की धूम थी। उनके तेज के कारण, लोगों में यह बात फैल गई थी कि उनके चेहरे के दोनों तरफ दो तेज-शिखाएं प्रज्वलित रहती थीं, जो देखने वालों पर जादू का सा असर रखतीं थीं।

विचार-क्रान्ति के एक बवंडर के समान देश में भ्रमण करते हुए स्वामी जी 1883 में अजमेर में केवल 58 वर्ष की आयु में निर्वाण पद को प्राप्त हुए। परन्तु इतने थोड़े समय में वे देश में एक महान् आन्दोलन की बुनियाद रख गए।

—X—

: 7 :

आर्य समाज

1877 में स्वामी दयानन्द पंजाब आए, तो लगभग 15 मास तक इस प्रदेश में घूमे फिरे। अपने इस भ्रमण में वे जालंधर भी आए। उनके इस शहर में आने की एक सुन्दर घटना प्रसिद्ध है। उन्होंने ब्रह्मचर्य की शक्ति पर एक व्याख्यान दिया, जिसके बाद एक सन्मान्य श्रोता राजा विक्रम सिंह ने उन के साथ बातचीत करते हुए कहा कि क्या एक ब्रह्मचारी होने के कारण उन के अन्दर भी ऐसी शरीर-शक्ति है? सुन कर स्वामी जी मुस्करा दिए। बातचीत के बाद जब राजा साहिब अपनी दो घोड़ों की गाड़ी में बैठ कर जाने लगे, तो कोचवान के विशेष हांकने पर भी घोड़े गाड़ी को हिला न सके। राजा ने हैरान होकर पीछे की तरफ देखा तो स्वामी जी, जो गाड़ी को ज़ोर से पकड़े हुए थे, हंस पड़े। इस प्रकार उन्होंने राजा को उसके प्रश्न का उत्तर दिया।

अपने पंजाब-निवास का विशेष समय स्वामी जी, पंजाब की राजधानी, लाहौर में रहे। उस समय से केवल तीस पैंतीस वर्ष पहले वही शहर सिक्ख राज्य की राजधानी भी रह चुका था। अब अंग्रेज़ी राज्य में भी पंजाब के सब से ऊंचे तबके के लोग, पढ़े लिखे अधिकारी और सरदार कोटि के लोग सब से अधिक, इसी शहर में रहते थे। वही शहर पंजाब में नई अंग्रेज़ी शिक्षा का केन्द्र था। लाहौर के प्रबुद्ध तबके के लोगों ने स्वामी जी के व्याख्यानों में उस प्राचीन भारतीय आन और अनख की अलक देखी, जिसकी, स्वतन्त्रता के ज़माने की उनकी, स्मृति अभी ताज़ा थी।

1877 में पंजाब आने से पहले, 1876 में, स्वामी जी की प्रेरणा से उनके अपने प्रदेश की राजधानी बम्बई में आर्य समाज की स्थापना हुई थी। परन्तु वहां उस नई संस्था की जड़ नहीं जम सकी थी। अब लाहौर में उनके कुछ श्रद्धालुओं ने स्वामी जी के मिशन के प्रसार के लिए आर्य समाज की स्थापना की। स्थापना करने वाले प्रमुख लोगों ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि वे उस संस्था के संरक्षक रहें, तो स्वामी जी ने बहुत मार्मिक उत्तर दिया,—"यदि मुझे संस्था का संरक्षक रखोगे; तो परमात्मा को क्या रखोगे?"—इस प्रकार उन्होंने भगवान् के संरक्षण में आर्य समाज को छोड़ कर स्वयं कोई पद लेना स्वीकृत न किया।

उस समय के पंजाब में एक सांस्कृतिक शक्ति थी। उस समय तक सिक्ख और सामान्य हिन्दू एक समान आर्य समाज के सदस्य बने। उस समय की लाहौर आर्य समाज के एक रजिस्टर में मन्त्री के रूप में लाला लाजपतराय के हस्ताक्षर हैं और अध्यक्ष के रूप में एक सिक्ख महानुभाव थे। इस प्रकार पंजाब के प्रबुद्ध हिन्दू वर्ग ने मिलजुल कर आर्य समाज की स्थापना की।

आर्य समाज के नियमों में मुख्य स्थान वेदों और उनकी शिक्षाओं को दिया गया था। एक परमात्मा में विश्वास तो सभी धर्मों के समान आर्य समाज का नियम था ही। शेष सभी नियम सामान्य नैतिकता, समाज सेवा और सज्जनता-निर्माण के थे। पंजाब का मानस इन प्रेरणाओं के अनुकूल था। लाहौर के बाद अन्य स्थानों पर भी आर्य समाजों की स्थापना होने लगी। जहां भी दो चार प्रबुद्ध भाई समाज-सेवा की भावनाओं से प्रेरित हुए वहीं आर्य समाज की स्थापना हो गई।

आर्य समाज के कार्यक्रम में ईसाई चर्च के समान साप्ताहिक सत्संग का तथा स्वाध्याय का, सन्ध्या-प्रार्थना का आयोजन तो था ही, साथ ही शिक्षा-प्रसार, छूतछात निवारण और समाज-सुधार की प्रेरणाएं भी थीं। स्थान-स्थान पर उत्साह वाले लोग प्रायः अवैतनिक रूप में कार्य करने लगे। चन्द लोग जो पूरा समय के प्रचार-कार्य में लगे, उनकी मुख्य प्रेरणा भी समाज-सेवा ही थी, साधारण वेतन तो केवल जीवन-निर्वाह के लिए था।

लाहौर ही आर्य समाज का सब से बड़ा केन्द्र था। 1883 में स्वामी दयानन्द की मृत्यु हो गई तो उनकी स्मृति में लाहौर में एक शिक्षा संस्था की स्थापना की योजना बनी। इसके लिए हंस राज नाम के एक ग्रेजुएट युवक ने अपनी अवैतनिक सेवाएं अर्पित कर दीं। 1886 में लाहौर में दयानन्द एंग्लो वैदिक (डी. ए. वी.) स्कूल की स्थापना हो गई, जो 1889 में एक कालिज के रूप में विकसित हो गया। नवयुवक हंस राज की सेवा-भावना, तपस्या और कर्मठता से यह संस्था देखते ही देखते चल निकली। उससे प्रेरणा लेकर दूसरे स्थानों पर भी आर्य समाज की शिक्षण-संस्थाएं स्थापित हो गईं। इस प्रकार चन्द ही वर्ष में पंजाब में आर्य समाजों और शिक्षण-संस्थाओं का जाल बिछ गया।

नवयुवक हंस राज आगे चलकर, लाला हंस राज और फिर महात्मा हंस राज के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके एक सहपाठी पं० गुरुदत्त भी फ़िज़िक्स में एम. ए. करके और गवर्नमैंट कालिज में उस विषय के प्रोफ़ैसर नियुक्त होकर अपने शेष समय का उपयोग आर्य समाज के कार्य के लिए करने लगे। पंजाब के प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता लाला लाजपतराय भी लाहौर में वकालत करते हुए अपना शेष समय आर्य समाज के कामों में लगाने लगे।

इस प्रकार लाहौर से एक सजीव सांस्कृतिक आन्दोलन का आरम्भ हो गया जो देखते ही देखते पंजाब प्रदेश में और साथ लगते उत्तर-प्रदेश और राजस्थान में भी फैलने लगा।

—×—

: 8 :

जालन्धर आर्यसमाज

जैसा कि कहा जा चुका है, स्वामी दयानन्द सरस्वती की प्रेरणा से, लाहौर के पश्चात् पंजाब के दूसरे शहरों में भी आर्यसमाजों की स्थापना होने लगी। सतलुज और व्यास नदियों के बीच स्थित दोआबा कहलाने वाले प्रदेश के, मुख्य नगर, जालन्धर की एक ऐतिहासिक ख्याति है। इस नगर में भी स्वामी दयानन्द के विचारों का प्रभाव फैलना स्वाभाविक था। जैसा कि कहा गया है, अपने भ्रमण में स्वामी जी इस नगर में आए भी थे।

दोआबा का प्रदेश, उत्तर-पश्चिम से सामान्यतः पर्वत श्रेणी के साथ-साथ आने वाले आक्रमणकारियों और व्यापारिक काफिलों के रास्ते में था और इस पर उत्तर-पश्चिम से आने वाले लोगों के प्रभाव पड़ते रहे हैं। वैदिक काल से यह प्रदेश विशेष सुसंस्कृत और प्रगति-शील माना जाता रहा है। ऋषि विश्वामित्र इसी प्रदेश के माने जाते हैं। वर्षा, उपजाऊ भूमि और जलवायु की दृष्टि से भी इस प्रदेश का आकर्षण रहा है। बहुत घनी आबादी के कारण यहां जीवन-संघर्ष भी विशेष रहा है, जिससे यहां मस्तिष्क के विकास को विशेष अवसर मिला है। सिक्ख राज्य काल में इस प्रदेश के विशेषतः खत्तरी परिवारों के, बुद्धिमान् लोग राज्य-शासन के अंग रहे हैं। अंग्रेजी राज्य में इस प्रदेश ने नव-जागरण में और बाद में, राष्ट्रीय गतिविधियों में विशेष प्रतिभा का परिचय दिया है। आर्य समाज के कार्य में विशेषतः शिक्षा के क्षेत्र में यह प्रदेश पंजाब में आगे रहा है। यह प्रदेश पंजाब का मस्तिष्क माना जाता है।

प्राचीन शहर जालन्धर, जिस का आख्यान पुराणों में आता है, इस दोआबा प्रदेश के मध्य में स्थित है। अपनी राजनैतिक स्थिति के कारण यह हिन्दू और मुसलमान, दोनों धर्मों के लोगों का लगभग बराबर का निवास-स्थान रहा है। यहां के कुछ विशेष प्रबुद्ध हिन्दू परिवारों के कारण यह नगर आर्यसमाज के आन्दोलन में भी अपना विशेष स्थान रखता है। इस नगर में आर्य समाज की स्थापना इस नव-जागरण के आन्दोलन की बुनियाद थी।

इस नगर का पुराना और प्रसिद्ध सोंधी परिवार यहां आर्यसमाज की स्थापना और प्रगति का विशेष कारण था। मुसलमानी काल से इस परिवार ने नगर में अपना विशेष स्थान बनाए रखा था। इसी परिवार के एक प्रमुख पुरुष लाला किशन चन्द ने, कई सौ वर्ष पहले, यहां मुख्य नगर से बाहर, एक किले के रूप में कोट-किशन चन्द नाम की आबादी की स्थापना की थी, जो अब शहर के फैलाव के कारण शहर के बीच में आ गई है। कोट-किशनचन्द का 'सालिग-निवास' किसी समय इस नगर की सबसे विशाल और भव्य बिल्डिंग थी। सोंधी परिवार के इसी भवन सालिग निवास में लाला सालिगराम के घर 1860 में पैदा हुए, लाला देवराज ने, इस नगर में आर्य-समाज के आन्दोलन की जड़ लगाई।

कुछ वर्षों के बाद इसी सोंधी परिवार में विवाहित, लाला देवराज की बहन शिव देवी के पति, लाला मुन्शी राम, जो बाद में महात्मा मुन्शी राम और संन्यास लेने पर, स्वामी श्रद्धानन्द नामों से प्रसिद्ध हुए, इस नगर में वकालत करने के लिए आ गए। लाला देवराज ने उन्हें भी आर्यसमाज के कार्य के लिए प्रेरित कर लिया। उनकी प्रतिभा के कारण, उनकी लिखने और बोलने की शक्ति के कारण और सबसे बढ़ कर उनकी लग्न और सेवा-भावना के कारण, थोड़े ही समय में जालन्धर-आर्यसमाज, लाहौर-आर्यसमाज के बराबर शक्तिशाली हो गई।

स्वामी दयानन्द के पश्चात्, पंजाब-क्षेत्र में फैले आर्यसमाज के कार्य के तीनों प्रमुख नेता, महात्मा हंसराज, लाला देवराज और महात्मा मुन्शी राम दोआबा ही की उपज थे। महात्मा हंसराज दोआबा के उत्तरी भाग में होशियारपुर के समीप स्थित कस्वा बजवाड़ा में पैदा हुए थे, लाला देवराज, जैसा कि कहा गया है, दोआबा के मध्य में स्थित, जालन्धर नगर में पैदा हुए थे और महात्मा मुन्शी राम का परिवार, दोआबा के दक्षिणी भाग में सतलुज के किनारे पर स्थित कस्वा तलवन का रहने वाला था।

जिस प्रकार महात्मा हंसराज ने आर्यसमाज के मुख्य केन्द्र लाहौर में काम करते हुए आर्य-समाज के कार्य का संगठन और संचालन किया, उसी प्रकार लाला देवराज और महात्मा मुन्शी राम ने जालन्धर के कार्य केन्द्र का विकास किया। महात्मा हंसराज ने डी० ए० वी० शिक्षा प्रणाली का विकास और प्रसार किया, लाला देवराज ने स्त्री-शिक्षा के कार्य को उठाया और महात्मा मुन्शीराम ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के विकास के लिए अपना सर्वस्व लगा दिया।

: 9 :

स्वामी श्रद्धानन्द

आर्य समाज के तीनों प्रमुख नेताओं, महात्मा हंसराज, लाला देवराज और स्वामी श्रद्धानन्द में से स्वामी श्रद्धानन्द आयु में बड़े थे, और इन तीनों में से वही थे जिन्होंने न केवल स्वामी दयानन्द सरस्वती के दर्शन किए थे, बल्कि उनके व्याख्यान भी सुने थे और उन से व्यक्तिगत चर्चा भी की थी। अंग्रेज़ी राज्य में पोलीस के एक ऊंचे अधिकारी, अपने पिता लाला नानक चन्द के साथ उत्तर-प्रदेश के रायबरेली नगर में रहते हुए उन्होंने स्वामी दयानन्द का सम्पर्क प्राप्त किया था। उस समय नवयुवक मुन्शी राम का झुकाव नास्तिकता की ओर था, क्योंकि लगभग सभी धर्मों में प्रचलित बाह्य आडम्बर और जड़ता को देख कर और अपनी शंकाओं का समाधान न पाकर वह भी उस समय के सामान्य पढ़े लिखे भारतीय युवकों के समान, पाश्चात्य विचारों की चकाचौंध का शिकार था। उसने इस बात का विश्वास भी मुश्किल से किया था कि केवल संस्कृत के विद्वान् और अंग्रेज़ी बिल्कुल न जानने वाले स्वामी दयानन्द भी उस का मार्ग-दर्शन कर सकेंगे। युवक मुन्शी राम ने स्वामी जी के सामने ईश्वर के अस्तित्व सम्बन्ध अपनी शंकाएं रखी तो स्वामी जी ने अपने ढंग से समाधान प्रस्तुत किया। स्वामी जी की तर्क-संगत बातों को सुन कर भी युवक ने कहा था,

"स्वामी जी आप विद्वान् हैं। अपने तर्क से आप ने मुझे निरुत्तर तो कर दिया है, परन्तु इससे मुझे परमात्मा के अस्तित्व पर विश्वास नहीं हुआ हैं।"

इसके उत्तर में स्वामी जी ने कहा था,

"भाई, मैंने तुम्हारे तर्क का उत्तर तर्क के द्वारा दे दिया है। तुम्हें परमात्मा के अस्तित्व का विश्वास तो तब होगा, जब परमात्मा स्वयं इस के लिए कृपा करेंगे।"

वही नास्तिक युवक मुन्शी राम 1885-86 में, लगभग तीस वर्ष की आयु में स्वामी जी केह कहे अनुसार ईश्वर की कृपा होने पर, पूर्ण विश्वास के साथ जालन्धर में

आर्य समाज के शिक्षा तथा समाज-सुधार, ईश्वर-भक्ति और वेद प्रचार के कार्य में लगा था और लगभग 15 वर्ष बाद अपना सब ऐश्वर्य छोड़छाड़ कर, गुरुकुल की स्थापना के लिए, गंगा के तट पर, शेरों और दूसरे हिंस्र पशुओं से आक्रांत, जंगल में धूनी रमा कर जा बैठा।

आर्य समाज के क्षेत्र के इन तीनों महापुरुषों में से स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन सबसे अधिक 'कलरफुल', भिन्न भिन्न रंगों और प्रतिभाओं से सुशोभित था, 'स्पैक्टैकुलर' अद्भुत और आकर्षक था। महात्मा हंसराज सातत्य की मूर्ति थे। जिस कार्य को उन्होंने ले लिया उसमें वे निरन्तर चुपचाप पूरी लगन से, बिना इधर उधर हुए लगे रहे। लाला देवराज का एक भक्ति पूर्ण मातृ-हृदय था, एक साहित्यिक प्रतिभा थी, जिसे उन्होंने चुपचाप स्त्री-शक्ति के जागरण में लगाए रखा। स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन में एक क्रांति की भावना थी। उनका जीवन लगातार प्रगति और क्रान्ति की भावना से प्रेरित रहा। एक रईस घराने में सम्पन्न पिता के घर में पैदा होकर, उस ज़माने के रईसी जीवन की बुराइयों में से गुज़र कर उन्होंने एक सच्चा सुच्चा, सेवा का समाज-सुधार का मार्ग अपनाया, कुछ वर्ष की सामान्य सेवा साधना के बाद उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य का ऋषि-जीवन अपना लिया, लगभग साठ वर्ष की आयु में उन्होंने संन्यास लेकर भगवा वस्त्र धारण कर लिया, 1920 में गांधी जी के आन्दोलन में शामिल होकर उन्होंने दिल्ली में एक जलूस का नेतृत्व करते हुए, गोरखा सैनिकों की संगीनों के सामने अपनी छाती नग्न करके उन्हें गोली चलाने के लिए ललकारा, उस समय के हिन्दू-मुस्लिम एकता के दिनों में, दिल्ली की जामा-मस्जिद में, वेद-मन्त्र पढ़कर मुसलमान जन-समूह को सम्बोधित किया और कुछ ही वर्ष बाद शुद्धि के क्रान्तिकारी आन्दोलन में रत होकर उन्होंने एक मतान्ध मुसलमान युवक की गोली से शहादत पाई।

पंजाबी महापुरुष लाला लाजपतराए की तरह स्वामी श्रद्धानन्द ने भी प्रान्तीय क्षेत्र से आगे निकल कर अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त की। मार्शल ला और जलियांवाला बाग के हत्याकांड के बाद जब अमृतसर के कांग्रेस सम्मेलन का आयोजन करते हुए नेता लोग घबराते थे तब स्वामी जी ने निर्भयता से इस कार्य की ज़िम्मेवारी ली।

गांधी जी के साथ उन का परिचय बहुत पुराना था। उनके गुरुकुल के विद्यार्थियों ने गंगा के बांध पर मेहनत मज़दूरी करके कुछ रुपया अर्जित किया था और अफरीका में गांधी जी के आन्दोलन की मदद के लिए भेजा था। हिन्दुस्तान आकर

गांधी जी गुरुकुल कांगड़ी गए तो उन्होंने स्वामी जी के चरण छूने का आग्रह किया था। गांधी जी के नाम के साथ महात्मा शब्द का प्रयोग शायद सब से पहले गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने किया था, क्योंकि उनको गांधी जी में भी वैसी ही प्रतिभा दिखाई देती थी जैसी उनके आचार्य, महात्मा मुन्शी राम में थी। दोनों महात्माओं का यह स्नेह सम्बन्ध सदा बना रहा।

कन्या महाविद्यालय जालन्धर के बीजारोपण का कार्य उस समय के लाला मुन्शी राम ही की प्रेरणा से हुआ। एक दिन उन्होंने ईसाई स्कूल में पढ़ रही अपनी लड़की को 'ईसा ईसा बोल, तेरा क्या लगेगा मोल' गाना गाते सुना तो उन्होंने कन्याओं के लिए एक आर्य-संस्था स्थापित करने का विचार किया जो जल्दी ही कार्यान्वित हो गया।

—×—

: 10 :

प्रेरणा-स्रोत माई भगवती

सामान्यतः कन्या महाविद्यालय जालन्धर ही को भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में स्त्री शिक्षा की सबसे पहली स्वदेशी, यहां के निवासियों द्वारा स्थापित, संस्था माना जाता हैं और इस संस्था के विकास और महत्त्व के कारण, 'स्नातिका' उपाधि तक की ऊंची पढ़ाई के कारण आगे से आगे प्रगति के कारण यह ठीक भी है। परन्तु इस संस्था की स्थापना से पूर्व दोआबा ही के जिला होशियारपुर के कस्बे 'हरियाना' में एक कन्या पाठशाला की स्थापना हो चुकी थी। उस पाठशाला की स्थापना माई भगवती नाम की एक तेजस्वी और सेवा-भावी महिला ने की थी।

माई भगवती हरियाना के एक खत्तरी परिवार की बेटी थीं, जो जालन्धर में बियाही गई थीं। परिस्थितियों से जिन के सम्बन्ध में निश्चित तथ्य ज्ञात नहीं हैं, उन्होंने सामान्य गृहस्थ जीवन को त्याग कर समाज-सेवा का मार्ग अपनाया। हमारे देश में इतिहास के प्रति जीवन की घटनाओं को आगे की पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखने और प्रेरणा-स्रोत बनाने के प्रति ऐसी उदासीनता चली आई है कि हमें अपने देश के राजाओं महाराजाओं और अन्य प्रतिभाशाली महापुरुषों तक के जीवन की घटनाओं के बारे में भी तथ्य नहीं मिलते। परन्तु इतनी जल्दी लगभग एक ही शताब्दी के अन्दर अन्दर माई भगवती जैसी उस अन्धकार और जड़ता के जमाने में स्त्री-शिक्षा जैसा क्रान्तिकारी कार्य करने वाली एक ओजस्वी महिला को भूल जाना, उसके जीवन के बारे में साधारण तथ्यों को भी सुरक्षित न रखना, उस उदासीनता की पराकाष्टा है।

माई भगवती द्वारा स्थापित की गई वह कन्या पाठशाला आज तक, वर्तमान वातावरण के अनुरूप उसी स्थान पर चल रही है और साथ ही उसी पाठशाला के संचालकों के प्रयत्न से नगर से थोड़ी दूर वाहर एक अच्छा माई भगवती गर्ल्ज़ हायर

सैकण्डरी स्कूल भी चल रहा है, परन्तु माई भगवती के आर्थिक जीवन के सम्बन्ध में बहुत कम तथ्य मिलते हैं। इतना कहा जाता है कि माई भगवती बम्बई में या बड़ोदा में स्वामी दयानन्द सरस्वती से मिली थीं और उन्होंने स्वामी जी से अपने जीवन के लिए मार्ग-दर्शन माँगा था। स्वामी जी ने उन्हें कन्याओं की शिक्षा में अपना जीवन लगाने के लिए कहा। अनपढ़ माई भगवती ने स्वामी जी का आदेश माना और पुरुष का वेश बना कर काशी में साधारण हिन्दी आदि की शिक्षा प्राप्त करके अपने नगर में कन्या पाठशाला स्थापित की।

उस समय उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग मुख्य काल में इस प्रदेश की स्त्रियों में विवाह-शादी आदि समारोहों और उत्सवों पर भद्दे और कभी कभी अश्लील गाने गाने का रिवाज था। माई भगवती में कुछ काव्य प्रतिभा थी, जिसके आधार पर उन्होंने पुराने प्रचलित गानों की तर्ज़ों पर सीधे सादे, परन्तु सुन्दर भक्ति-पूर्ण और सभ्य गाने बना कर प्रचलित किए। हमारे देश में लोग कर्त्ता को भले ही भूल जाते हैं, परन्तु उस की कृति को याद रखते हैं। उन गानों में से अधिकांश सुरक्षित हैं और प्रकाशित रूप में मिलते हैं। उन गाँवों से माई भगवती के सीधे-सादे सभ्य और शिष्ट मानव का चित्र मिल जाता है।

माई भगवती की स्मृति को बनाए रखने का दूसरा श्रेय कन्या महाविद्यालय जालन्धर और उसके संस्थापक लाला देवराज जी को है। लाला जी को अपने कार्य के लिए प्रेरणा माई भगवती और उनके कार्य से मिली। 1910 के जालन्धर आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर व्याख्यान देते हुए उन्होंने कन्या महाविद्यालय के अपने कार्य के बारे में कहा था,

"जब कोलम्बस ने पाताल देश का पता लगाया था तब उसको अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़े थे।.....कन्या महाविद्यालय के नाम को मैं कोलम्बस के नाम से उपमा दूंगा।"

कोलम्बस को अपने कार्य में स्पेन की रानी 'हज़ेनेला' से प्रेरणा और सहायता मिली थी। अपनी उपमा को जारी रखते हुए लाला जी ने अपने व्याख्यान में आगे कहा।

"और हमारी 'हज़ेनेला' वह थी, जिसने उस समय हमें इस महायज्ञ का अनुष्ठान करने के लिए प्रेरित किया, जब कि उसको शुरू करने के लिए हमारे पास केवल आठ रुपये की पूंजी थी। सदियों से गिरी हुई स्त्री जाति की ध्वजा को उठा कर फिर से आकाश में ऊंचा फहराने वाली वह देवी थी हरियाना की माई भगवती। आज

ज़माना बदल गया है। समाज-सुधार के काम में हम काफी आगे बढ़े हैं। आज ये देवियां बिना चिक और परदे के यहां बैठ सकती हैं। मगर हरियाना की इस 'हज़ेनेला' ने ऐसे समय पर काम करना शुरू किया था, जब कि स्त्रियों के लिए नंगे मुंह फिरना एक कलंकित करने वाला काम था। हम हरियाना को ऐसा ही पवित्र समझेंगे जैसे हरिद्वार को।"

मालूम होता है कि कन्या महाविद्यालय जालन्धर की स्थापना के जल्दी ही बाद माई भगवती का देहान्त हो गया। परन्तु इस संस्था के संस्थापक लाला देवराज हरियाना की उस पाठशाला के वार्षिक उत्सव पर अपनी संस्था की छात्राओं को लेकर इस प्रकार छकड़ों आदि में जाते रहे, जिस प्रकार यात्री तीर्थ-यात्रा पर जाते हैं।

इस प्रकार इस प्रदेश में स्त्री शिक्षा और स्त्री शक्ति जागरण का श्रेय सब से पहले हरियाना की उस सद्भावनाशील और तेजस्वी माई भगवती को है। उन्होंने अपने मायके में इस कार्य को उठाया और लाला देवराज जी ने उसके सुसराल जालन्धर में, उसी कार्य को एक शानदार और भव्य रूप दिया।

—×—

:11:

नारी की सप्त शक्तियां

भगवद्-गीता में भगवान् की विभूतियों का वर्णन करते हुए श्री कृष्ण बता रहे हैं कि सृष्टि में जहां कहीं भी कुछ विशेष तेज हैं, सौंदर्य है, शक्ति है, विभूति है भगवान् का रूप है। भगवान् की ऐसी शक्तियों का उल्लेख करते हुए वे कहते है :—

'कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृति मेधा धृतिः क्षमा।'

स्त्रियों में ये शक्तियां 'कीर्ति', 'श्री', 'वाक्', 'स्मृति', 'मेधा', 'धृति' और 'क्षमा' के रूप में विद्यमान हैं।

यहां श्री कृष्ण ने स्त्री की सात शक्तियों का उल्लेख किया है। ये शक्तियां वैसे तो स्त्री-पुरुष दोनों में हैं और दोनों का विकास अपेक्षित है, परन्तु श्री कृष्ण ने स्त्री के जीवन में इन के अपेक्षाकृत अधिक तेजस्वी रूप में विकसित होने की बात कही है। श्री कृष्ण की दृष्टि में स्त्री अपने जीवन में इन शक्तियों का विकास पुरुष की अपेक्षा अधिक कर सकती है। स्त्री के जीवन में इन शक्तियों का विकास ही स्त्री शक्ति का जागरण है।

यहां स्त्री की इन शक्तियों का थोड़ा विवेचन करते हैं—

कीर्ति—इस शब्द जैसा ही शब्द 'कृति' है। 'कृति' की सुरक्षा 'कृति' की परम्परा, मनुष्य की अच्छी कृतियों को, मानव-संस्कृति को सुरक्षित करना, उसकी परम्परा को आगे चलाना, यह सब कीर्ति के अर्थों में आ जाता है। 'कीर्ति' के सामान्य अर्थ 'यश' का भी यही भाव है। मानव के गुणों को, शुभ कृत्यों को सुरक्षित करना और बढ़ाना ही मानव का यश है, मनुष्य की कीर्ति है।

इन अर्थों में 'कीर्ति' स्त्री का विशेष गुण है ही। माता के रूप में स्त्री अपने वंश की, मानव की, संस्कृति की परम्परा का विकास, बच्चे के जीवन में, करके उस परम्परा को सुरक्षित करती है। ज्ञान प्राप्ति के लिए मनुष्य का 'मातृमान्', 'पितृमान्' 'आचार्यवान्' होना आवश्यक बताया गया है। यहां भी पहला स्थान माता का है। सामान्यतः कहा जाता है कि धर्म और संस्कृति की रक्षा स्त्री ने की है। बच्चे के जीवन का निर्माण करके स्त्री ही मानवता का निर्माण और रक्षा करती है।

आज के शिक्षण-शास्त्र विशारदों की दृष्टि में बच्चों की शिक्षा का, विशेषत: आरम्भिक शिक्षा का कार्य जितने अच्छे ढंग से स्त्री कर सकती है, पुरुष नहीं कर सकता, क्योंकि वह अपने मातृ-हृदय के कारण एक बच्चे के मानस को ज्यादा अच्छी तरह जानती है ।

श्री—'श्री' शब्द का अर्थ है, सुन्दरता, सम्पन्नता, स्वच्छता । घर की स्वामिनी होने के कारण घर के वातावरण को बनाने का काम स्त्री का है पुरुष का कार्य सामान्यत: घर से बाहिर होता है । घर के जीवन का निर्माण मुख्यत: स्त्री के हाथ में है । इस में शक नहीं कि पुरुष के आर्थिक सहयोग के बिना सामान्यत: स्त्री के लिए यह कार्य कठिन हो सकता है, परन्तु पुरुष का यह सहयोग होने पर भी घर की शोभा सुन्दरता और स्वच्छता को बनाए रखना स्त्री पर निर्भर हैं । संस्कृत में तो प्रसिद्ध उक्ति है—'न गृहं गृहमित्याहु: गृहिणी गृहमुच्यते' (गृहिणी से ही घर घर कहलाता है ।)

सुन्दरता की दृष्टि का, स्वच्छता की भावना का, जैसा विकास स्त्री में होता है सामान्यत: पुरुष में नहीं होता । ललित कलाओं में स्त्री की निपुणता सामान्यत: मानव जीवन में स्पष्ट दिखाई देती है ।

वाक्—स्त्री की तीसरी शक्ति 'वाक्' अथवा वाणी है । सत्य और माधुर्य वाणी के दो बड़े गुण हैं । इन दोनों गुणों का विकास पुरुष की अपेक्षा स्त्री में होना अधिक स्वाभाविक और अपेक्षित है । स्त्री का सम्बन्ध और सम्पर्क मुख्य रूप में घर के अन्दर और बाहर भी एक सीमित अपनत्व वाले क्षेत्र में, अपने प्रिय जनों के साथ आता है । अपने प्रिय जनों के साथ सत्य का और मधुरता का व्यवहार अधिक आसान और स्वाभाविक है । बच्चे पर सच्चाई और मधुर भाषण के प्रभाव डालने के लिए माता को स्वयं सत्यवादी और मधुर-भाषी होना आवश्यक है । घर और परिवार के वातावरण को सत्यमय और मधुर बनाने के लिए स्त्री में 'वाक्' शक्ति का विकास बहुत आवश्यक है । इसलिए 'वाक्' की शक्ति को, वाणी की शक्ति को, स्त्री की विशेष शक्ति कहा गया है ।

स्मृति—'स्मृति' शब्द के अर्थ सामान्यत: स्मरण या याद है । स्मरण दुनिया की चीजों का, बातों का, सम्बन्धों और घटनाओं का भी हो सकता है । परन्तु इस अर्थ में यह स्त्री की विशेष शक्ति कहलाने में कठिनाई होगी । इस शब्द के आध्यात्मिक अर्थ है 'भगवत्-स्मृति' । जो आत्मा या परमात्मा, जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म सत्ता हमारे जीवन में ओत-प्रोत है । हमारे मानस की तह में विद्यमान है, जिस शक्ति के कारण ही हमारा जीवन है, उसकी स्मृति, इसकी याद, निरन्तर रहना, शायद 'स्मृति' का यही अर्थ यहां अपेक्षित है ।

यह भगवत्-स्मृति स्त्री के लिए अधिक स्वाभाविक और सुलभ है । घर में स्त्री का जीवन सामान्यत: निश्चित और क्रम-बद्ध रहता है । उसके घरेलू जीवन में

सफाई और हलके शरीर-श्रम का आवश्यक स्थान है। घर की, रसोई, कपड़ों की सफाई एक सामान्य स्त्री का नित्य कर्म है। ऐसे कर्म के साथ भगवत् स्मृति का और मन की सफाई का खूब मेल है। घर का कातना आदि गृह-उद्योग भी भगवत् स्मृति के साथ खूब चल सकता है। बच्चों की, घर के लोगों की, आए गए की सेवा भी, यदि वह आध्यात्मिक दृष्टि से की जाए, भगवत्-स्मृति की साधना है।

भले ही आज स्त्री घर से निकलने के लिए बेचैन हो, परन्तु एक सुव्यवस्थित घर स्त्री के लिए एक क्षेत्र-संन्यास के समान आध्यात्मिक केन्द्र बन सकता है। स्त्री का मानस पुरुष के मानस की अपेक्षा कम बिखरा हुआ होता है, इसलिए उसका एकाग्र होना आसान होता है।

मेधा—'मेधा' शब्द 'शुद्ध बुद्धि', 'आसक्त बुद्धि' और प्रज्ञा जैसे ही अर्थ रखता है। ऐसी बुद्धि तब प्राप्त होती है जब हमारा चिन्तन तटस्थ होता है, विषयों की वासनाओं से मुक्त होता है। मन का निर्मल और विषयों की वासनाओं के आकर्षण से मुक्त होना 'शुद्ध बुद्धि' 'मेधा' और 'प्रज्ञा' की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। 'मेधा' को स्त्री की विशेष शक्ति क्यों कहा गया है, यह बात चिन्तनीय है।

जैसा कि ऊपर भी कहा जा चुका है स्त्री के जीवन में अधिक त्याग है, अधिक सेवा है, मन को निर्मल करने की अधिक गुंजायश है, इसलिए उसके लिए 'मेधा' की प्राप्ति अपेक्षाकृत सुलभ है। इस पक्ष में एक और युक्ति भी है। पाँच विषयों, आंखों के विषय 'रूप', कानों के विषय 'शब्द', जिह्वा के विषय 'रस', नाक के विषय 'गन्ध' और त्वचा के विषय 'स्पर्श' में से, जिह्वा का विषय 'रस' एक ऐसा विषय है जिस पर विजय पाने की साधना स्त्री निरन्तर करती है और कर सकती है। तरह-तरह के खाने तैयार करना और उन्हें परोसना एक सामान्य स्त्री के नित्य के कार्य के अन्तर्गत है। सामान्यतः एक स्त्री अपना तैयार किया गया खाना, भगवान् को भोग लगाकर और घर में दूसरों को खिलाकर बाद में स्वयं खाती है और बहुधा किसी स्वादिष्ट पदार्थ के न बचने पर उसके बिना भी रह लेती है। क्या यह सब जिह्वा के विषय 'रस' पर विजय पाने की साधना नहीं है या साधना बन नहीं सकती है? किसी एक विषय पर प्राप्त की गई विजय शेष विषयों पर विजय की शक्ति प्रदान करती है। 'रस' के विषय पर स्वभावतः प्राप्त हो गई स्त्री की यह विजय दूसरे विषयों के प्रति उसके आकर्षण को भी दुर्बल कर सकती है। इस प्रकार घर में स्त्री का कार्य-क्षेत्र ही विषय-विजय का कार्य-क्षेत्र बन जाता है। विषयों की वासनाओं से मुक्ति ही 'मेधा' और 'प्रज्ञा' की प्राप्ति का आधार है। इस दृष्टि से 'मेधा' और 'प्रज्ञा' को स्त्री की विशेष शक्ति कहा गया है। स्त्री के अन्तःकरण में भक्ति की भावना का आधार यही 'मेधा' और 'प्रज्ञा' है।

धृति—'धृति' का अर्थ है 'धैर्य', 'सहन-शीलता', 'उत्साह' आदि। बच्चे का

पालन मुख्यतः माता ही करती है। एक असहाय, नन्ही सी जान को, पालपोस कर बड़ा करने में कितने धैर्य की आवश्यकता है। बच्चे की बीमारी में उसकी सेवा और भी अधिक धैर्य माँगती है। स्त्री को अपने धैर्य का यह क्षेत्र मिला है और वह उसे एक साधना क्षेत्र बना सकती है। यह साधना-क्षेत्र जितनी सुलभता से स्त्री को मिल सकता है, उतनी सुलभता से पुरुष को नहीं मिल सकता। छोटे बच्चों को शिक्षा देने में, बीमारों की सेवा करने में स्त्री के धैर्य-गुण का, उसकी धृति का विकास होता है।

क्षमा—स्त्री की सात शक्तियों में से अन्तिम 'क्षमा' है। यह शब्द समझने में बहुत कठिन नहीं है। इस शक्ति का विकास भी स्त्री में अपने मातृ-पद के कारण होता है। नादान और बेसमझ बच्चों की कितनी धृष्टताओं को, अवज्ञाओं को, माता को सहन करना पड़ता है और क्षमा करना पड़ता है। सामान्यतः बच्चा पिता से डरता है परन्तु माता से सहानुभूति की आशा रखता है। पिता की अपेक्षा माता को क्षमा-साधना के अधिक अवसर मिलते हैं। क्षमा की यह निरन्तर साधना उसके अन्दर इस शक्ति का विकास करती जाती है।

भगवद्-गीता में वर्णित स्त्री की इन सात शक्तियों का रक्षण और विकास होना चाहिए। पुरुष के साथ बराबरी की दौड़ में भी इन बुनियादी शक्तियों की ओर विशेष ध्यान रहना चाहिए।

स्त्री के अन्दर इन शक्तियों का विकास, जागरण और रक्षण ही स्त्री-शक्ति का जागरण है।

—×—

: 12 :

स्त्री-जीवन का विकास

1

'मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद ।'

यह शत-पथ-ब्राह्मण का वचन है । वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे, तभी मनुष्य ज्ञान्वान् होता है । वह कुल धन्य और वह संतान बड़ी भाग्यवान् है, जिसके माता और पिता धार्मिक और विद्वान् हों । जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुंचता है, उतना किसी से नहीं । जितना माता सन्तानों पर प्रेम तथा हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता । इसलिए मातृमान् अर्थात् 'प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृमान् ।'

—स्वामी दयानन्द सरस्वती

2

स्त्री और पुरुष समान दरजे के हैं, परन्तु वे बिल्कुल ही एक नहीं हैं, उनकी अनोखी जोड़ी है । वे एक दूसरे की कमी को पूरा करने वाले हैं और एक दूसरे का सहारा हैं । यहां तक कि एक के बिना दूसरा रह नहीं सकता है । दोनों में से कोई भी अपनी जगह से गिर जाए तो दोनों का नाश हो जाता है ।

इस लिए स्त्री-शिक्षा की योजना बनाने वालों को यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए । दम्पति के बाहिर के कामों में पुरुष सर्वोपरि है । बाहिर के कामों का विशेष ज्ञान उसके लिए जरूरी है । घर के अन्दर के कामों में स्त्री की प्रधानता है । इसलिए गृह-व्यवस्था, बच्चों की देखभाल, उनकी शिक्षा आदि के बारे में स्त्री को विशेष ज्ञान होना चाहिए ।

यहां किसी को कोई भी ज्ञान प्राप्त करने से रोकने की कल्पना नहीं है । परन्तु शिक्षा का क्रम इन विचारों को ध्यान में रखकर न बनाया गया तो स्त्री और पुरुष दोनों को अपने-अपने क्षेत्र में पूर्णतः प्राप्त करने का मौका नहीं मिलेगा ।

मैं स्त्रियों की समुचित शिक्षा का हिमायती हूं, लेकिन मैं यह भी मानता हूं,

कि स्त्री दुनिया की प्रगति में अपना योगदान पुरुष की नकल करके या स्पर्धा करके नहीं दे सकती। पुरुष की नकल करके वह उस ऊंचाई तक नहीं पहुंच सकती, जिस ऊंचाई तक उठना उसके लिए संभव है। उसे पुरुष की पूरक बनना चाहिए। —गांधी जी

3

स्त्रियों में पुरुषों से अधिक एकाग्रता होती है। यह एक कुदरती देन है। इस गुण के बिना बच्चों का पालन नहीं हो सकता। इस गुण के कारण स्त्रियों की स्थिति ध्यान-योग और भक्ति-योग के लिए अधिक अनुकूल है। कर्म-योग और ज्ञान-योग पुरुषों के लिए अधिक अनुकूल हैं। कर्म-योग में भी ऐसे काम, जिनमें अधिक एकाग्रता की जरूरत है, स्त्रियां कुशलता से कर सकती हैं।

बहनों, को यह समझना चाहिए कि उनका ईश्वर के साथ सीधा सम्बन्ध है, बीच में पुरुषों की जरूरत नहीं है। आज स्त्रियां समझती हैं कि ईश्वर के साथ हमारा सम्बन्ध परुषों के प्रतिनिधित्व के द्वारा है। इस विचार को छोड़ना चाहिए।

आज एक ही घर में लड़के-लड़कियां होते हैं। लड़का खुली हवा में घूमने जाएगा। लेकिन लड़की को शृंगार-आभूषण आदि से कस कर समझाया जाएगा कि 'तू लड़की है।' ऐसा क्यों होता है? जैसे लड़का है, वैसे लड़की है। रात में हम किसी लड़के को स्टेशन पर किसी काम के लिए भेज सकते हैं लेकिन लड़की को नहीं भेज सकते।

पुरुषों ने स्त्रियों को डरपोक बनाया है, उनको एक बैंक जैसा बना दिया है और उनके नाक में, कान में, गले में, हाथ में, पांव में सोने की बेड़ियां डाल दी हैं। ताकि वे पुरुषों के काबू में रहें और घर से बाहिर अकेली न जा सकें। आज हम समझ बैठे हैं कि ये गहने सौभाग्य के चिन्ह हैं। लेकिन जब पुरुषों को ऐसे सौभाग्य की जरूरत नहीं है तो स्त्रियों को क्यों होनी चाहिए? स्त्रियों को बचपन से सजावट की गुड़ियां बनाया जाता हैं, ताकि वे डरपोक बनें। स्त्रियों को यह सब छोड़ कर निर्भय बनना चाहिए। —विनोबा जी

4

माता में पिता की अपेक्षा सन्तान के लिए अधिक हित होता है। इस लिए माता पिता की अपेक्षा कुर्बानी भी अधिक कर सकती है। यदि किसी संस्था के छात्र-छात्राओं में त्याग है तो वह अमृत देने वाला है।

विद्यालय में जब आप ड्योढ़ी में प्रवेश करेंगे तो आपको उन छात्राओं के नाम देखने को मिलेंगें, जिन्होंने छः मास या उससे अधिक समय अपने आराम को कुर्बान करके, विद्यालय की सेवा के लिए दिया है।

—ला० देवराज

: 13 :

वर्तमान प्रबुद्ध भारतीय नारीत्व की प्रतिभाशाली प्रतिनिधि—

भारत कोकिला सरोजिनी नायडू

पिछले एक सौ वर्ष में भारत में जिन विभूतियों ने जन्म लिया और देश के जीवन का उत्थान किया, उनमें भारत-कोकिला सरोजिनी नायडू का नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय है। आप मुख्य रूप में एक कवि थीं। परन्तु आपने राष्ट्रीय आन्दोलन और समाज-सुधार के क्षेत्रों में भी महान् कार्य किया। आप वर्तमान प्रबुद्ध भारतीय नारीत्व की प्रतिनिधि कही जा सकती हैं।

आप का जन्म 1879 ई० में एक सम्पन्न बंगाली परिवार में हुआ जो हैदराबाद दक्षिण में बस गया था। आपके पिता एक महान् विद्वान् और हैदराबाद के प्रसिद्ध 'निज़ाम कालिज' के संस्थापक थे। आप की माता बंगाली भाषा की एक प्रतिभाशाली कवयित्री थीं।

उस समय के सम्पन्न परिवारों के रिवाज के अनुसार आपकी शिक्षा-दीक्षा अंग्रेज़ी माध्यम से हुई। अंग्रेज़ी मानो आपकी मातृ-भाषा बन गई। अपने बचपन ही से आप ने अंग्रेज़ी भाषा में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास लिखना शुरू कर दिया। केवल बारह वर्ष की आयु में आपने मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली।

सोलह वर्ष की आयु में आप को निज़ाम सरकार से विलायत में पढ़ने के लिए छात्र-वृत्ति मिल गई। विलायत में आपका परिचय अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् 'सर एडमंड गास' से हुआ। उस समय आप की कविता की भाषा भी अंग्रेज़ी होती थी और उस कविता में भाव भी अंग्रेज़ी जीवन के होते थे। स्वभावतः ऐसी कविता में वास्तविक जीवन नहीं झलक सकता था। आप की कविता को देख कर 'सर ऐडमेंड गास' ने आपको निम्नलिखित आशय का परामर्श दिया—

"आप की कविता भाषा, छंद और व्याकरण की दृष्टि से दोष-रहित है, परन्तु उसमें भारी कमी यह है कि वह नितान्त कृत्रिम है। कल्पना और भावों की

दृष्टि से वह पाश्चात्य रंग में रंगी है। उसमें 'टैनीसन' और 'शैले' के रंगों का आभास है। यह तो अनुकरण करने वाले पक्षी की वाणी है।

"झूठे अंग्रेज़ी भावों में डूबी हुई अपनी सब रचनाओं को रद्दी की टोकरी में डाल दो। एक भारतीय युवती से, जिस ने हमारी भाषा ही नहीं, हमारे छन्द-शास्त्र का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया है, हम पाश्चात्य भावों और कल्पनाओं की आशा नहीं करते। हम उससे प्राच्यभावों और कल्पनाओं का परिचय प्राप्त करना चाहते हैं, धर्म के उन प्राचीन मन्तव्यों का दर्शन प्राप्त करना चाहते हैं, जिन का प्राच्य देशों में उस समय अनुभव हो चुका था, जब पाश्चात्य लोगों को अपनी स्थिति ही का ज्ञान नहीं था। तुम अपनी कविता में अंग्रेज़ी पक्षियों का वर्णन करना छोड़ दो। इसी प्रकार हमारे फूलों, फलों, वृक्षों तथा दृश्यों के वर्णन का भी त्याग कर दो। तुम हमारे गिरजा-घरों के घण्टों को भूल जाओ।

तुम अपने देश और अपने प्रान्त की नदियों का, वनस्पति का, अपने हां के पर्वतों, मन्दिरों, उद्यानों और निवासियों का वर्णन करो। पाश्चात्य कवियों की अनुकृति की चेष्टा में अपने व्यक्तित्व का विनाश न कर डालो।"

उस महान् विद्वान् की यह बात आप को लग गई। तत्पश्चात् आप ने अपनी कविता की भाषा, उसका छन्द तो अंग्रेज़ी रखा परन्तु उसकी कल्पनाओं को, उसके भावों को भारतीय बना लिया। इस प्रकार भारत को एक प्रतिभाशाली राष्ट्रीय कवयित्री की प्राप्ति हो गई। आप की कविताओं ने भारत के राष्ट्रीय जागरण में महान् सहयोग दिया।

एक सम्पन्न उच्च वंश में जन्म लेकर और ऐश्वर्य के वातावरण में पल कर भी आप ने भारत की सामान्य जनता के भावों को हृदयंमगम कर लिया था। आप को भारत के भविष्य पर बहुत आशाएं थीं। अपनी एक कविता में आप ने लिखा है—

"अन्धकार से ग्रस्त, रुदन करती हुई जातियां तेरे नेतृत्व की प्रतीक्षा कर रही हैं। मां, हे मां, तू सो क्यों रही है? तेरी प्रतिष्ठा करने के लिए तेरा भविष्य तेरा आह्वान कर रहा है।"

आपकी नई कविताओं के बारे में सर ऐडमंड गास ने कहा था "मेरा विश्वास है कि आज तक जितने हिन्दोस्तानियों ने अंग्रेज़ी में रचनाएं की हैं उनमें से सरोजिनी की रचनाएं सबसे चमत्कारक, सबसे मौलिक और सबसे शुद्ध हैं।"

आपकी रचनाओं से भारत के राष्ट्रीय तथा समाज-सेवी क्षेत्रों में बहुत प्रेरणा मिली। आप गांधी जी के राष्ट्रीय तथा रचनात्मक कार्यों में बढ़चढ़ कर भाग लेने

लगीं।

समाज-सुधार और देश-सेवा के क्षेत्रों में कार्य करने वालों को अपने एक व्याख्यान में आपने कहा था—

"दानशीलता के भाव से प्रेरित होकर ग़रीबों की सहायता करना उनका अपमान करना है जो उनके लिए मृत्यु से भी बुरा है। धनियों को धन का अभिमान है और रूपवानों को अपने सौन्दर्य का। कवियों के पास उन की प्रतिभा है। परन्तु ग़रीबों के पास ले देकर एक आत्म-सम्मान है। यदि समाज-सेवा करना चाहते हो तो विनय-भाव से करो। इसी से दीन दुःखी और मरते हुए लोग तुम्हारी सेवा को स्वीकार करेंगे। इसी से ग़रीब लोग तुम्हारे हाथों से वह जल ग्रहण करेंगे जिससे उनके प्राणों की रक्षा की सम्भावना है।"

साहित्यिक-क्षेत्र से जन-सेवा-क्षेत्र में आने के भावों को आप ने अपनी कविताओं में व्यक्त किया।

"हे मेरे हृदय, हमें शीघ्र ही उठना होगा और ससार-युद्ध तथा जनसमूह के कोलाहल में सम्मिलित होना होगा.....हे मेरे हृदय ! आ हम उठें और अपने बचे हुए स्वप्नों को एकत्र करें। हम संगीत की संवेदना से जीवन की वेदना पर विजय प्राप्त करेंगे।"

आप राष्ट्रीय संग्राम में भी शामिल हुईं। जेल भी गईं। इस सम्बन्ध में आपने कहा था—

"मुझ से लोग बार-बार पूछते हैं कि 'तुम कल्पना के हाथी-दांत के गुंबद से उतर कर बाजार में क्यों आ गई हो ? तुम ने कवि की वीणा और वंशी का त्याग करके, देश को स्वतन्त्रता-संग्राम के लिए उत्तेजित करने वाला बिगुल क्यों धारण कर लिया है ?" यह इसलिए कि कवि का कर्त्तव्य उद्यान में, स्वप्नों के मन्दिर में, एकांतनिवास करना नहीं है। उसे जनता के साथ रहना है, युद्ध की कठिनाइयों के बीच रहना है।"

आप की कविताएं युवकों को उत्साह तथा प्रेरणा देने वाली होती थीं। आपके भाषण भी काव्यमय होते थे और उन से हृदय उद्वेलित हो उठते थे। आपके शब्दों में उदात्त काव्यमय भावनाएं ओतप्रोत होती थीं। युवकों को सम्बोधित करते हुए आपने कहा था—

"यदि मुझे कहा जाए कि तुम भाषा के सम्पूर्ण भण्डार में से एक ऐसा वाक्य चुन कर कहो जो तुम्हारे अन्तरतम हृदय में भविष्य की आशा के रूप में निगूढ़ हो

और उस के बाद चुप हो जाओ तो मैं वह वाक्य यही कहूंगी—'तुम्हीं भविष्य की आशा हो'।"

छात्रों के एक सम्मेलन में आप ने कहा था—

"मैं अपने जीवन में सर्वोच्च महिमा तथा सिद्धि इसी में समझूंगी कि मेरी समाधि के शिलालेख पर ये शब्द अंकित किए जाएं—

'भारत की नई पीढ़ी से इसे प्रेम था, उसी पर इस को विश्वास था, उसी के साथ इस ने काम किया और उसी के सहयोग से इसने भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त की।"

युवकों को सम्बोधित करते हुए एक बार आप ने कहा था—"तुम ने महान् आदर्शों को पूर्वजों से थाती में पाया है। तुम पर बड़े-बड़े कर्त्तव्यों का भार है। तुम्हारा बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। इससे प्रयोजन नहीं कि तुम कौन हो, कहां हो और क्या करते हो। गली में झाड़ू देने वाला भी देश-भक्त हो सकता है। उस में तुम ऐसा उत्तेजक भाव पा सकते हो, जिससे तुम्हारे मन को उच्च प्रेरणा प्राप्त हो सके।"

1930 के नमक सत्याग्रह में आप ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया। गांधी जी के बन्दी कर लिए जाने पर आप सत्याग्रह-संग्राम की संचालिका बनीं और बन्दी बनाई गईं। 1931 में आप गोल मेज़ कान्फ्रेंस पर इंग्लैंड गईं। 1932 में आप फिर कैद कर ली गईं। 1940 के व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय भी आप कैद हुईं। 1942 के भारत-छोड़ो आन्दोलन के समय आप अन्य कांग्रेसी नेताओं के साथ नज़र बन्द रहीं।

1947 में स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर आप उत्तर प्रदेश की गवर्नर नियुक्त हुईं और 1949 में उसी पद पर रहते हुए आप का देहान्त हो गया।

—×—

: 14 :

भारत के प्राचीन आदर्श नारीत्व की आधुनिक प्रतिनिधि—

कस्तूरबा गांधी

गांधी जी की समाज-सेवा की साधना में सबसे लम्बा और शायद सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण सहयोग राष्ट्र-माता कस्तूरबा गांधी का रहा। बौद्धिक विकास की दृष्टि से गांधी जी और कस्तूरबा में कोई तुलना नहीं हो सकती। दक्षिण अफ्रीका में अपना सेवा-कार्य आरम्भ करने के समय ही से गांधी जी मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास के मार्ग पर मानो छलांगें मारते हुए आगे बढ़ने लगे थे, जबकि कस्तूरबा एक सामान्य भारतीय पत्नी की तरह अपने घरेलू जीवन और सामान्य मानस से सन्तुष्ट रहीं। दक्षिण अफ्रीका में बहुत सी गुजराती महिलाएं अपने पतियों के साथ एक सामान्य, परन्तु सम्पन्न जीवन गुज़ार रही थीं और कस्तूरबा भी उनमें से एक थीं। वे भी उन्हीं बहनों की तरह एक सामान्य परन्तु सम्पन्न जीवन गुज़ारने से सन्तुष्ट थीं। परन्तु एक भारतीय पत्नी की तरह उन्होंने अपने पति के त्याग और तपस्या के जीवन में सहयोग देना अपना कर्त्तव्य मान लिया।

गांधी जी की बैरिस्ट्री ही के दिनों में, जब मिलने के लिए आए हुए एक गुजराती सम्बन्धी ने कस्तूरबा के सीधे सादे वेश को देखकर गांधी जी से कहा कि वे अपनी पत्नी की वेश-भूषा पर भी ध्यान दिया करें, तो सुन कर कस्तूरबा ने कुछ ऐसे कहा,

"जब ये सब बातें इन को पसन्द नहीं हैं तो मैंने भी अपने मन को मना लिया है।"

गांधी जी की त्याग-तपस्या के पीछे एक ज्वलंत बौद्धिक प्रेरणा थी जबकि कस्तूरबा का जीवन केवल एक भारतीय नारी की पतिव्रत-भावना से प्रेरित था। गाँधी जी ने ऐश्वर्य के मार्ग को समझ-बूझ कर छोड़ा परन्तु कस्तूरबा ने, बिना विशेष सूझ-बूझ के अपने आदर्शवादी पति का अनुसरण किया।

कस्तूरबा अपने पति के बराबर, बल्कि कुछ मास बड़ी, आयु की थीं। जीवन के आरम्भ से उनके जीवन में, गृह-प्रबन्ध-कुशलता के साथ-साथ, एक स्वतन्त्र वृत्ति नज़र आती है। उनकी इस वृत्ति के कारण आरम्भिक जीवन में बहुधा घर में कुछ खट-पट भी रहती थी। आत्म-सम्मान तथा स्वतन्त्रता की अपनी इस वृत्ति के बावजूद कस्तूरबा ने अपने आदर्शवादी पति के साथ कदम मिला कर चलना ही अपने जीवन का ध्येय मान लिया।

सत्याग्रह की फिलासफी को न समझते हुए भी कस्तूरबा ने दक्षिण-अफ्रीका में बहनों की पहली सत्याग्रही टुकड़ी में, अपने न लिए जाने को बुरा माना और आग्रह-पूर्वक गांधी जी से कहा,

"आप जेल जाएं, मेरे बेटे जेल जाएं, क्या आप ने मुझे ही इतनी कमज़ोर समझा है कि मैं जेल नहीं जा सकती ?"

जब गांधी जी ने कहा कि कहीं वे कमज़ोरी दिखाकर मुआफी न मांग लें तो कस्तूरबा ने दृढ़ता से कहा,

"यदि मैं मुआफी मांग कर आ जाऊं तो आप ने मुझे घर में न रखना।"

इस प्रकार कस्तूरबा विश्व के इतिहास में सत्याग्रही बहनों की पहली टुकड़ी में आग्रह-पूर्वक शामिल हुईं और उन्होंने वीरता-पूर्वक जेल का कई मास का जीवन पूरा किया। उस समय की अपनी छूत-छात की भारतीय भावनाओं के कारण उन्होंने जेल में केवल फलाहार पर रहने का आग्रह किया। कई मास तक, जेल में मिल सकने वाले थोड़े से फलों पर गुज़र करने के कारण उनका शरीर बहुत दुर्बल हो गया और जेल से आकर वे लम्बे समय के लिए बीमार भी पड़ गईं।

दक्षिण अफ्रीका के लगभग बीस वर्ष के, एक सफल बैरिस्टर के जीवन की सारी कमाई को वहीं छोड़कर. जब गांधी जी अपने, पत्नी तथा चार बेटों के परिवार को लेकर देश लौट आए तो कस्तूरबा के सामान्य भारतीय मातृ-हृदय ने अपने भविष्य के सम्बन्ध में जो कल्पनाएं की होंगी उन्हें एक भारतीय माता ही का हृदय समझ सकता है। भारत में अपने पति के फकीरी के जीवन में पूरा सहयोग देकर कस्तूरबा ने आधुनिक भारतीय समाज में एक नया आदर्श प्रस्तुत किया। गांधी जी से पहले के भारतीय नेता गाँधी जी की तरह सपत्नीक देश के सामने नहीं आते थे। कस्तूरबा को गांधी जी के साथ देखकर भारतीय स्त्री-जगत् को एक विशेष प्रेरणा मिली। गांधी जी के स्त्री-शक्ति-जागरण के महान् कार्य में कस्तूरबा का एक महान् योग-दान था।

कस्तूरबा गांधी, सदा गांधी जी के आश्रम में माता के स्थान पर रहीं। अपने पति के खान-पान तथा आराम की ओर सदा कस्तूरबा का विशेष ध्यान रहा।

अपनी वृद्धावस्था में जब वे गांधी जी की व्यक्तिगत सेवा के पूरे काम को निभा नहीं सकती थीं, तब भी वे उस काम के ठीक से होते रहने के लिए सदा प्रयत्नशील रहीं। यदि कोई दूसरा भाई बहन भी गांधी जी के लिए नाश्ता लेकर गया तो कस्तूरबा ने उस सेवा का निरीक्षण नहीं छोड़ा। गांधी जी के भोजन के समय उनके पास बैठकर उन्हें पंखा करना कस्तूरबा का एक सामान्य कार्यक्रम था।

अपने सामाजिक जीवन में गांधी जी ने भी सदा अपनी पत्नी के गुणों की सराहना की और उनके प्रति आदर का भाव रखा। जब आश्रम-वासी अपनी किसी कठिनाई को, संकोच-वश, गांधी जी के समक्ष रख नहीं सकते थे तो माता कस्तूरबा के द्वारा अपनी बात गांधी जी तक पहुंचाते थे।

गांधी जी के लम्बे उपवासों के समय कस्तूरबा की सेवा-शक्ति में एक विशेष प्रतिभा का दर्शन होता था। उस समय उनकी शरीरिक दुर्बलता भी एक तरफ रह जाती थी और उनका पूरा तेज प्रकट होता था।

कस्तूरबा को गुजराती पढ़ने लिखने का साधारण ज्ञान था। गांधी जी की फिलासफी को एक तरफ रखकर कस्तूरबा ने उनके चरखे को अपना बना लिया था। आश्रम में आने जाने वाले, बड़े से बड़े नेता और महापुरुष उन्हें अपनी कुटिया के चबूतरे पर अक्सर चरखा चलाते देखते थे। कातते-कातते ही वे उन बड़े लोगों से बेझिजक, बराबरी के स्तर पर, कुशल-क्षेम की बात पूछती थीं। उनकी इस प्रतिभा को देखकर एक बार राजा जी ने कहा था "कस्तूरबा का व्यक्तित्व एक महारानी का व्यक्तित्व है।"

एक भारतीय सती-साध्वी नारी के समान कस्तूरबा अपने पति के हाथों में देह-त्याग करना चाहती थीं और 1944 में आगा खां महल में नज़र बंदी के दिनों में, 22 फरवरी को उन को यह सौभाग्य प्राप्त हो गया।

इतिहास में जब तक गांधी जी राष्ट्र-पिता कहलाएंगे तब तक कस्तूरबा का राष्ट्र-माता का पद भी बना रहेगा।

—X—

खण्ड—II

संस्था के संस्थापक

लाखों में एक

लाला देव राज जी

जमाना रंग अपना कुछ न कुछ सब को चढ़ाता है।
मगर कुछ मर्द रंग अपना चढ़ाते हैं जमाने को ॥

"लाला देवराज जी लाखों में एक हैं। उन्होंने स्त्री शिक्षा के लिए जो उद्योग किया है, उसकी जितनी तारीफ की जाए कम है.....

इस संस्था को देख कर दिल खुश हो जाता है। सब कन्याएं बड़ी साफ और होनहार हैं। उनकी देख-भाल खूब अच्छी तरह की जाती है।

प्रांत में कोई ऐसा स्कूल नहीं है, जो मुझे इससे अधिक पसन्द हो और जिसके लिए मेरे दिल में इससे अधिक आदर हो।

डबल्यू बैल

एम० ए० सी० आई० ई०

(पंजाब शिक्षा विभाग के डायरैक्टर)

27 नवम्बर, 1905

: 1 :

लाखों में एक

सामने के पृष्ठ पर दिए गए शब्द पंजाब के शिक्षा-विभाग के एक अंग्रेज़ डायरैक्टर के हैं, जो 1905 में संस्था की, लगभग केवल 15 वर्ष की आयु में, संस्था को देखने के लिए आए थे। उस समय लाहौर के लड़कियों के 'क्वीन मेरी कालिज' के साथ छात्रावास खोलने की सरकारी योजना थी। उस समय प्रदेश में स्त्री-शिक्षा का इतना विरोध था कि सरकार लड़कियों के कालिज के साथ होस्टल का प्रबन्ध करते हुए हिचकिचाती थी। डर था कि बाहर से लड़कियों के न आने से कहीं होस्टल पर किया गया खर्च व्यर्थ ही न जाए और कि इस नए और नाज़ुक आयोजन, लड़कियों के छात्रावास का अनुशासन और प्रबन्ध लोगों में असन्तोष का कारण न बन जाए।

ऐसे विरोधी वातावरण ही में कन्या महाविद्यालय जालन्धर के संस्थापक ने उस समय से लगभग दस वर्ष पहले ही 1895-96 में छात्राओं के लिए छात्रावास का प्रबन्ध कर दिया था और वह भी छोटी-छोटी स्कूल की आरम्भिक श्रेणियों की छात्राओं के लिए। प्रदेश के दूर-दूर के भागों से, सीमावर्ती क्षेत्रों तक से, पांच-पांच छः-छः वर्ष की अपनी कन्याओं को छात्रावास में रहने के लिए भेज देना, संस्था के संस्थापक लाला देव राज जी के प्रति लोगों के अद्भुत विश्वास का प्रमाण है।

कन्या महाविद्यालय के छात्रावास को देख कर ही पंजाब सरकार को हिम्मत हुई थी कि वह भी लाहौर के अपने लड़कियों के कालिज के लिए छात्रावास खोल दे।

पंजाब सरकार के डायरैक्टर महोदय ने लाला देवराज जी की जो प्रशंसा की, वह बहुत सार-गर्भित है। वे कोई सामान्य भारतीय अधिकारी या नेता नहीं थे, जो उन की प्रशंसा में ऐसे शब्द इस्तेमाल कर देते। वे पंजाब सरकार के शिक्षा-विभाग के सर्वोच्च अधिकारी थे, जो अपने शब्दों का मूल्य जानते थे। इतने बड़े अंग्रेज अधिकारी के शब्द अतिशयोक्ति नहीं हो सकते।

उस समय लाला जी की आयु केवल पैंतालीस वर्ष की थी। कन्या महाविद्यालय के लिए किया गया उनका काम पिछले पन्द्रह वर्ष का काम था, तीस वर्ष की आयु से लेकर पैंतालीस वर्ष की आयु तक का काम था। इस प्रकार अपनी भरी जवानी के वर्षों में लड़कियों की शिक्षा जैसे नाजुक काम को उठा कर, जनता का और सरकार के ऊंचे अधिकारियों का ऐसा विश्वास प्राप्त करना, ऐसी प्रशंसा पाना, कोई सामान्य बात नहीं है।

—×—

: 2 :

छात्राओं के पिता ही नहीं, माता भी

वास्तव में लाला जी का हृदय एक मातृ-हृदय था। पुरुष वेश में वे एक सुसंस्कृत माता ही थे। महाराष्ट्र में आध्यात्मिक महापुरुषों के नामों के साथ, सन्त महात्माओं के साथ, 'बा' (माता) शब्द लगाने का रिवाज है, जैसे 'ज्ञानी बा' (ज्ञानदेव माता), 'तुकोबा' (तुकाराम माता)। इसी रिवाज के अनुसार गांधी जी के आश्रम में, नवयुवक 'विनायक' को उसके आध्यात्मिक गुणों के कारण, 'विनोबा' (विनायक माता) नाम मिल गया। एक सन्त पुरुष को 'माता' की पदवी देना महाराष्ट्र की संस्कृति की एक अद्भुत सूझ है। पंजाब प्रदेश के युवक देव राज ने अपने मातृ-हृदय के कारण कन्याओं और उनके संरक्षकों से माता की पदवी प्राप्त कर ली थी। किसी पुरुष को, विशेषत: उसकी जवानी की आयु में, माता की पदवी दे देना, उसकी अन्तरात्मा की पवित्रता का चमत्कार है।

ऐसा मालूम होता है कि प्रकृति ने लाला जी का निर्माण और विकास ही स्त्री शक्ति के जागरण के लिए किया था। यह जागरण तभी सम्भव था जब वे स्त्री-हृदय के साथ कार्य करते। विद्यालय की कन्याओं के लिए वे चाचा जी थे। कन्याएं अपने चाचा के प्यार के कारण अपने माता-पिता को भूल जाती थीं। कन्याओं के प्रति उनके स्नेह की बहुत सी कहानियां हैं। जब वे छात्रावास में आते तो कन्याएं, विशेषत: छोटी श्रेणियों की कन्याएं, उनको घेर लेती थीं। वे उनको ऊंची आवाज में चिल्लाने के लिए प्रोत्साहित करते। जो सब से ऊंची आवाज में चिल्लाती थी, उसे और फिर दूसरी कन्याओं को भी, वे अपनी जेबों में भर कर लाई गई खाने की चीजें देते थे। कन्याओं को साथ लेकर वे भ्रमणार्थ आस-पास के खेतों में निकल जाते थे, जहां खेतों के मालिक, जो उनके प्रति भक्ति-भाव रखते थे, खुशी से कन्याओं को मौसम के अनुसार गाजर-मूली और गन्ने आदि चीजें देते थे। कभी-कभी छोटी लड़कियां प्यार से उनके गंजे सिर का स्पर्श करना चाहतीं तो वे उन्हें अपने सिर पर ठोला मारने की भी आज्ञा देते और सब से ज्यादा जोर से ठोला मारने वाली लड़की

को अपनी जेब में से इनाम के रूप में, कोई खाने की चीज़ देते। बच्चों के साथ ऐसे चोंचले करने वाले चाचा जी को लड़कियां वैसे ही प्यार करती थीं जैसे वे अपनी माताओं से कर सकती थीं। ऐसे प्यार के बिना, सैंकड़ों मील दूर की, पेशावर तक की, पांच-पांच, छः-छः वर्ष की आयु की लड़कियां अपने मां-बाप की याद को कैसे भूल सकती थीं।

लाला देव राज जी किसी लड़की के किसी गुण को देख लेते तो उसके विकास के लिए पूरा प्रयत्न करते। गाने की प्रतिभा रखने वाली लड़की को न केवल विद्यालय में बल्कि आर्य समाज के सत्संगों में स्टेज पर लाते। किसी छात्रा में वकतृता की शक्ति को देखते तो उसके विकास के लिए वे उसे अपने साथ यात्राओं में ले जाते और आर्य समाजों की तथा अन्य सभाओं में उन्हें बोलने के लिए प्रोत्साहित करते। उनके अन्दर लिखने की भी प्रतिभा थी और वे किसी छात्रा में यह प्रतिभा देख कर उसे उसके विकास के लिए प्रोत्साहित करते थे। यही कारण है कि संस्था में ऐसी सब प्रतिभाओं का विकास हुआ।

अपनी आरम्भिक आयु ही में उन्होंने अपने जीवन-कार्य की झलक पा ली थी। एक विवाहोत्सव में स्त्रियों को भद्दे और अश्लील गाने गाते सुन कर उन्हें दुःख हुआ था और उन्होंने अपनी डायरी में अपने इस दुःख को प्रकट करते हुए लिखा था "कि कोई इन का उद्धार करने वाला भी आएगा ?" उन्होंने स्त्री-शक्ति-जागरण के कार्य के लिए अपने आपको इस प्रकार समर्पित कर दिया था कि अपनी डायरी में एक जगह उन्होंने यह भाव व्यक्त किया है कि "हे भगवान् ! उनका अगला जन्म स्त्री का हो ताकि वे उनमें एक होकर से उनका उद्धार कर सके।"

एक बार संस्था की प्रबन्ध-कर्तृ-सभा के कुछ सदस्यों ने, छात्राओं और उनके संरक्षकों में लाला जी की सर्वप्रियता के प्रति ईर्ष्या की भावना से कुछ आपत्ति उठाई और उन सदस्यों के समाधान के लिए लाला जी के संस्था में आने जाने पर कुछ पाबन्दी लगा दी गई तो छात्राओं ने अपने प्यारे चाचा और एक तरह अपनी माता ही के वियोग में रोना धोना शुरू कर दिया और सभा को उस पाबन्दी को उठाने के लिए मजबूर होना पड़ा।

कन्या महाविद्यालय के इतनी जल्दी प्रगति करके एक तेजस्वी संस्था बन जाने का कारण इसके संस्थापक लाला देव राज जी का यह व्यक्तित्व था। उनके जीवन में कोई आडम्बर, कोई दिखावा, बड़े बनने की कोई लालसा नहीं थी। उनके सामने एक ही लक्ष्य था कि किस तरह वे कन्याओं और स्त्रियों के अन्दर ऐसी शक्तियों और गुणों का विकास कर सकें, जिन शक्तियों और गुणों के सम्बन्ध में पीछे लिखा जा चुका है। जिस प्रकार एक माता अपनी बेटियों को सुयोग्य और गुणवती बनाना चाहती है। उसी तरह वे विद्यालय की छात्राओं, अपनी सैंकड़ों बेटियों को सुयोग्य और गुणवती बनाना चाहते थे।

करुणा और संवेदना दो ऐसे गुण हैं जिनके बिना सेवा-साधना नहीं हो सकती। ये दोनों गुण लाला जी में भरपूर मात्रा में थे। जब उन्हें समाज में अनाथ कन्याओं की समस्या को देखा तो अपनी संस्था के साथ अनाथालय का प्रबन्ध कर दिया और जब विधवाओं की समस्या को देखा तो विधवा-भवन की स्थापना कर दी। उनका पर-दुःख कातर हृदय किसी स्त्री के दुःख को देख कर व्याकुल हो जाता था और जब तक वे उस दुःख के निवारण का प्रबन्ध नहीं कर लेते थे उन्हें चैन नहीं पड़ता था।

उनके सभी कार्य, उनकी सभी गति-विधियां, उनके मातृ-हृदय का करुणा और सम्वेदना के प्रत्यक्ष आकार थे।

—x—

: 3 :

जालन्धर का प्रभावशाली सोन्धी वंश

जैसे कि पहले कहा जा चुका है, जालन्धर शहर इस प्रदेश का एक ऐतिहासिक शहर रहा है। मुसलमानी राज्य-काल में इस प्राचीन शहर में और इसके इर्द-गिर्द बस्तियों के रूप में मुसलमानों की आबादी के बढ़ने से यह शहर दोनों धर्मों के मानने वालों का लगभग बराबर आबादियों का शहर बन गया। मुसलमानी राज्य में भी तथा उसके बाद सिक्ख राज्य और अंग्रेज़ी राज्य में भी, इस शहर का वही दोनों धर्मावलम्बियों की मिली-जुली, लगभग बराबर-बराबर आबादियों का चित्र रहा। पुराने शहर में ज्यादा आबादी हिन्दूओं की थी परन्तु उस हिन्दू आबादी में भी ठेठ हिन्दू मुहल्लों में हिन्दुओं के घरों से सटे हुए मुसलमानों के घर थे। बाहर की बस्तियां मुख्यत: मुसलमान आबादी की बस्तियां थीं, मगर उनमें भी, ठेठ मुसलमानी मुहल्लों से, मुसलमानों के घरों के साथ सटे हुए हिन्दुओं के घर थे। इस प्रकार शताब्दियों से हिन्दु और मुसलमान, अपने-अपने धर्मों को मानते हुए अपने-अपने धार्मिक विश्वास और रस्मो-रिवाज़ रखते हुए, मिलजुल कर प्रेम-प्यार और भाई-चारे की भावना में रहते आए थे। दोनों एक दूसरे के उत्सवों में दिलचस्पी लेते थे और कभी-कभी शामिल भी होते थे, एक दूसरे को बधाई और मुबारिकवाद तो देते ही थे। 1947 से पहले कभी इस शहर का वातावरण साम्प्रदायिकता के विष से विषाक्त नहीं हुआ था।

इसका एक कारण तो सामान्य था कि शताब्दियों के सहवास से हिन्दू मुसलमानों ने एक दूसरे को समझ और परख लिया था और दोनों को एक दूसरे की शराफत और नेकी पर विश्वास हो गया था। परन्तु इसका एक दूसरा विशेष कारण था कि शहर के दो सबसे प्रतिष्ठित परिवार, मुसलमानों में काज़ी परिवार और हिन्दुओं में सोंधी परिवार, मजहबी रवादारी के, धार्मिक सहिष्णुता के नमूने थे। यदि कभी किसी बात पर सामान्य हिन्दुओं और मुसलमानों में किसी साम्प्रदायिक बात पर मत-भेद हुआ, तो काज़ी परिवार के प्रमुख पुरुष ने हिन्दू दृष्टिकोण को ठीक

कहा और सोंधी परिवार के प्रमुख पुरुष ने मुसलमानों का पक्ष लिया। ऐसे लोगों के रहते शहर का साम्प्रदायिक वातावरण कैसे बिगड़ सकता था ?

शहर के ऐसे सोंधी परिवार में लाला देव राज जी का जन्म हुआ। उनके पिता लाला सालिग राम जैलदार और आनरेरी मैजिस्ट्रेट थे। उनके बाद लाला जी को ये दोनों पद विरासत में मिले, परन्तु अपनी राष्ट्रीयता तथा आत्म-सन्मान की भावनाओं के कारण उन्होंने उन पदों को छोड़ दिया। लाला सालिग राम ने अपने बेटे को सरकारी नौकरी की तरफ नहीं जाने दिया। लाला देव राज जी ने जमींदारी के और घर के काम-काज को सम्भाला और अन्य दोनों भाइयों रायजादा भक्त राम और रायजादा हंस राज ने बैरिस्ट्री पास करके वकालत का पेशा अपनाया। रायजादा भक्त राम अपने जमाने के प्रसिद्ध फौजदारी वकील थे, जो अपनी योग्यता के कारण सरकारी दायरे में बहुत रसूख रखते थे। सब से छोटे भाई रायजादा हंस राज कांग्रेस के राष्ट्रीय आन्दोलन में आगे के लोगों में रहे और उस समय की सैण्ट्रल असम्बली के मैम्बर भी रहे।

ऐसे सम्पन्न और प्रतिष्ठित परिवार के प्रमुख पुरुष होने के बावजूद लाला देव राज जी का जीवन बहुत सीधा-सादा, एक सामान्य मध्यम वर्गीय गृहस्थ का जीवन रहा। आपकी पारिवारिक प्रतिष्ठा और आपके सरल तथा नम्र व्यवहार के कारण आपको शहर के बहुत से प्रतिष्ठित व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त हुआ। एक बार कन्या महाविद्यालय की पंक्ति बांधे सड़क पर से गुजर रही लड़कियों की पंक्ति में एक दो गोरे सैनिक पंक्ति तोड़ कर गुजर गए तो रायजादा भक्त राम ने अपने सरकारी रसूख से शहर के उस हिस्से को, जहां से लड़कियां आया जाया करती थीं, गोरे सैनिकों के लिए वर्जित क्षेत्र घोषित करवा दिया। शहर के अन्य प्रतिष्ठित परिवारों के साथ अपने परिवार के भाई-चारे के सम्बन्धों के कारण आपको अनेक परिवारों के प्रमुख पुरुषों का सहयोग और सहकार मिला।

आपकी पारिवारिक सम्पन्नता और प्रतिष्ठा के कारण तथा आपकी शराफत और सेवा भावना के कारण सारा शहर आपका आदर करता था। 1913 के बाद जब विद्यालय का मुख्य भाग, शहर के बाहर, लगभग एक मील पर, एक उजाड़ स्थान पर ले जाया गया, तो विद्यालय तथा आश्रम के गिर्द दीवार न होने के बावजूद, कभी कोई अप्रिय घटना नहीं हुई, बल्कि आस-पास का क्षेत्र कन्याओं के भ्रमण का क्षेत्र बन गया।

उस जमाने के वातावरण के अनुरूप आपने भी अपना आरम्भिक सेवा-कार्य अपना खत्तरी बिरादरी के समाज सुधार के कार्य से किया, जो बाद में आर्य समाज की स्थापना के साथ विशालता का रूप धारण कर गया। यद्यपि आपके पिता उदार

तथा प्रगतिशील विचारों के थे, तो भी सामान्य सनातनी विचार के प्रभाव के कारण वे अपने बेटे के समाज-सुधार के आर्य समाजी दृष्टि-कोण को बहुत पसन्द नहीं करते थे। अपने पिता के विचारों का सन्मान करने के लिए और साथ ही अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण के प्रति ईमानदार रहने के लिए आपने दो बार शहर से बाहर, कहीं दूर, कोयटा तथा बर्मा चले जाने का और वहां आर्य समाज का काम करने का निश्चय कर लिया। अन्ततः पिता ने अपने सुयोग्य पुत्र के विचारों का आदर करते हुए उसे अपने शहर ही में अपना काम करने की अनुमति दे दी।

—X—

: 4 :

माता का प्रभाव

बालक देवराज एक बहुत दुर्बल शरीर लेकर पैदा हुआ और उसका बचपन ऐसी ही दुर्बलता की अवस्था में बीता। ऐसे बच्चे के लिए माता को विशेष प्यार होता है। बालक माता के गले का मानो हार बन गया था। वह माता के साथ ही रहता, इसके साथ ही सत्संग आदि में जाता, कथा-कहानियां सुनता। इन सब बातों का उसके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ता।

बालक देव राज को माता भी ऐसी मिली थी, जिस पर गर्व किया जा सकता है। माता काहन देवी सचमुच अपने घर की लक्ष्मी थी। देवराज के पिता कहा करते थे कि..."जब से ये घर आई है, घर का नक्शा ही पलट गया है।"

माता काहन देवी लगभग 40 व्यक्तियों के कुटुम्ब का बहुत सुव्यवस्थित रूप में प्रबन्ध करती थी। उनको सत्संग और कथा-वार्ता का शौक था। वे बहुत सुन्दर भजन गाया करती थीं। इन बातों का प्रभाव देव राज जी के मन पर पड़ना स्वाभाविक था। वास्तव में आपके चरित्र का निर्माण करने और आपको सेवा-मार्ग पर लगाने का श्रेय आपकी माता ही का है। उस पिछड़े ज़माने में भी माता काहन देवी की रुचि स्त्री-शिक्षा और समाज-सुधार के कामों में थी। कन्या महाविद्यालय की स्थापना से पहले माता काहन देवी ने एक रुपया मासिक और साथ रोटी देकर एक ब्राह्मणी को अपने घर पर कन्याओं की शिक्षा के लिए नियुक्त किया था। जब बड़े होकर लाला देव राज आर्य समाज और समाज सुधार के कामों में लगे, तो माता जी ने उन को पूरा सहयोग दिया। शिक्षा के अभाव में वे विद्यालय में पढ़ाने का काम तो नहीं कर सकती थीं, परन्तु अपनी पुत्रबधू, लाला जी की पत्नी श्रीमती टहल देवी, को साथ लेकर वे छात्रावास के प्रबन्ध में खूब सहयोग देती थीं।

माता के जाने के बाद लाला जी सदा माता की स्मृति को बनाए रहे और उस स्मृति से प्रेरणा प्राप्त करते रहे। बहुधा वे अपने स्वप्नों में माता जी को सुनहरी फूलों के बादलों के बीच में फूलों के सिंहासन पर बैठे, भजन गाते और बेटे को सेवा-

कार्य के लिए आशीर्वाद देते देखते थे। ऐसे स्वप्न के बाद जाग कर लाला जी अक्सर देखते थे कि उनकी अपनी आँखें प्रेमाश्रुओं से गीली होती थीं। यदि कोई व्यक्ति लाला जी के गुण के लिए उनकी प्रशंसा करता था तो वे उस गुण का श्रेय अपनी दिवंगत माता को देकर उनकी प्रशंसा करने के लिए कह देते थे।

उस जमाने के वातावरण में, विशेषत: होशियारपुर में अध्ययन के समय छात्रावास में रहते हुए यदि आप दुर्व्यसनों और बुरी आदतों से बचे रहे, तो इसका श्रेय माता द्वारा डाले गए नैतिक प्रभाव को है। प्राय: सभी महापुरुषों को अपने जीवन में मुख्य प्रेरणा अपनी माताओं से मिली है। आप भी अपनी माता के जीवन और वचनों से प्रेरित हो कर बचपन ही से पूजा पाठ के, व्रत-नियम के, और सत्संग के पाबंद हो गए थे। होशियारपुर के स्कूल में पढ़ते समय आप इतवार का पूरा दिन और मंगलवार का आधा दिन उपवास करते थे और कभी कभार उपवास के विस्मृत या भंग हो जाने पर पश्चाताप करते थे। ऐसे संस्कार लेकर जीवन में प्रवेश करने वाला युवक गलत रास्ते पर कैसे जा सकता था।

लाला जी ने स्वयं अपनी माता की एक संक्षिप्त जीवनी लिखी है, जिसमें वे लिखते हैं....."विवाह उनका छोटी अवस्था में ही हो गया था। इन्हें भजन गाने का शौक बचपन ही से था। बहुत मस्त होकर गाया करती थीं। उन्हें कहानियों का भी शौक था. वे बहुत सहनशील, सरल-हृदय, सादगी पसन्द और किफायत-शआरी से काम करने वाली थीं। गहनों या कपड़ों का उन्हें बिल्कुल शौक नहीं था। 40 सदस्यों के परिवार का सारा प्रबन्ध वे स्वयं किया करती थीं। उनके जीते घर में कभी सास-बहू का झगड़ा नहीं हुआ। उन्हें फिजूलखर्ची और काम-काज की लापरवाही बिल्कुल पसन्द नहीं थी। किसी गरीब, दीन-दुखी और निस्सहाय के लिए उनका हृदय तुरन्त पसीज जाता था। दूसरे की बुराई का विचार मन में लाना उनके लिए सम्भव ही नहीं था।

एक दिन किसी स्त्री ने उन्हें कहा कि अमुक स्त्री उनको ये गालियां देती थी, तो उन्होंने उत्तर में कहा—"उसने तो नहीं, तुमने मुझे गालियां दी हैं। तुमने ही आकर मुझे गालियां सुनाई हैं। आगे को कभी ऐसा न करना और इस तरह मुझे गालियां न देना।"

चौंके चूल्हे का नियम वे कठोरता से पालती थीं। बिना स्नान किए चौंके में पांव नहीं रखती थीं। पूजा-पाठ के नियम में वे कभी नागा नहीं करती थीं। सीने पिरोने, चरखा कातने और नाले बुनने के काम का भी उन्हें अच्छा शौक था.....।

मातम पुरसी के लिए वे छोटे बड़े सभी के घरों में जाती थीं यहां तक कि बिरादरी के बाहर न केवल हिन्दू परिवारों में बल्कि मुसलमानों और मेहतरों के परि-

बारों में भी जाती थीं।

हिन्दू त्योहारों के समान मुहर्रम भी घर में मनाया जाता था, बच्चों के गले में मौली डाल कर उन्हें ताजियों पर पैसे चढ़ाने के लिए भेजा जाता था। घर की ओर से शरबत पिलाने और बांटने का विशेष प्रबन्ध किया जाता था। रमजान के दिनों में मुसलमान स्त्रियों और नौकरों को खाना खिलाने का वे बहुत ध्यान रखती थीं।

लाला जी अपनी माता को समाचार-पत्रों के स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी समाचार विशेष रूप में सुनाया करते थे। उन समाचारों को सुन कर वे गद्‌गद् हो जाया करती थीं। इन समाचारों को सुन-सुन कर उनके हृदय में पूना के महिला महाविद्यालय के संस्थापक प्रो० कर्वे के लिये बहुत श्रद्धा पैदा हो गई थी। उन्होंने अपने घर ही से कुरीतियां बन्द करके समाज सुधार का मार्ग प्रशस्त किया। अपने बड़े बेटे बालकराम की जवानी में हुई मृत्यु पर भी उन्होंने घर में सियापा नहीं बिठाया। पति की मृत्यु पर भी घर में ऐसी कोई रस्म नहीं की।

1898 की अपनी एक डायरी में लाला जी अपनी माता के सेवा-कार्य के बारे में लिखते हैं——"माता जी कन्याओं के जीवन सुधार का बहुत कार्य कर रही है। रात को दो-दो तीन तीन घण्टे आश्रम में काम करती रहती हैं। वे कन्याओं से बहुत स्नेह करती हैं.....।"

माता और पुत्र के ऐसे स्नेह-भरे सेवा-कार्य ही से स्त्री-शिक्षा के क्रान्तिकारी कार्य को सफलता मिली।

—×—

: 5 :

पत्नी का सहयोग

उस ज़माने के रिवाज के अनुसार आपका विवाह दस-ग्यारह वर्ष की आयु में हो गया था। उस समय पत्नी की आयु तो सात-आठ वर्ष ही होगी। उस ज़माने में विवाह का समारोह केवल गठबन्धन ही होता था। पति-पत्नी का गृहस्थ जीवन तो बहुत वर्ष कभी-कभी आठ-दस वर्ष, बाद आरम्भ होता था। विवाह के समय तो आपके अन्दर अभी सेवा की भावनाएं भी सुप्त अवस्था में होंगी। परन्तु कुछ वर्ष बाद जब आपके विचारों और भावों का कुछ विकास हुआ और आपकी पत्नी आने जाने लगी तो आपकी माता ने घर पर ही उसकी शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया। जब विद्यालय की स्थापना हो गई और प्रौढ़ा स्त्रियों के लिए भी एक शिक्षण-श्रेणी खोली गई, तो आपकी पत्नी ने उसमें प्रविष्ट होकर अपनी शिक्षा को बढ़ाया।

जिस प्रकार आपकी माता आपके कार्य के लिए सहयोग और प्रेरणा देती थीं, उसी प्रकार आपकी धर्म पत्नी भी आपकी सेवा-साधना में दीक्षित हो गई। आपकी पत्नी का मायके का नाम 'सुन्दरी' और सुसराल का नाम 'टहल देवी' था। सुसराल का नाम तो आपके जीवन उद्देश्य के अनुरूप ही रखा गया। पंजाबी भाषा के शब्द 'टहल' का अर्थ सेवा ही है।

आपको अपनी पत्नी की सेवा भावना पर गर्व था। अपनी डायरी में एक जगह आप ने लिखा है।

..... "मुझे इस बात की तनिक भी परवाह नहीं है कि दुनियां मेरी स्तुति करती है या निन्दा। मुझे अपनी आत्मा पर भरोसा है। यही इच्छा है कि मैं इन कन्याओं को देवयानी बनाऊं। ईश्वर मेरी इच्छा को पूर्ण करे।

सुन्दरी खूब काम करती है। आश्रम में इनका बहुत समय लगता है। मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूं, जिसने मुझे ऐसी धर्मपत्नी दी।"

अपनी बहुत सामान्य शिक्षा के कारण आपकी पत्नी केवल आरम्भिक श्रेणियों

को पढ़ा सकती थीं। परन्तु वे छात्रावास के कार्यों में बहुत सहयोग देती थीं। एक बार आपने अपनी धर्म पत्नी के कार्यों की निम्नलिखित सूची बनाई थी :—

1. जब कोई स्त्री मिले, तब उसे कन्याओं को पाठशाला भेजने के लिए कहो।
2. लोगों के घर जाकर उन्हें अपनी कन्याओं को पढ़ाने के लिए कहो।
3. कन्याओं से प्रेम करोगी, तब वे तुम से प्रेम करेंगीं। उनकी माताएं तुम पर विश्वास करेंगी और तुम्हारा कहना मानेंगी।
4. जहां तक हो सके, शाला में नित्य जाओ। वहां जाकर कन्याओं से उनके स्नान के बारे में पूछा करो।
5. जिन कन्याओं ने मुंह न धोया हो, उनका मुंह धो दो या धोने के लिए कहो।
6. जिनके वस्त्र मलिन हों, उन्हें उजले वस्त्र पहनने की शिक्षा दो।
7. पहली श्रेणी की कन्याओं को पढ़ाओ और उन्हें समाज के नियम कंठ कराओ।
8. पाठशाला को साफ रहने पर ध्यान दो।
9. कन्याओं को भजन लिखाओ और खाना बनाने में सहायता दो।
10. कन्याओं के वस्त्र फटे हुए न हों, पर्देदार हों इस पर विशेष ध्यान दो।
11. कन्याओं के मुंह पर सुरमे के दाग निकालने की जो कुरीति चली हुई है, उसका निषेध किया करो।

ये सब बातें आपकी 1895 की एक डायरी में दर्ज हैं। सुन्दरी देवी ने अपने ज़िम्मे लगे इन कामों को सदा यत्नपूर्वक किया।

जब विधवाओं की शिक्षा-दीक्षा के लिए विधवा-भवन की स्थापना हुई, तो आपकी धर्मपत्नी उसकी अधिष्ठात्र के रूप में भी काम करती रहीं। आप बहुधा अपनी पत्नी के सेवा-कार्य की प्रशंसा किया करते थे। अपनी पत्नी के स्मारक-स्वरूप आपने विद्यालय की वाटिका में 'टहल-कुंज' नाम से एक सुन्दर कुंज विकसित किया था।

: 6 :

सरकार-परस्त वंश का देश-भक्त बेटा

जैसे कि पहले कहा जा चुका है आपका वंश, जालन्धर का प्रसिद्ध सौंधी-वंश. एक सम्पन्न सरकार-परस्त वंश था। अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना से, मुसलमानी और सिक्ख राज्य-काल से, सौंधी वंश एक जागीरदार और साहूकार वंश चला आया था। अंग्रेज़ी राज्य में भी इस वंश की वह स्थिति कायम रही। आपके वंश में ज़ैलदारी भी चली आई थी और आनरेरी मैजिस्ट्रेटी भी। आपके दादा भी आनरेरी मैजिस्ट्रेट रहे थे और पिता भी आनरेरी मैजिस्ट्रेट थे। आपके पिता कुछ देर तक सरकारी नौकरी में भी रहे थे, परन्तु उन्होंने अपने किसी लड़के को सरकारी नौकरी में नहीं भेजा। उन्होंने अपने दो बड़े बेटों को तो अपने वंश-परम्परागत कार्य के लिए तैयार किया और शेष दो को बैरिस्ट्री के स्वतन्त्र धन्धे के लिए ट्रेनिंग दिलाई।

आपकी स्कूल की शिक्षा के बाद पिता ने आपको घर के काम, जमींदारी और साहूकारे के लिए अपने साथ लगा लिया। आपके बड़े भाई की मृत्यु के कारण वंश-परम्परागत ज़ैलदारी और आनरेरी मैजिस्ट्रेटी भी आप पर आ गई। अपने पिता के पश्चात् आपने इस खानदानी विरासत को सम्भाला तो परन्तु अपनी स्वतन्त्रताप्रिय वृत्ति के कारण इसे कभी पसन्द नहीं किया। अंग्रेज़ अधिकारी ऐसे सरकार-परस्त और पदवी-धारी लोगों का दिल से आदर नहीं करते थे और कई ऐसे अवसर आए जब आपने अंग्रेज़ सरकारी अधिकारी के वर्ताव को अपनी आन और अनख के लिए अपमानजनक पाया। अपने एक ऐसे अनुभव के बारे में आपने अपनी डायरी में लिखा है।

".....आज मैं मिस्टर सीवर से मिलने गया। अंग्रेज़ लोग देवियों की बहुत कम इज्जत करते हैं। ऐ आर्यवर्त ! तेरे बच्चे क्या हाल भुगत रहे हैं। दूसरे लोग तेरी दौलत पर मज़े उड़ा रहे हैं।"

ऐसे ही डायरी में अन्यत्र महारानी विक्टोरिया की जुबली के उत्सव में शामिल

होने के अपने अनुभव के बारे में लिखते हैं.....

".....वहां बड़ी दुर्दशा हुई। अंग्रेज़ लोग देसी लोगों को कुत्तों से भी बदतर समझते हैं। कभी एक जगह बिठाते हैं और कभी दूसरी जगह; अन्त में हम सब को बाहर निकाल दिया गया। सब का सब देसी शिष्टमण्डल आज की कारवाई पर नाराज़ है।"

आपने अपने पिता की इच्छा का आदर करते हुए 1890 में जैलदारी की खानदानी पदवी को सम्भाल लिया और अपने काम को बहुत परिश्रम के साथ किया। इस काम में जन-सेवा के जो अवसर मिले आपने उनका पूरा सदुपयोग किया। सरकारी अधिकारी और जनता के लोग सभी आप के कार्य से संतुष्ट रहते थे। 1913 में पिता की मृत्यु के बाद आनरेरी मैजिस्ट्रेटी भी आपको मिल गई। इस काम को भी आपने पूरी ईमानदारी और मेहनत से निभाया। परन्तु आपकी देश भक्त प्रकृति और पूर्व कथित अनुभवों के कारण ये पद सदा आपको अखरते रहे। अपने विद्यालय की छात्राओं के लिए नित नए राष्ट्रीय गीतों की रचना करने वाले आप कब तक सरकारी ज़ंजीरों में जकड़े रह सकते थे? अन्ततः 1920 के राष्ट्रीय आन्दोलन के समय आपने इन ज़ंजीरों को उतार फेंका और अपने मानस को हल्का कर लिया।

1920 की अपनी एक डायरी में आपने अपने इस त्याग के बारे में लिखा है—

".....मैंने अनुभव किया कि मैजिस्ट्रेटी से पहले लोग अक्सर मुझ से अच्छी तरह मिलते थे और अपना काम छोड़ कर भी मेरी बात सुनते थे। लेकिन आनरेरी मैजिस्ट्रेट होने पर मैं उनकी नज़रों में गिर गया।

मैं अफ़सरों की खुशामद करना और उन्हें खुश करने के लिए बातें बनाना नहीं जानता था।

मैं पोलीस को खुश नहीं कर सकता था। मेरे ख्याल में जो आदमी खुशामद, चापलूसी और जी-हजूरी में माहिर नहीं, वह आनरेरी मैजिस्ट्रेटी नहीं कर सकता। मेरे अन्दर इन सब बातों का अभाव था। इसलिए मैं ने उससे इस्तीफा दे दिया।"

आपका वंश जो परम्परा से सरकार-परस्त रहा था; अब इस प्रदेश के प्रसिद्ध देश-भक्त वंशों में गिना जाने लगा। आप तो देश की नई पीढ़ी को देश-भक्ति और राष्ट्रीयता की शिक्षा देने में लगे ही थे। आपके एक छोटे भाई रायजादा हंस राज कांग्रेस आन्दोलन में पंजाब में पहली पंक्ति के लोगों में थे। तीसरे रायजादा भक्त राम, यद्यपि सीधे आन्दोलन में नहीं आए और सरकारी क्षेत्र में सम्मानित रहे परन्तु दिल से, और अपनी आन और अनख से, जनता के श्रद्धा-पात्र रहे।

: 7 :

आरम्भिक सेवा-कार्य
खत्तरी-बिरादरी का क्षेत्र

जैसे कि पहले कहा जा चुका है। 19वीं शताब्दी देश के इतिहास में नव-जागरण की शताब्दी थी। इस नव-जागरण ने बहुत से रूप धारण किए। आपके अध्ययन काल ही में आपके मानस पर उस नव-जागरण का प्रभाव पड़ चुका था। आपके जन्म-जात शुभ संस्कार उस वातावरण से जागृत हो गए थे। होशियारपुर में अपना स्कूल का अध्ययन समाप्त करके आप जालन्धर आए, तो आपके वे विचार अपना प्रभाव दिखाने लगे। एक तो आपने अपने घर में, अपनी माता के सहयोग से, सत्संग का आरम्भ किया, जिसमें भजन-कीर्तन के बाद अक्सर आप किसी सामाजिक विषय पर अपने विचार प्रकट करते थे। आपका दूसरा कार्य अपनी खत्तरी बिरादरी के क्षेत्र में था।

हमारे देश में जात-पात और जात-बिरादरी का बहुत प्रभाव रहा है। इतिहास के मध्यकाल से हमारे देश से जात-पात और जात-बिरादरी ने अपना विशेष प्रभाव प्रकट किया। यह प्रभाव लाभदायक भी रहा है और हानिकारक भी। समाज के छोटे-छोटे दायरों में विभक्त हो जाने से समाज के जीवन में संकीर्णता आती है, विशाल दृष्टि का ह्रास होता है। परन्तु साथ ही छोटे दायरों में आपस के पारस्परिक सम्पर्क से सामाजिक जीवन पर एक अंकुश भी रहता है। जब अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना हुई तो भारत का समाज जात-पात के इन्हीं तंग दायरों में संघटित था। ये तंग दायरे अच्छी और बुरी दोनों तरह की परम्पराओं में जकड़े हुए थे। सामान्य जन-मानस की सहानुभूति अपनी जात-बिरादरी तक ही थी। इसलिए 19वीं शताब्दी में उत्पन्न हुए नव-जागरण का प्रभाव बहुधा इन संकीर्ण दायरों के अन्दर आरम्भ हुआ। गांधी जी के विशाल कार्य क्षेत्र में आने वाले बहुत से महानुभावों ने अपने सेवा-कार्य का आरम्भ अपनी बिरादरी के सुधार से किया था। आपके सामने भी सब से पहले अपनी खत्तरी बिरादरी ही का क्षेत्र आया।

जालन्धर शहर और आस-पास के कस्बों की खत्तरी-बिरादरी के आपस में सम्बन्ध, सम्पर्क और रिश्ते-नाते थे। यह बिरादरी थी भी एक सम्पन्न बिरादरी। इस बिरादरी में सोंधी वंश का और आप के पिता जी का विशेष स्थान था। आस-पास के करतारपुर, कपूरथला और फगवाड़ा आदि के खत्तरी परिवारों के साथ सोंधी वंश का सम्पर्क-सम्बन्ध था ही। इस सम्पन्न वंश का युवक इस बिरादरी में अपनी आवाज़ रखता ही था, विशेषतः जब वह युवक आप जैसा प्रबुद्ध और संस्कारवान था। विवाह-शादियों जैसे अवसरों में तरह-तरह के दान और लाग निकालने का रिवाज था। बिरादरी के चौधरी इस कार्य के विशेषज्ञ होते थे। आपने ऐसे समारोहों पर यह विचार व्यक्त करना आरम्भ किया कि अन्य दानों और लागों को तरह देशोन्नति फण्ड नाम से कुछ पैसे निकाले जाया करें, जिनके आधार पर समाज-सेवा के कार्य चलाएं जाएं। बिरादरी के चौधरियों और दूसरे मान्य लोगों ने आपके विचारों का स्वागत किया और विवाह-शादी आदि समारोहों पर देश-उन्नति फण्ड नाम से कुछ पैसे निकाले जाने लगे। इस कार्य की ज़िम्मेदारी आप पर थी और पैसे भी आप ही के पास आते थे। इस काम के लिए आपकी समाज-सुधार की नई योजनाएं थीं, जिन में से एक योजना पत्रिका निकालने की भी थी।

आपने इस संकीर्ण क्षेत्र में कुछ ही देर काम किया था कि आर्य समाज का बिगुल बज गया। तब एक दम आपका कार्य-क्षेत्र उस संकीर्ण दायरे से बढ़ कर बहुत विशाल हो गया। अब आपके सामने केवल खत्तरी बिरादरी नहीं थी, बल्कि हिन्दू समाज था। परन्तु यह स्वाभाविक था कि आप के कार्य में आपको अधिकांश सहयोगी अपने सम्पर्क-क्षेत्र खत्तरी बिरादरी ही से मिलते। उस ज़माने की ब्राह्मण बिरादरी तो अपनी आजीविका और अपने विशेष पिछड़ेपन के कारण प्रगतिशील नहीं थी। दूसरी जातियां इतनी प्रबुद्ध नहीं थीं। आर्य समाज को विशेषतः आरम्भ काल में, खत्तरी बिरादरी ही से नेता मिले।

जब आपका कार्य-क्षेत्र विशाल हो गया, तो आपके घर का सत्संग ही, एक तरह से जालन्धर आर्य समाज में रूपान्तरित हो गया और आपका देश-उन्नति फण्ड ही आर्य समाज के काम का आरम्भिक फण्ड बन गया। आगे से आगे आपका कार्य-क्षेत्र विशाल होता गया और देश-उन्नति फण्ड का प्रेरक युवक आर्य समाज का एक प्रसिद्ध नेता और स्त्री-शक्ति जागरण का एक प्रमुख प्रेरक बन गया।

: 8 :

कड़ी परीक्षा

यद्यपि आपके पिता लाला सालिग राम पुराने सनातनी विचार के थे, तो भी उनकी दृष्टि बहुत संकीर्ण नहीं थी। आपके आर्य समाजी और प्रगतिशील विचार के विरुद्ध आपका कोई कड़ा रुख नहीं था। आपके काम में माता का आशीर्वाद तो सदा आपके साथ था ही। पिता काम-काजी आदमी थे। उनका अधिक ध्यान अपने काम-काज की तरफ रहता था। तो भी एक जैलदार और आनरेरी मजिस्ट्रेट होने के नाते उनका सम्पर्क जन-सामान्य से आता था। सामान्य जन तो पुराने सनातनी विचार के थे। आर्य समाज से प्रभावित तो युवक वर्ग था। आपके पिता से मिलने-जुलने वाले प्रायः सभी लोग पुराने सनातनी लोग थे। उनके मिलने-जुलने से आपके पिता के पास जो बातें पहुंचती थी, उनके प्रभाव से उनके मानस में परिवर्तन आना स्वाभाविक था।

आपके पिता को लगा कि आपके सामाजिक कार्य से उनकी और उनके वंश की सम्मान-प्रतिष्ठा पर आँच आती थी और उन्होंने इच्छा प्रकट की कि यदि आपने आर्य समाज का कार्य करना ही है तो आप अपने शहर से कहीं बाहर जा कर करें। आप अपने पिता का बहुत आदर करते थे और उनकी इच्छा और आज्ञा का उल्लंघन करना आपके लिए बहुत कठिन था। परन्तु युवक-हृदय में समाज-क्रान्ति की जो ज्वाला प्रज्वलित हो गई थी, वह भी बुझनी मुश्किल थी। इन परिस्थितियों में आप अपने पिता की आज्ञा के अनुसार जालन्धर छोड़ कर कोयटा जाने लिए तैयार हो गए ताकि वहां जाकर स्वतन्त्रता पूर्वक आर्य समाज का कार्य भी करें और साथ आजीविका के लिए कोई नौकरी कर लें। आप बिस्तर बांध कर चलने को तैयार हो गए, तो पिता के हृदय के पुत्र-वात्सल्य ने जोर मारा और उन्होंने अपनी बढ़ाई को छोड़ कर आपको कहलवाया कि आप कहीं बाहर न जाएं और अपनी इच्छा के अनुसार अपना सामाजिक कार्य करते रहें। पिता की अनुमति मिलने पर आप यथापूर्व अपने काम में लग गए।

आर्य समाज का वह आरम्भिक युग समाज-क्रान्ति का युग था। नव-युवकों में जोश था। आप युवकों के नेता थे। एक तो आपके अपने जोश के कारण और दूसरे आपके वंश के सम्पन्न और हिन्दू-समाज का सिरमौर होने के कारण युवकों के इस जोश के केन्द्र-बिन्दु आप ही थे। आपके और आपके साथियों के क्रान्तिकारी कार्यों की रिपोर्टें, बहुधा नमक मिर्च लग कर, आप के पिता के पास पहुंचती थी। अतः दो वर्ष बाद, 1889 में, आपके पिता ने पुनः आपको आज्ञा दी कि आप शहर में अपने कार्य को छोड़ दें और चाहें तो बाहर कहीं जा कर यह कार्य करें। पिता की इच्छा के अनुसार आप शहर छोड़ कर ब्रह्मा जाने को तैयार हो गए। उस ज़माने में, आर्य समाज के आरम्भ-काल में, युवकों में सामाजिक नव-जागरण का ऐसा जोश था।

घर छोड़ कर आप कलकत्ता गए और ब्रह्मा जाने के लिए समुद्र-यात्रा का प्रबन्ध करने लगे, तो पिता की ओर से सन्देश मिला कि आप घर लौट आएं। परन्तु अबके आपने अपना इरादा न बदला और आप टिकट लेकर जहाज़ में सवार हो गए। जहाज़ चल चुका था कि आपके पिता का भेजा गया एक विश्वस्त व्यक्ति, किश्ती के द्वारा जहाज में पहुंचा और पिता की लौट आने की आज्ञा सुना कर, आपको किश्ती के द्वारा जहाज़ पर से लौटा लाया। आप अपने प्रिय पिता की उस आज्ञा को टाल न सके और वापिस आ गए। आपने केवल इतना कहा कि.....

".....पिता जी की आज्ञा से गया था और पिता जी की आज्ञा से लौट आया हूं.....।"

अब तक आपके पिता आपके मानस को अच्छी तरह समझ गए थे। तब तक लोगों ने भी आर्य समाज के विचारों को सहन करना कुछ-कुछ सीख लिया था। हो सकता है कि आपके पिता से मिलने-जुलने वाले भी अब उनके पास सम्भल कर ही कोई शिकायत करते हों। उन लोगों ने देख लिया था कि युवकों का वह जोश ठंडा होने वाला नहीं था। समाज-क्रान्ति की ज्वाला ऐसी प्रचण्ड हो चुकी थी कि आपके बाहर जाने पर भी वह बुझने वाली नहीं थी।

अब आपको अपने कार्य के लिए खुली छुट्टी मिल गई और आप जी-जान से अपने हृदय के प्रिय कार्य में जुट गए।

: 9 :

लोक-संग्रह की वृत्ति

जीवन के छोटे-मोटे काम तो मनुष्य अपनी शक्ति और थोड़ी बहुत बाहिर की सहायता से सम्पन्न कर सकता है। परन्तु बड़े-बड़े कामों में, विशेषतः समाज-सेवा के कामों में, कोई महापुरुष भी, केवल अपनी शक्ति से सफल नहीं हो सकता। जितना महान् कोई कार्य होगा उसके लिए उतने ही अधिक लोगों की सहायता की अपेक्षा होगी। अपने महान् कार्य के लिए, ऊंचे आदर्श की प्राप्ति के लिए, महापुरुषों को दूसरे योग्य व्यक्तियों को आकर्षित करना होता है। आकर्षित भी उन लोगों को करना होता है जिनमें उस काम के लिए आवश्यक शक्ति और योग्यता मौजूद हो। इस तरह योग्य व्यक्तियों को परखना, अपने कार्य के प्रति आकर्षित करना, और आकर्षित होकर आए व्यक्तियों को निभाना, अपने साथ बनाए रखना और कार्य के लिए प्रेरित करना, किसी भी महान् कार्य के सम्पन्न-कर्त्ता मुख्य पुरुष के लिए अनिवार्य गुण हैं। इस गुण को लोक-संग्रह की वृत्ति या लोगों को जुटाने और कार्य में लगाए रखने की वृत्ति कहते हैं।

कई लोग बहुत अच्छे, नेक और गुणवान् होते हुए भी, स्वयं भले ही काम में लगे रहें परन्तु दूसरों को उस काम के लिए आकर्षित न कर सकने के कारण अपने काम में असफल रह जाते हैं। ऐसे महापुरुष एक ऊंचा विचार और आदर्श भले प्रस्तुत कर जाएं, परन्तु उस विचार और आदर्श को एक मूर्ति-मन्त रूप नहीं दे सकते।

हमारे कथानायक के अन्दर यह लोक-संग्रह की, लोगों को आकर्षित करने और कार्य में लगाए रखने की, वृत्ति मौजूद थी। अपने जीवन के आरम्भ काल से आपने दूसरों को अपने कार्य में लगाने की योग्यता का परिचय दिया। अपने सम्पन्न और प्रसिद्ध वंश के कारण भी सेवा-भावी लोग आपकी तरफ आकर्षित हो जाते थे। अपनी नम्रता से, प्रेरणा से, गुण-दर्शन की भावना से, आप आने वाले को अपने साथ बनाए रखते थे।

जैसे कि पहले कहा जा चुका है, आपने अपनी माता को और अपनी पत्नी को

विद्यालय के अपने काम में लगाया। गार्गी नाम की आपकी एक सुयोग्य पुत्री भी विद्यालय की उस समय की अन्तिम श्रेणी, आठवीं श्रेणी, पास करके, कुछ वर्ष तक, 17 वर्ष की आयु में अपनी मृत्यु तक, आपके महान् कार्य में लगी रही। आपने अपने भाइयों और सोंधी वंश के अन्य योग्य पुरुषों को भी अपने कार्य की ओर आकर्षित किया।

लाला राम कृष्ण जालन्धर के एक सम्पन्न वंश के महानुभाव थे, जो आपके सामाजिक कार्य के आरम्भ से आपके साथ लगे और जीवन भर आपके कार्य के साथी रहे। लगभग बीस वर्ष तक वे आर्य प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष रहे। इसी प्रकार राय बहादुर बदरी दास अपनी प्रैक्टिस के प्रायः आरम्भ काल से आपके सहयोगी बने और आपके जीवन के बाद भी, अपनी लगभग सौ वर्ष की आयु तक कन्या महाविद्यालय की मुख्य सभा के अध्यक्ष रहे। सोंधी वंश के लाला जेठामल वकील और सेठ वृन्दावन भी जीवन पर्यन्त आपके काम में लगे रहे। लगभग 1926 से, अभी चंद वर्ष पहले तक, आर्य-मुख्य सभा के जनरल सैक्रेटरी रह चुकने वाले लाला जगन्नाथ मित्तल ने बताया।

".....मैं अभी वकालत पास करके आया ही था कि 1924 के आस-पास लाला देव राज जी मेरे पास आकर मुझे अपने कार्य में सहयोग देने के लिए प्रेरणा करने लगे। ऐसे सेवा-भावी महापुरुष को मैं न कैसे कह सकता था ? पहले-पहले मुझे संस्था के बुक डिपो का कुछ कार्य दिया गया। परन्तु कुछ ही समय बाद मुझे आर्य मुख्य सभा का जैनरल सैक्रेटरी बना दिया गया। इस प्रकार लगभग 50 वर्ष तक मैं ने सभा के जनरल सैक्रेटरी के रूप में कार्य किया .....।"

विद्यालय के बहुत से अध्यापक अध्यापिकाएं आजीवन आपके साथ कार्य-रत रहे। उनमें से जो सेवा-मुक्त भी हुए उनकी भावनाएं भी संस्था के साथ रहीं। इससे स्पष्ट है कि आपका व्यवहार सब के प्रति नम्रता तथा आदर का होगा, आप उनके गुणों की कद्र तथा अवगुणों की उपेक्षा करते होंगे, उनके सुख-दुःख में साथ देते होंगे और उनके साथ स्नेह का सम्बन्ध रखते होंगे।

आज के युग में लोक-संग्रह की इस वृत्ति का ज्वलंत दर्शन महात्मा गांधी के जीवन में मिलता है। उन्होंने सामाजिक जीवन के प्रायः हर पहलू में कार्य किया और कार्य को स्थायी रूप में चलाने वाले सेवा-साधक संगृहीत किए। तभी आध्यात्मिक साधना से लेकर गांवों के लोगों के शौचालयों के प्रबन्ध तक, प्रायः हर विषय को उन्होंने अपने प्रयोगों का क्षेत्र बनाया और प्रत्येक विषय के लिए योग्य कार्य-कर्त्ता नियुक्त किए, जिन्होंने अपने जीवन उस काम में लगा दिए। आपके जीवन में भी एक ऐसी ही लोक-संग्रह की वृत्ति मौजूद थी।

—×—

: 10 :

एकनिष्ठ भावना

मनुष्य के जीवन में किसी भी महान् उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एकनिष्ठ साधना की आवश्यकता रहती है। मनुष्य की शक्ति सीमित होती है। यदि उस शक्ति को, बिना किसी उद्देश्य के, इधर-उधर बिखेर दिया जाए, तो उस से कोई परिणाम नहीं निकलता। जीवन के ध्येय के लिए, पूरी निष्ठा के साथ, काम करने से ही फल की उपलब्धि होती है।

महाभारत की उस प्रचलित कहानी के अनुसार अर्जुन तभी उस पक्षी की आंख के निशाने पर तीर मार कर गुरु द्रोणाचार्य की परीक्षा में पास हुआ, जब उसने अपना ध्यान सभी ओर से, वृक्ष की शाखाओं तक से, पक्षी के अन्य अंगों तक से, हटा कर पक्षी की आंख पर लगाया। यह कहानी हमें एकनिष्ठ साधना की शिक्षा देती है।

अपने कथानायक के जीवन में भी हम देखते हैं कि आप जिस काम में लगे, आपने जिस ध्येय को अपनाया, उसके लिए पूरी निष्ठा से एकनिष्ठ होकर साधना की। आपके सेवा-कार्य के पहले लगभग दस वर्ष जालन्धर आर्य समाज के क्षेत्र में गुज़रे। आपने तन, मन और धन से इस कार्य को सम्पन्न किया। जैसे कि कहा जा चुका है आर्य समाज का वह आरम्भिक युग युवकों के विशेष उत्साह का युग था। लाहौर के बाद जालन्धर आर्य समाज ही स्वामी दयानन्द सरस्वती के आन्दोलन का सबसे बड़ा केन्द्र था। दोआबा-क्षेत्र, जालन्धर और होशियारपुर के जिले जालन्धर के केन्द्र ही से प्रेरणा और सहायता लेते थे। समाजों की स्थापना करना और उन्हें नई समाज-क्रान्ति के केन्द्र बनाना आपका और आपके साथियों का कार्य था।

जालन्धर के आर्य समाज मन्दिर के निर्माण कार्य में आपने और आपके साथियों ने अपने सिरों पर ईंटों को भी ढोया। प्रचार कार्य के लिए, आर्य समाजों के उत्सवों और सत्संगों में प्रवचन और व्याख्यान देने के लिए, आप भ्रमण करते रहते थे। 'सद्धर्म-प्रचारक' पत्र के सम्पादन में आप समय देते थे। आर्य समाज के आरम्भ किए

गए, वैदिक संस्कारों में शामिल होना उस जमाने के आर्य-समाजियों का एक विशेष कार्य होता था, क्योंकि जात-बिरादरी के लोग, जो पुराने रस्मो-रिवाज से बंधे थे, इन नए ढंग के वैदिक-संस्कारों में न केवल शामिल नहीं होते थे, बल्कि उनका बायकाट और विरोध भी करते थे। ऐसे अवसरों पर आर्य समाजी युवक दूर-दूर के अपने सहधर्मियों के उन संस्कारों में शामिल होने के लिए जाते थे।

एक बार तो आपने आर्य समाज के स्थान-स्थान के कार्य को देखने के लिए और प्रचार कार्य को बढ़ाने के लिए, न केवल पंजाब के भिन्न-भिन्न स्थानों की, बल्कि राजस्थान और बम्बई तक की यात्रा की।

परन्तु 1890 के आस-पास, जब आपने कन्या महाविद्यालय के कार्य को अपने हाथ में ले लिया और अपना जीवन-कार्य बना लिया, तो यही कार्य आप की निष्ठा का विषय बन गया। फिर तो आठों पहर, घर के काम-काज की उपेक्षा करके भी, आपका ध्यान इस कार्य में रहने लगा। जैसे कि पहले कहा जा चका है यह कार्य आप की वृत्ति के बहुत अनुकूल था। आपका मातृ-हृदय इस कार्य में रमा रहता था। जैसे कि कहा जा चुका है आपने अपनी माता और पत्नी को भी इसी काम में लगा दिया। अपनी सुपुत्री गार्गी को भी इसी काम के लिए तैयार किया।

लगभग 1895 तक आप जालन्धर आर्य समाज के प्रधान रहे, परन्तु बाद में आपने अपने विद्यालय के कार्य के लिए उस जिम्मेवारी को भी दूसरों पर डाल दिया। तब तक आपके सह कार्यकर्त्ता भी तैयार हो चुके थे और आर्य समाज की प्रवृत्तियों को संभालने के योग्य हो गए थे।

उस ज़माने में कन्या महाविद्यालय का कार्य, आर्य समाज के कार्य से भी कहीं मुश्किल था। आर्य समाज के समाज-सुधार के बहुत से विचारों को लोग सहन करने लगे थे, परन्तु स्त्री-शिक्षा का विचार तो उस जमाने में सामान्य लोगों को असह्य था। लड़कियों को पढ़ाने की बात लोगों के गले नहीं उतरती थी।

इन सब कठिनाइयों और विरोध-भावनाओं का सामना करने की शक्ति और एकनिष्ठ मन से काम में लगे रहने की वृत्ति आपने सीख ली थी। उस ज़माने में स्त्री-शिक्षा का कार्य दरिया में ऊपर की तरफ, जिधर से पानी आ रहा है उस तरफ, को तैरने का काम था। परन्तु समाज-सुधार की क्रान्तिकारी दिशा में वर्षों तक कार्य करके आपने इस कार्य के लिए शक्ति का संचय कर लिया था।

सब विरोधों और कठिनाइयों का मुकाबला करके आप, अपनी एकनिष्ठ साधना के बल पर, सफलता की दिशा में आगे से आगे बढ़ते गए।

: 11 :

काम की लगन

जैसे कि पहले कहा जा चुका है, हमारे कथा-नायक एक मातृ-हृदय लेकर पैदा हुए थे और चढ़ती जवानी ही में आपके अन्तःकरण में स्त्री-शक्ति को जगाने की, कन्याओं को सुशिक्षित और सुसंस्कृत करने की, एक आध्यात्मिक लग्न थी। जब कन्याओं की शिक्षा की संस्था का आरम्भ हुआ तो आप जी-जान से उस काम में लग गए। किसी आदर्श के लिए दिल से काम करने वाले को उस काम का श्रेय मिलना भी स्वाभाविक है। आप के मातृ-स्नेह के कारण छोटी-छोटी कन्याएं भी अपने प्यारे 'चाचा जी' से प्यार करती थीं और उन कन्याओं के माता-पिता भी आपके प्रति आदर और विश्वास रखते थे।

जब किसी कर्मठ कार्यकर्त्ता को अपने कार्य के लिए श्रेय मिलता है, तो कुछ ईर्ष्यालु वृत्ति के साथी ईर्ष्या के शिकार हो जाते हैं। आपके प्रति भी कुछ साथियों में ईर्ष्या की भावना पैदा हो गई। आर्य समाज के कुछ सदस्यों ने आप पर यह इलज़ाम लगाया कि आप संस्था के सर्वे-सर्वा बनना चाहते थे। प्रबन्ध-कर्तृ-सभा ने इन आपत्ति करने वालों के सन्तोष के लिए आपके स्थान पर अन्य दो व्यक्तियों को संस्था की ज़िम्मेवारी दे दी। सेवा की लगन वाले युवक को अपने मानस के प्रिय कार्य से अलग किए जाने का जो दुःख हुआ, उसे आप ही के शब्दों में दिया जाता है.....

".....मेरा मन स्त्री-समाज के लिए अर्पण हो चुका है, इस लिए अधिक काम अपने हाथ से करना पड़ता है। मैं इस काम को मुक्ति का साधन समझ कर करता हूं। प्रबन्ध-कर्तृ-सभा ने यह तै किया है कि विद्यालय के प्रबन्ध-कर्ता का काम मेरी जगह लाला राम कृष्ण जी और आश्रम का काम मास्टर सन्तराम जी करें। जिस समय यह विचार हो रहा था मैं पागल की तरह महाविद्यालय की दीवारों की तरफ देख रहा था। मेरे होश-हवास ग़ायब हो रहे थे। मेरे मन में यही विचार उठ रहे थे कि 'हाय! क्या विद्यालय से अलग हो रहा हूं? विद्यालय का क्या हाल होगा? कन्याओं की देखभाल कौन करेगा? यद्यपि लाला राम कृष्ण और लाला मुन्शी राम मुझ से अधिक योग्य हैं, तो भी मैंने तो इस काम को अपनी ज़िन्दगी का मक़सद बनाया

हुआ है। मैं तो कन्याओं का माता-पिता बना हूं। सब के घरों में चला जाता हूं। इन साहेबान से ऐसा न हो सकेगा। इतना समय भी इनके पास कहां है? महाविद्यालय का जरूर नुकसान होगा, लगा हुआ पौधा मुरझा जाएगा। हाय! यह क्या हो रहा है! ईश्वर की इच्छा!' सारी रात मुझे नींद नहीं आई। मैं रोता रहा। सोचता था कि शायद ये साहेबान मेरे काम को नहीं समझे। ये कन्याओं के प्रति मेरे मातृ-हित को नहीं जानते। कन्याओ! मैं जब तक जिऊंगा, तुम्हारी सेवा करूंगा।"

इधर आप के मन की ऐसी अवस्था थी, उधर इस परिवर्तन से विद्यालय की छात्राओं में और अध्यापकों में एक हलचल मच गई। कन्याओं ने अपने प्यारे चाचा जी के अभाव को महसूस करके रोना धोना शुरू कर दिया, भोजन तक छोड़ दिया। अध्यापकों ने भी इस निर्णय के प्रति अपना विरोध प्रकट किया। शहर में कन्याओं के माता-पिताओं ने भी इस परिवर्तन का विरोध किया। इसलिए अगले ही दिन प्रबन्ध-कर्तृ-सभा ने इस परिवर्तन को रद्द करके सारा कार्य पहले की तरह आपके जिम्मे कर दिया।

इस सम्बन्ध में आपने लिखा है :—

".....मेरी ज़िन्दगी में यह अजीब दिन था। इस घटना से महाविद्यालय और उसकी कन्याओं के लिए मेरा प्रेम और अधिक बढ़ गया। मैंने आगे से ज्यादा काम करने का निश्चय किया। ईश्वर! यही प्रेम बना रहे....."।

आपकी इस लगन के फल-स्वरूप उन विकट परिस्थितियों में स्त्री शिक्षा का क्रान्तिकारी कार्य आगे से आगे बढ़ता गया। आपने इस कार्य में अपना सर्वस्व लगा दिया। ऐसी लग्न वाले लोग ही ऐसे कामों को सम्पन्न करने का श्रेय ले सकते हैं।

—×—

: 12 :

गुण-दर्शन की वृत्ति

हर एक मनुष्य के जीवन में गुण और दोष दोनों पाए जाते हैं। मनुष्य का जीवन आत्मा और प्रकृति के मिश्रण से बना है। आत्मा गुणों का भण्डार है, परन्तु प्रकृति के परदों से वे गुण ढंप जाते हैं और दोष-रूप भी बन जाते हैं। गुण आत्मा का स्वभाव है। सब मनुष्यों में आत्मा होने से उनमें कुछ तो गुण रहेंगे ही। परन्तु प्रकृति के प्रभाव के कारण सब में दोष भी रहेंगे।

गुणों और दोषों के बने मनुष्य के गुणों की ओर देखने से उसके प्रति प्रेम और आकर्षण पैदा होता है, परन्तु उसके दोषों ही पर दृष्टि रखने से उसके प्रति दुर्भावना पैदा होती है। दुनिया में मिलजुल कर रहने के लिए, सद्भावना-पूर्वक रहने के लिए हमारा ध्यान दूसरे के गुणों पर रहना चाहिए। जब हम अपने साथी और सह-कार्य-कर्त्ता के गुणों को देखते हैं और उनका वर्णन भी करते हैं, तो सद्गुणों को वृद्धि के लिए प्रेरणा मिलती है। मानव के गुण-वर्धन ही से मानव-संस्कृति का उत्थान होता है।

हमारे कथा-नायक में अपने साथ कार्य करने वालों के गुणों को देखने की और उन्हें बढ़ाने की वृत्ति थी। विद्यालय के इतिहास में आपकी इस दृष्टि के बहुत से उदाहरण मिलते हैं।

विद्यालय के आरम्भ काल ही में, गत शताब्दी के अन्तिम वर्षों में, पश्चिमी पंजाब के जिला मुजफ्फरगढ़ की एक विधवा बहन सावित्री देवी, शिक्षा के लिए विद्यालय में आई। आपने उसमें नम्रता, सेवा, लज्जाशीलता आदि भारतीय स्त्री के गुणों की विशेष आभा देखी तो उसके विकास को विशेष प्रोत्साहन दिया। शिक्षा-दीक्षा के बाद उसके निरीक्षण में विधवा-भवन की स्थापना कर दी गई। लगभग बीस वर्ष तक इस बहन ने सेवा-कार्य किया। उसकी मृत्यु के बाद उसकी स्मृति में विधवा-भवन का नाम सावित्री भवन कर दिया गया, जो अब तक अपने उस नाम से पुकारा जाता है।

इसी प्रकार नारायण देवी नाम की एक बहन ने विद्यालय की बहुत सेवा की। बहुत देर तक छात्रावास का प्रबन्ध उसके हाथ में रहा। उसने संस्था के लिए रुपया भी जमा किया। उसकी सेवा की स्मृति में विद्यालय के बाग़ में एक चबूतरा और वट का वृक्ष है, जिसे "नारायणी वट" कहा जाता था और जहां उस बहन की स्मृति-रूप एक नामांकित 'सलैब' लगी है।

विद्यालय के पुराने शिक्षक-वर्ग में 'रैमल दास' नाम के एक भक्त-हृदय और आदर्शवादी अध्यापक थे। उनकी स्मृति में विद्यालय में 'रैमल कुञ्ज' नाम से एक स्थान था। उसी प्रकार अन्य विशेष सेवा भावी अध्यापक अध्यापिकाओं की स्मृति में, उनके नामों पर मार्गों तथा कुंजों के नाम रखे गए थे।

आपने अपनी माता, काहन देवी जी और पत्नी टहलदेवी की सेवा की स्मृति में भी विद्यालय में स्मारक बनवाए।

विद्यालय के छात्रावास में प्रवेश करने के मुख्य द्वार से प्रवेश करते ही डयोढ़ी में दीवारों पर उन छात्राओं के नामों की सूचि अंकित रहती थी जिन्होंने छः मास से अधिक समय तक संस्था में अवैतनिक रूप में शिक्षण आदि की सेवा की थी।

जिस समाज और संस्था में अच्छे लोगों के गुणों का स्मरण किया जाता है और उनके स्मृति-चिन्ह सुरक्षित रहते हैं, उस समाज और संस्था में आने वालों को उनसे प्रेरणा मिलती रहती है। ऐसे लोगों के जीवन का वर्णन ही उस समाज और संस्था का इतिहास होता है।

हमारे देश में अपने सत्पुरुषों और गुणवान व्यक्तियों के जीवन वृत्तांत-सुरक्षित रखने का रिवाज नहीं है। हम बहुत जल्दी अपने समाज के सत्पुरुषों को भूल जाते हैं। इसी वृत्ति के कारण हमारे देश का बहुत कम इतिहास मिलता है। इतने प्राचीन और महान् देश में न जाने कितने सत्पुरुष हो गए होंगे परन्तु हमने उनकी स्मृति को बहुत कम सुरक्षित रखा है। इसके फलस्वरूप हमारे देश के इतिहास के लिए जो सामग्री मिली भी है वह अधिकांश यहां आने वाले विदेशी यात्रियों के यात्रा-वृत्तांतों से मिली है।

—×—

: 13 :

आध्यात्मिक दृष्टि

यद्यपि लाला देवराज जी हमारे सामने, मुख्य रूप में, एक समाज-सुधारक, स्त्री-शक्ति-जागरण के एक प्रेरणा-पुरुष और एक देश-भक्त के रूप में आते हैं, तो भी इन सभी कार्यों में आपकी दृष्टि आध्यात्मिक रहती थी। आपके जीवन और कार्य का आधार एक गहरी आध्यात्मिक भावना थी, जो आपको अपनी माता से विरासत में मिली थी। जैसे कि पहले कहा जा चुका है, आपकी माता के अन्तःकरण में एक गहरी भक्ति-भावना थी, जो उनके समाज-सेवा के कामों के लिए भी एक प्रेरणा-स्रोत थी।

हम देखते हैं कि अध्ययन-काल के पश्चात् जीवन में प्रवेश करते ही आप के अन्तःकरण में सत्संग और भक्ति-भावना के लिए एक छटपटाहट है। लाहौर के एक ब्रह्म-समाजी मित्र के घर में पारिवारिक सत्संग के वातावरण को देखते ही आपने अपने घर में भी ऐसा पारिवारिक सत्संग आरम्भ करने का निश्चय कर लिया। ऐसे कामों में आपको अपनी माता का सहयोग तो मिल ही जाता था। भजन गाने की अपनी प्रतिभा के कारण आपकी माता उस सत्संग की आत्मा बन गईं। इस सम्बन्ध में आप लिखते हैं—

".....मेरा विचार सुन कर माता जी बहुत खुश हुई। घर में साप्ताहिक सत्संग होने लगा और वह माता जी के अन्त समय तक जारी रहा। उसके लिए एक कमरा निश्चित हो गया। उस कमरे का नाम हमने 'प्रार्थना-भवन' रखा। उस कमरे को फूलों से सजाया जाता था और धूप भी जलाई जाती थी। वीरवार शाम को घर की सब देवियां जमा होकर भजन गाया करती थीं और मैं उन्हें उपदेश दिया करता था कोई कथा सुनाया करता। माता जी के सप्रेम और भक्ति-पूर्ण भजनों से वह समय एक स्वर्गीय दृश्य के समान हो जाता था। कभी-कभी तो माता जी प्रेम और श्रद्धा से आंसू बहाती और हाथ घुमाती हुई मानो नाच रही होती थीं। वे अपने आपको भूल जाती थीं।

पहले-पहल तो मैं और माता जी दोनों ही भजन गाया करते थे। बाद में घर

की दूसरी स्त्रियां भी गाने में शामिल होने लगीं और शनैः शनैः पर्दे का रिवाज भी ढीला पड़ने लगा। कुछ समय बाद नगर की बहुत सी देवियां भी सत्संग में शामिल होने लगीं।"

अपनी इस चढ़ती जवानी के दिनों से आपके अन्दर अपने आध्यात्मिक विकास के लिए पिपासा थी। इस सम्बन्ध में आप लिखते हैं—

".....दूसरों को रास्ता दिखलाने का परिश्रम करने से पहले मुझे अपने आपको भक्ति के स्रोत पर ले जाना होता था। इससे मेरा बड़ा कल्याण हुआ। मेरी आत्मा उन्नत हुई और मैं माता जी के आशीर्वाद का पात्र बनने के योग्य हुआ। मैं अपनी ज़िन्दगी के इस हिस्से को जो कई वर्षों तक रहा, सदैव बड़ी प्रसन्नता से याद किया करता हूं।"

पारिवारिक सत्संग के महत्त्व के बारे में आप लिखते हैं—".....मेरा अनुभव है कि स्त्रियों के विचारों के परिवर्तन के लिए, सभा-समाजों के लैक्चरों की अपेक्षा पारिवारिक उपासना की विधि अधिक लाभदायक है। इससे घर सुधर जाते हैं और गृह कार्य में परिपक्वता और मिठास आ जाती है।"

उस समय की अपनी आध्यात्मिक साधना के सम्बन्ध में आप लिखते हैं—

".....आजकल मैं विचार-शक्ति को बढ़ा रहा हूं। आधी रात को उठ कर (आध्यात्मिक) प्रश्नों पर सोचा करता हूं। परमात्मा की लीला को देखता हूं।"

आपको सन्ध्या, प्रार्थना और उपासना की शक्ति पर बहुत विश्वास था। अपने सामाजिक कार्यों को पूरी शक्ति के साथ करते हुए भी आप उनकी सफलता के लिए परमात्मा से प्रार्थना किया करते थे—

".....हे मेरे परमेश्वर! आप मेरे मालिक और मेरे पैदा करने वाले हैं। मेरे सब काम आपके अधीन हैं। आप ही कल्याण-कारी हैं। मुझे बल दीजिए ताकि मैं अपने प्रयत्नों में सफल होऊं।"

प्रार्थना के समय यदि मन इधर उधर भटकता तो आप पश्चात्ताप करते थे। आपने लिखा है—

".....मैं ऐसा बदकिस्मत हूं कि कभी-कभी उपासना के समय मन ऐसा उटक जाता है कि परमात्मा का सच्चा नाम लिया ही नहीं जाता। मुझे इस पर रोना आता।"

ऐसे भक्ति-पूर्ण हृदय के साथ आपने अपने समाज-सेवा के कार्य को उठाया और यह ध्येय सामने रखा कि समाज-सेवा से आत्म-शुद्धि होती जाए। वास्तव में जीवन के सभी काम आत्म-शुद्धि ही के लिए हैं। समाज-सेवा का ध्येय भी आत्म-शुद्धि ही है। अन्तःकरण की शुद्धि से शून्य समाज-सेवा केवल शरीर की दौड़धूप है।

—×—

: 14 :

उदार हृदय

किसी भी धर्म या मजहब की बुनियाद सत्य और प्रेम की भावनाएं होती हैं। यही भावनाएं उस धर्म या मजहब के मानने वालों के जीवन को उज्ज्वल और पवित्र बना सकती हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से सेवा-साधना करने वाले महापुरुष इन आधार-भूत भावनाओं के बिना अपने कार्य को यथेष्ट रूप नहीं दे सकते। हमारे कथा-नायक के सेवा-कार्य के लिए भी ये ऊंची भावनाएं प्रेरणा-स्रोत थीं। इन भावनाओं के कारण आपके अन्तःकरण में एक उदारता थी, एक विशालता थी। यद्यपि आपके कार्य का क्षेत्र हिन्दू-समाज था, तो भी आपके हृदय में अन्य धर्मों के अवलम्बियों के लिए भी प्रेम और सहानुभूति की गहरी भावना थी।

जैसे कि पहले कहा जा चुका है जालन्धर शहर में, शताब्दियों से हिन्दू और मुसलमान मिल जुल कर रहते चले आए थे और दोनों धर्मों के मानने वालों के पारस्परिक सम्बन्ध भाईचारे के थे। शहर के इस वातावरण का श्रेय जिन लोगों को था, उनमें आपका सोंधी वंश भी एक मुख्य भूमिका रखता था, इस वंश के प्रतिनिधि के नाते आपने भी इस भूमिका को पूरी तरह निभाया।

बेशक विद्यालय की छात्राएं हिन्दू परिवारों की थीं, परन्तु किसी मुसलमान परिवार की लड़की को भी संस्था में लेने के लिए आप तैयार रहते थे। 1915-16 में ही एक मुसलमान परिवार की 'उल्फत' नाम की एक लड़की, न केवल विद्यालय में, बल्कि छात्रावास में रही। कट्टरपंथी भावनाओं वाले लोगों के सम्भावित विरोध को ध्यान में रखते हुए उस लड़की को संस्था में 'शांता' नाम दिया गया।

बाद में तो बहुत सी मुसलमान छात्राएं विद्यालय में दाखिल होने ही लगी थीं और आपकी तथा संस्था की उनके प्रति सदा उदारता की दृष्टि रही। उन छात्राओं के कभी यह अनुभव करने की बात सामने नहीं आई कि उनके प्रति अलगाव का व्यवहार किया जाता हो।

जब कन्या महाविद्यालय शहर से बाहिर, अपने वर्तमान स्थान पर ले जाया

गया, तो आस-पास की ज़मीनों पर बहुत से मुसलमान अराईं लोग खेती करते थे। उन सब के प्रति आपका सदा स्नेह का बर्ताव रहा। छात्रावास की छात्राएं उन मुसलमानों के खेतों में बेझिझक घूमने फिरने जाती थीं। विद्यालय के उत्सवों के अवसर पर आप आस-पास के उन मुसलमान किसानों के लिए भी पक्वान आदि भेजते थे और वे किसान भी संस्था की छात्राओं के लिए अपने खेतों की पैदावार, गन्ने, गाजर, मूली आदि श्रद्धा-पूर्वक प्रदान करते थे।

विद्यालय के आस-पास के उन मुसलमान अराईं किसानों की लड़कियां भी, जो खेतों में रोटी पानी आदि लेकर जाती थीं, आपसे खूब परिचित थीं और मिलने पर आपको 'चाचा जी' कह कर अभिवादन करती थीं। अपने मातृ-स्वभाव के अनुसार आप उन लड़कियों के साथ प्यार से बातें करते। कभी-कभी आप उनके द्वारा ले जाई जा रही रोटी आदि को खुलवा कर भी देखते ताकि आप उन सामान्य गरीब लोगों की खान-पान की स्थिति को जान सकें। आप उन लड़कियों को कोई काम की बात समझाते भी थे। यदि किसी का रोटी आदि बांधने का कपड़ा मैला होता तो आप उसे साफ रखने की बात भी कहते। उन सब लड़कियों के प्रति आपका स्नेह वैसा ही होता था जैसा विद्यालय की छात्राओं के प्रति।

आपकी इन्हीं उदार भावनाओं के कारण शहर के मुसलमानों की दृष्टि संस्था तथा संस्था के संस्थापक, आपके प्रति आदर और स्नेह की रही।

आर्य समाज के उस युग में आर्य-समाजी पंडितों और मुसलमान मौलवियों में, धार्मिक विषयों पर शास्त्रार्थ भी होते थे और बोलने वाले लोग कभी-कभी नोक-झोंक से भी काम लेते थे, परन्तु आपके उदारतामय व्यक्तित्व के कारण कभी कोई बदमज़गी नहीं होने पाती थी।

1946-47 के हिंसामय वातावरण में भी, शहर से बाहर, उजाड़ में स्थित, विद्यालय तथा आश्रम के प्रति कोई अशोभनीय काण्ड नहीं हुआ। इसका श्रेय आपकी चलाई उदारता की नीति को था, जो आपके बाद भी सुरक्षित रही और जिससे यह संस्था हिन्दू और मुसलमान दोनों के आदर की पात्र रही।

: 15 :

पिता के प्रति आदर

सामान्यतः हमें अपनी माता के प्रति स्नेह और प्रेम का भाव होता है और पिता के प्रति आदर और श्रद्धा का। आपके जीवन में भी यह बात बिल्कुल ठीक उतरती थी। बचपन में अपने दुर्बल स्वास्थ्य के कारण आप माता के लाड-प्यार के विशेष भाजन रहे थे और माता की स्नेह-शील प्रकृति के कारण आप उनके प्रति गहरा स्नेह रखते थे। माता के गुणों के कारण आपको उनके प्रति अगाध श्रद्धा भी थी।

आपके पिता शहर के एक विशेष सम्पन्न वंश के प्रमुख पुरुष, एक ज़ैलदार, एक आनरेरी मजिस्ट्रेट, एक जमींदार और साहूकार थे, जिनकी मान्यता सरकार और जनता दोनों में थी। एक व्यस्त कारोबारी आदमी की तरह वे घर के मुआमलों में तटस्थ भी रहते थे। उनकी रईसी शराफत भी सर्व-मान्य थी। ऐसे पिता के प्रति आप जैसे चरित्रवान् और सेवा-भावी सुपुत्र का गहरा आदर-भाव होना स्वाभाविक था।

माता पिता का, विशेषतः पिता का, आज्ञाकारी पुत्र होना भारतीय संस्कृति का एक विशेष गुण है और भारत के पतन के इस युग में भी रामायण की परम्पराएं सभ्य समाज में सुरक्षित थीं। आपके जीवन में आरम्भ-काल से लेकर 1913 में पिता की मृत्यु पर्यन्त, उनके प्रति हार्दिक आदर-सम्मान की भावना दिखाई देती है। पिता ने जो काम आपके ज़िम्मे लगाया उसे आपने पूरी तन्मयता से सम्पन्न किया।

प्रचलित पौराणिक परम्परा के विरुद्ध, आपके समाज-क्रांति के, आर्य समाजी विचार, आपके पिता को अपने वंश की सर्व-जन-सम्मत मनोवृत्ति के अनुकूल नहीं मालूम होते थे, परन्तु आप भी अपनी वैचारिक ईमानदारी के कारण अपने सामाजिक दृष्टिकोण को छोड़ नहीं सकते थे। ऐसी परिस्थिति में आपने अपने पिता के सन्तोष के लिए शहर छोड़ कर बाहर चले जाने तक की तैयारी की। आपका यह कदम रामायण के राम के, अपने पिता के वचन-पालन के लिए, वन-वास का जीवन स्वीकृत करने जैसा ही था और आपने यह सब अपने पिता के प्रति पूरे आदर-भाव के साथ किया। आपने न तो कोई मनो-मालिन्य प्रकट किया और न किसी से कोई शिकायत की।

पिता के सन्तोष और अपने कर्त्तव्य-पालन की दृष्टि से आपने अपने घर-बार को, पत्नी और बच्चे को, सामाजिक क्षेत्र के साथियों को, और स्थानीय कार्य-क्षेत्र को छोड़ कर सैंकड़ों मील दूर, समुद्र पार, जाने की ठान ली। अपनी डायरी में आपने इस सम्बन्ध में कोई शिकायत दर्ज नहीं की और जब पिता ने अपने पुत्र-वात्सल्य के कारण आपको जाने से रोक लिया तो बिना किसी शिकायत के, आप ब्रह्मा जा रहे अपने जहाज को छोड़ कर लौट भी आए। आपने इतना ही कहा,—"लाला जी की आज्ञा से गया था, उनकी आज्ञा से लौट आया हूं.....।"

अपने सामाजिक कार्यों के लिए भी बाहर जाने से पहले आप सदा अपने पिता की अनुमति लेते थे। एक बार आपको जल्दी कहीं जाना था और पिता जी बाहर अपनी जमींदारी पर गए हुए थे तो आप उनकी अनुमति लेने के लिए वहां पहुंचे। अपने स्वभाव के विरुद्ध ज़ैलदारी के कार्य को आपने अपने पिता के सन्तोष के लिए लगभग बीस वर्ष तक निभाया।

आपने कभी अपने वचन और कृत्य से यह आभास नहीं होने दिया कि पिता और पुत्र में कोई मत-भेद था। पारस्परिक विचार-भेद को आप पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी का एक स्वाभाविक मत-भेद समझते थे, जिससे आपके पुत्रत्व के कर्त्तव्यों को कोई आघात नहीं पहुंच सकता था। अपने पिता को खुश देखने की इच्छा के बारे में आपने लिखा है।

".....अब लाला जी बिल्कुल राज़ी हैं, मेरे काम से खुश मालूम होते हैं। सच तो यह है कि लाला जी के खुश होने से ऐसी खुशी होती है जो किसी राजा महाराजा के खुश होने से भी न हो।"

आपके पिता भी आपके मानस की पवित्रता और ईमानदारी को समझ गए थे और उनको यह भी विश्वास हो गया था कि आपका सेवा-कार्य उनके वंश के आदर-सम्मान को बढ़ाने वाला ही सिद्ध होगा।

—×—

: 16 :

शरीर-श्रम का शौक

सदा से दुनिया में दो विचार-धाराएं चली आई हैं। एक विचार-धारा महर्षियों की, सन्तों की और पैगम्बरों की है, जिसके अनुसार हर एक मनुष्य को अपने जीवन-यापन के लिए शरीर-श्रम करते हुए, दस नाखुनों की कमाई करते हुए और उस कमाई के आधार पर सरल और सादा जीवन गुजारते हुए, भगवत् भक्ति और आत्म-साक्षात्कार के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए। दूसरी विचार-धारा सफेद-पोशी के जीवन की है, जिसके मानने वाले दूसरों के शरीर-श्रम पर जीते हुए आराम-तलबी और बड़प्पन का जीवन गुजारना चाहते हैं। दूसरी विचार-धारा ने समाज में शोषण को स्थान दिया है और पहली विचार-धारा एक सुखी और सन्तुष्ट समाज की बुनियाद है।

हमारे देश की संस्कृति में शरीर-श्रम के लिए आदर का स्थान रहा है। ऋषियों के आश्रमों में कृष्ण जैसे राजकुमार भी सुदामा जैसे सामान्य विद्यार्थियों के साथ मिल कर, आश्रम की गौएं चराते थे और जंगल से लकड़ियां काट कर लाते थे। बाद में कभी शरीर-श्रम के प्रति यह आदर कम हो गया और शरीर-श्रम करने वालों को समाज में नीचा स्थान दिया जाने लगा। जितना ही अधिक और सख्त किसी का काम, उतना ही उसका समाज में नीचा स्थान, ऐसा मान्य हो गया। इसी आधार पर जात-पात की ऊंच-नीच का भाव पैदा हो गया।

अंग्रेज़ी राज्य की शिक्षा ने भी सफेद-पोशी के जीवन के प्रति आकर्षण को बढ़ा दिया। नौकरी करना, सफेद-पोशी का जीवन गुज़ारना और शरीर-श्रम से, जिस्मानी मेहनत से, बचना ही पढ़े-लिखे युवकों का जीवन, उद्देश्य बन गया। जब तक थोड़े लोग पढ़ते-लिखते थे, तब तक तो यह उद्देश्य पूरा होना सम्भव था। परन्तु सारे देश के बच्चों को सुशिक्षित करने का प्रश्न हो और पढ़-लिख कर शरीर-श्रम से बचने की भावना मन में रहे, तो राष्ट्र के भूखा और नंगा रहने की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। शरीर की आवश्यकताएं तो मनुष्य के श्रम से, उसकी मेहनत से ही पूरी हो सकती हैं।

आज के भारत की शरीर-श्रम से बचने की वृत्ति को बदलने के लिए ही गांधी

जी ने अपने आश्रम के व्रतों में शरीर-श्रम को एक व्रत स्वीकृत किया। आज की हमारी शिक्षा का सबसे बड़ा दोष यही है कि युवक-युवतियों का लक्ष्य नौकरी और सफेद-पोशी की जिन्दगी रहता है।

हमारे कथा-नायक के जीवन में स्वभावतः शरीर-श्रम के प्रति आदर था। जब आप अपनी शिक्षा समाप्त करके गृहस्थ का जीवन गुजारने लगे, तो पिता ने आपको अपने घर के काम-काज में लगा लिया। घर में सम्पन्नता थी और आप सफेद-पोशी का जीवन गुजारते हुए, दूसरों के काम-काज की देख-रेख तक सीमित रह सकते थे। उस समय ज्यादा काम-काज तो आपके पिता और बड़े भाई के हाथों में था। परन्तु उस समय आपने अपनी जमीनों पर स्वयं काम करके, स्वयं हल चला कर, खेतों को पानी देकर, फसलें काट कर, शरीर-श्रम के जीवन में आनन्द माना। बहुत प्रातः उठने की आदत आपके स्वभाव में थी ही। प्रातः उठ कर अपनी जमीनों पर जाकर काम-काज करने का आपको शौक था। आपने लिखा है—

".....इसमें कोई शक नहीं कि लोग मुझ को हाथ में कुदाल लिए, आड़ बनाते देखकर जरूर हंसते होंगे। मगर जमींदारी के काम में इसमें शर्म क्या? मेरी राय में तो जमींदारी के काम से मेरी सभ्यता, उन्नति और सज्जनता में कोई फर्क नहीं आता, बल्कि नौकरों और दूसरे लोगों को भी काम की ओर रुझान होता है.....।"

शरीर-श्रम की यह आदत आपके सार्वजनिक कार्य में भी आपके साथ रही। आर्य समाज का काम करते हुए आपको चपरासी तक का काम करने से कभी लज्जा महसूस नहीं हुई। 1884 में जब जालन्धर का आर्य समाज मन्दिर बना तो आपने इसके लिए अपने सिर पर ईंटें ढोईं। आर्य समाज के उत्सव पर खम्भे आदि गाड़ने का काम आप स्वयं कर लेते थे। कन्या महाविद्यालय की इमारतों के बनने में और बाग-बगीचे लगने में आपके अपने हाथ का श्रम भी लगा है।

दूसरे देशों के बड़े-बड़े आदमी शरीर-श्रम का शौक रखते हैं। गांधी जी की प्रसिद्ध अंग्रेज़ी शिष्या मीरा बहिन के पिता अंग्रेज़ी जल-सेना में एडमीरल थे परन्तु उनका शौक का काम (हाब्बी) तरखान का काम था। जब छुट्टी पर आते और घर पर रहते तो परिवार के लिए मेज़-कुर्सियां आदि चीज़ें बना जाते थे।

शरीर-श्रम और मेहनत ही से देशों का निर्माण होता है।

: 17 :

डायरी लिखने की आदत

आपके पिता, लाला सालिगराम, एक कारोबारी आदमी थे। वे जेल आदि की सरकारी नौकरियों में भी रह चुके थे, जहां उन्हें अपने काम की डायरी लिखनी पड़ती थी। डायरी लिखने की वह आदत उनके कारोबार के लिए भी उपयोगी थी। इसलिए उन्होंने अपने कारोबार के समय भी इस आदत को बनाए रखा। उनकी देखा-देखी आपने भी जीवन के प्रायः आरम्भ काल से डायरी लिखने की आदत डाल ली थी, जो बहुत लम्बे समय तक जारी रही।

आपके पिता तो अपनी डायरी में अपनी जमींदारी के सम्बन्ध में, अपने साहूकारे के सम्बन्ध में, अपनी जैलदारी और आनरेरी मजिस्ट्रेटी के सम्बन्ध में, स्मरण-योग्य बातें लिखते थे ताकि कोई आवश्यक बात अमल में आने से रह न जाए, परन्तु आपने अपनी डायरी में अपने मन के विचार और अनुभव लिखने शुरू किए।

जिस प्रकार घर के खर्च का हिसाब लिखने से हमें पता रहता है कि हमारा खर्च ठीक हो रहा है या हमें अपने खर्च की मदों में क्या परिवर्तन करना चाहिए, उसी तरह अपने मन के विचारों और भावों को लिखते रहने से यह बात हमारे सामने रहती है कि हम नैतिक दृष्टि से उन्नति कर रहे हैं या अवनति। हमारे मन में जैसे विचार और भाव उठते हैं, वैसी ही हमारी मानसिक अवस्था होती है। अपनी लिखी हुई डायरी के पिछले पृष्ठों को देख कर हम यह देख सकते हैं कि हम अपने नैतिक जीवन में किस दिशा में बढ़ रहे हैं।

अपने विचारों और भावों को लिखते रहने से हम स्पष्ट रूप में अपने मानसिक जीवन का अन्दाज़ा लगा सकते हैं। हमारे मन में विचार उठते हैं, भाव पैदा होते हैं और साथ-साथ लुप्त होते रहते हैं। हमें यह अन्दाज़ा भी नहीं होता कि हमारा मन कैसे विचारों और भावों का उत्पत्ति-स्थान है। अपने दैनिक जीवन की और चिंतन की डायरी लिखने से हमें अपने बारे में ज्ञान रहता है और हम सावधान रहते हैं।

आपकी लिखी डायरियों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्यार्थी जीवन

ही से आपके अन्तःकरण में दैवी सम्पत्ति का, अच्छी वृत्तियों का निवास था, आपके हृदय में देश और जाति के लिए एक दर्द था, सच्चाई और नेकी के लिए एक तड़प थी। आप अपने जीवन को एक अच्छा और उपयोगी जीवन बनाना चाहते थे।

आपकी डायरी के अध्ययन से मालूम होता है कि आपने समय-समय पर अपने लिए 'मिस्टर लिबर्टी', 'सत्य प्रकाश' और 'स्वयं प्रकाश' आदि नामों को पसन्द किया, जिससे आपके उस समय के भावों का पता लगता है।

कई दफा किसी महापुरुष के साथ रहने वाला श्रद्धालु भक्त अपने श्रद्धास्थान महापुरुष के जीवन की ऐसी डायरी लिख जाता है जो विश्व के लिए एक महान् देन बन जाती है। दुनिया की ऐसी, शायद सबसे महत्त्वपूर्ण देन 'महादेव भाई की डायरी' है। महादेव भाई 1917 में, गांधी जी के भारत में स्थिर होने से कुछ ही समय बाद उनके प्राईवेट सैक्रेटरी के रूप में उनके पास आ गए थे। उसी समय से लेकर 1942 में, आगा खां महल की नज़रबन्दी में हुई अपनी मृत्यु तक, वे गांधी जी के दैनिक कार्यों, साधनाओं, वचनों और विचारों के बारे में नियमित रूप से लिखते रहे, जिससे चालीस पचास भागों में प्रकाशित हो रही एक ऐसी पुस्तक तैयार हो गई जो विश्व की एक अद्भुत कृति है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि डायरी लिखने की आदत जहां अपने विकास की दृष्टि से उपयोगी है, वहां इससे अपने समय की गति-विधियों का रिकार्ड भी बन जाता हैं, जो आने वाले लोगों के ऐतिहासिक ज्ञान के लिए भी उपयोगी है।

—X—

: 18 :

स्वभाव से एक लेखक

लिखना आपके स्वभाव में था। अपने विद्यार्थी जीवन ही में, जैसे आपने अपने सहपाठियों को सभाओं के रूप में संगठित करके उनके सामने सामाजिक और राष्ट्रीय विषयों पर अपने विचार प्रकट करने का अभ्यास आरम्भ किया, वैसे ही अपनी डायरी में अपने विचारों को लेख-बद्ध करने का भी सिलसिला शुरू किया। विद्यार्थी जीवन में हम अपनी प्रतिभाओं को विकसित करने का अभ्यास कर सकते हैं। बहुधा हमारे अन्दर कोई न कोई प्रतिभा होती है परन्तु विकास के अवसर न पा सकने के कारण प्रसुप्त ही रह जाती है।

जैसे-जैसे आप समाज-सेवा के क्षेत्र में आगे बढ़े, आपकी वक्तृता-शक्ति का विकास तो हुआ ही, साथ ही आपने अपनी लिखने की शक्ति का भी विकास किया। उस समय, देश के उस नव-जागरण-काल में, छोटी पत्रिकाएं निकलने लगी थीं। उन पत्रिकाओं में आप अपने लेख भेजते थे। उसी आरम्भिक-काल में आपने एक छोटी सी पत्रिका का सम्पादन-कार्य भी किया।

आर्य समाज के क्षेत्र में आने पर आपकी दोनों शक्तियों का, वक्तृता की शक्ति का तथा लिखने की शक्ति का निरन्तर विकास होता गया। जालन्धर से 'सद्धर्म-प्रचारक' नाम की प्रसिद्ध धार्मिक पत्रिका निकाली गई तो आपने उसमें लेख लिखना शुरू किया और बाद में उसका सम्पादन भी किया। कन्या महाविद्यालय की स्थापना के बाद संस्था की छात्राओं में लिखने की कला के विकास के लिए पत्रिकाएं निकाली गईं, जिन का सम्पादन आपके नेतृत्व में होता था। 'पांचाल-पंडिता', 'भारती' और 'जल-विद-सखा' ऐसी ही पत्रिकाएं थीं।

उस समय कन्या पाठशालाओं के लिए उचित ढंग की पाठ्य-पुस्तकों का प्राय: अभाव था। उस अभाव की पूर्ति भी आपकी कलम के द्वारा हुई। आपने कन्याओं के लिए पाठ्य-पुस्तकें लिखीं, गीत लिखे, कविताएं लिखीं और इस तरह अपनी कलम का सदुपयोग करके बाल-साहित्य के अभाव की पूर्ति की।

आपकी इस साहित्य सेवा के फलस्वरूप आपको 1933 में, जम्मू में हुए

प्रान्तीय 'हिन्दी साहित्य-सम्मेलन' का सभापति चुना गया। उसमें आपने कहा था——

".....मैंने उस समय हिन्दी की तुच्छ सेवा की थी, जब यहां कोई हिन्दी का नाम भी नहीं जानता था। स्त्री-शिक्षा से अवश्य मेरा पुराना सम्बन्ध है.....।"

उस समय देश में प्रचलित हिन्दी-उर्दू विवाद के बारे में आपने अपने भाषण में कहा था—

".....उर्दू और हिन्दी में, कुछ शब्दों के हेर फेर को छोड़ कर, कोई विशेष अन्तर नहीं है। दोनों का व्याकरण एक ही है। यदि दोनों की लिपि एक ही होती, तो उनके अलग-अलग नाम होने पर भी दोनों में नाम मात्र का भेद होता.....।"

हिन्दी के स्वरूप के बारे में चर्चा करते हुए आपने अपने भाषण में कहा था—

".....हिन्दी सरल सहज और वोलचाल की भाषा होनी चाहिए। हिन्दी और उर्दू में कुछ भी अन्तर नहीं रहना चाहिए। यदि हम भाषा के भेद को मिटाने में सफल हो गए, तो एक दिन लिपि का भेद भी मिट जाएगा।"

आपका रचित साहित्य आपकी भाषा सम्बन्धी इन्हीं धारणाओं का मूर्त रूप हैं। आपकी सभी पुस्तकें सरल और सहज भाषा में हैं और उनमें ऊंचे राष्ट्रीय भावों की अभिव्यक्ति हुई है। ऐसा बाल-साहित्य आपके जीवन की एक बड़ी साधना का फल है।

जब भी कभी आपको पर्वतों आदि स्थानों पर एकान्त सेवन का अवसर मिलता था, आप वहां से अपनी कन्याओं के लिए अपनी कोई ताज़ा कृति सौग़ात के रूप में लाते थे। आपकी 'सन्तवाणी' नाम की प्रसिद्ध कृति ऐसी ही सौग़ात थी।

आपकी इस साहित्य-सेवा के लिए आपको पंजाब-सरकार की ओर से पुरस्कृत भी किया गया। इसके अतिरिक्त आपकी रचित कन्या-शिक्षा की पाठ्य-पुस्तकें अपने विद्यालय के अतिरिक्त बहुत से अन्य कन्या विद्यालयों में भी पाठ्य-पुस्तकें लगी रहीं।

—X—

: 19 :

पंजाब की एक अन्य समानान्तर सेवा-साधना

19वीं शताब्दी का अन्तिम चरण हमारे देश में विशेष रूप में नव-जागरण का काल था। जैसे कि पहले कहा जा चुका है इस चरण में भारत के इस उत्तर-पश्चिमी प्रदेश, पंजाब में स्वामी दयानन्द सरस्वती के आगमन तथा प्रचार-कार्य से और आर्य समाज की स्थापना से एक सर्वतोमुखी चेतना पैदा हुई। समय बीतने के साथ इस चेतना के कई रूप सामने आए। जिस प्रकार यह चेतना जालन्धर में आर्य समाज द्वारा कन्या विद्यालय की स्थापना के रूप में प्रकट हुई, उसी प्रकार लगभग उसी समय यह चेतना पंजाब के शहर फिरोजपुर में 'सिक्ख कन्या महाविद्यालय' के रूप में सामने आई। जिस प्रकार जालन्धर में लाला देवराज ने इस क्रान्तिकारी काम के लिए अपना सर्वस्व लगा देने का निश्चय कर लिया, उसी प्रकार फिरोजपुर में भाई तख्तसिंह ने इस काम के लिए अपने आपको समर्पित कर दिया।

लुधयाना ज़िला के एक सामान्य निहंग जाट वंश में पैदा होकर और बहुत साधारण पंजाबी शिक्षा-दीक्षा पाकर आपने भी, लाला देवराज जी की तरह, चढ़ती जवानी में स्त्री-शिक्षा के नाजुक कार्य को उठाया! लाला जी की तरह भाई जी ने भी अपनी पत्नी को और बाद में अपने बच्चों को भी अपने जीवन के कार्य के लिए तैयार किया।

भाइ तख्तसिंह धार्मिक वृत्ति के संवेदनाशील युवक के रूप में लाहौर के ओरिएंटल कालिज में पंजाबी की अपनी परीक्षा के लिए पढ़ते थे, जब उस समय के प्रसिद्ध विद्वान् ज्ञानी दित्त सिंह की कलास में पढ़ते हुए आपने अपने जीवन के कार्य को चुन लिया। एक दिन पढ़ाते-पढ़ाते ज्ञानी दित्तसिंह ने पुस्तक में आए 'अबला' शब्द की मार्मिक व्याख्या करते हुए, जब अंत में हार्दिक वेदना के साथ कहा कि....."कभी कोई इन अबलाओं का उत्थान करने वाला भी निकलेगा", तो ज्ञानी जी की संवेदना से प्रभावित होकर, आपने उठ कर कह दिया,....."मैं इस काम को उठाऊंगा।" आचार्य ने अपने भावना-शील शिष्य की भावना का स्वागत किया, परन्तु साथ ही कार्य की गम्भीरता की ओर संकेत करते हुए, उसे सावधान भी किया, तो भी आपने दोबारा उठकर अपने शब्दों को दोहराया।

उस समय शायद न ज्ञानी जी को और न आपको यह कल्पना होगी कि वे शब्द स्वयं भगवान की प्रेरणा से निकले थे और सार्थक होने वाले थे।

अपनी उस सामान्य शिक्षा के बाद आपने फिरोजपुर में सिंघ-सभा की सहायता से, एक कन्या पाठशाला की, लगभग उसी समय स्थापना की, जब जालन्धर में कन्या महाविद्यालय की स्थापना हुई। दोनों संस्थाओं के सामने एक जैसी विकट परिस्थितियां थीं, परन्तु दोनों संस्थाओं के संस्थापक पक्की मिट्टी के बने हुए थे, निराश होने का नाम नहीं जानते थे। दोनों संस्थाओं ने समानान्तर रूप में आगे से आगे प्रगति की। जालन्धर की संस्था को आर्य-समाज तथा वैदिक साहित्य से प्रेरणा मिलती थी, तो फिरोजपुर की संस्था को 'सिंघ-सभा' और गुरु घर के साहित्य से। दोनों संस्थाओं ने लगभग एक ही समय में अपने विद्यालयों के साथ छात्रावास स्थापित किए और दूर-दूर की कन्याओं को शिक्षा के लिए जमा किया। दोनों संस्थाओं के संस्थापक मातृ-हृदय लेकर पैदा हुए थे और शायद तभी अपने महान् परन्तु नाजुक कार्य में सफल हुए।

19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में और बीसवीं शताब्दी में एक लम्बे समय तक, ये दोनों संस्थाएं न केवल पंजाब की, बल्कि भारत से बाहिर बसने वाले पंजाबियों की कन्याओं की शिक्षा के तेजस्वी केन्द्र रहे। दोनों संस्थाओं की बहुत सी छात्राओं ने अपनी शिक्षा-दीक्षा के पश्चात् भिन्न-भिन्न स्थानों पर शिक्षा-प्रसार का कार्य किया।

दोनों संस्थाओं के संस्थापक एक लम्बे जीवन तक अपनी सेवा-साधना में रत रह कर, लगभग एक ही समय में अपने आंचलों को स्वच्छ और निर्मल लेकर दिवंगत हुए।

—X—

: 20 :

समग्र-स्त्री जीवन के निर्माता

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है कि आपके हृदय में भारतीय स्त्री के जीवन के उद्धार और पुनर्निर्माण की एक लगन थी, जो जन्म-जात भी थी और जिसका पोषण माता के प्रेरणा-मय जीवन से भी हुआ था। बहुत से महापुरुषों के जीवन के निर्माण में उनकी माताओं की विशेष प्रेरणा रही है। आधुनिक भारत के निर्माताओं में से गांधी जी और विनोबा जी पर अपनी माताओं का विशेष प्रभाव पड़ा है। इन दोनों महापुरुषों ने अपनी आध्यात्मिक भावनाओं के विकास में अपनी माताओं से विशेष प्रेरणा पाई है और दोनों ने अपने उस मातृ-ऋण को चुकाने के लिए स्त्री-जाति के उद्धार और जागरण के लिए विशेष प्रयत्न किया है। गांधी जी ने देश की स्त्री में पुरुष के बराबर, बल्कि पुरुष से बढ़ कर, उत्साह और साहस का संचार किया, शराब के ठेकों पर पिकटिंग के खतरनाक कार्य तक के लिए स्त्रियों को चुना और विनोबा जी ने अपने 'ब्रह्म-विद्या-मन्दिर' आश्रम को स्त्रियों में ब्रह्म-विद्या का संचार करने के लिए साधना केन्द्र बनाया। इन्हीं महापुरुषों की तरह हमारे कथानायक के जीवन पर भी माता के आध्यात्मिक जीवन का विशेष प्रभाव पड़ा था और आपने भी उस ऋण के बदले में अपना जीवन स्त्री-जाति के उद्धार और जागरण में लगा दिया।

स्थानीय कन्याओं की शिक्षा के लिए एक विद्यालय स्थापित कर देने मात्र से आप को सन्तोष नहीं हुआ। जीवन का ठीक विकास तो आश्रम-जीवन ही में हो सकता है। विद्यालय की स्थापना के दो चार ही वर्ष बाद आपने कन्याओं के लिए छात्रावास या आश्रम का भी प्रबन्ध कर दिया, ताकि एक विशेष वातावरण में कन्याओं के जीवन का पूरा विकास हो सके।

उस जमाने में बाल-विवाह के रिवाज के कारण बाल-विधवाओं की एक बड़ी समस्या थी। जिस आठ-दस वर्ष की बच्ची को अभी गृहस्थ आश्रम की कल्पना भी नहीं होती थी, वही विवाह नाम की एक प्रचलित रसम के अदा हो चुकने के कारण विधवा और जीवन भर के लिए निराश्रय और दयनीय मान ली जाती थी। ऐसी

बाल विधवाओं के लिए आपने, विद्यालय की स्थापना के कुछ ही वर्ष बाद, विधवा-आश्रम की स्थापना कर दी, जहां उन बहनों की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध था।

राजस्थान आदि प्रदेशों के दुर्भिक्ष-पीड़ित स्थानों से ऐसी अनाथ कन्याओं को अनुचित हाथों में पड़ जाने से बचाया और लाया जाता था। इस दिशा में आर्य समाज ने बहुत कार्य किया था। ऐसी अनाथ कन्याओं के पालन और शिक्षण के लिए आपने एक अनाथालय भी स्थापित कर लिया था।

प्रौढ़ स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा के लिए आपने प्रौढ़ शिक्षा का भी प्रबन्ध किया था, जिसमें प्रायः सब उम्रों की स्त्रियों को शिक्षा उपलब्ध थी।

आपके साथ लगभग बारह तेरह वर्षों और आपके बाद लगभग 30 वर्ष तक, विद्यालय की आचार्या के रूप में कार्य करने वाली कु० लज्जावती बताती हैं कि उनके साथ बातचीत में आपने एक बार जिक्र किया था कि आपने वेश्या-वृत्ति करने वाली स्त्रियों के उद्धार के लिए एक अलग आश्रम स्थापित करने के लिए भी जमीन खरीदी हुई थी, जिस जमीन की जानकारी प्रबन्धकर्तृ सभा को भी नहीं थी और जो जमीन आपकी मृत्यु के बहुत बाद, ज़मीनों के इस्तेमाल के समय निकली और विद्यालय को मिली।

इस प्रकार आपका ध्यान स्त्री-जाति के जीवन के हर पहलू की तरफ था और आप देश की स्त्री के जीवन के हर पहलू को उज्ज्वल देखना चाहते थे। प्राचीन भारतीय साहित्य में वर्णित प्रसिद्ध स्त्री-चरित्रों को लक्ष्य रख कर आप वर्तमान भारतीय स्त्री को भी उसी स्थान तक पहुंचाना चाहते थे।

उस समय स्त्री-शिक्षा का कार्य लड़कों की शिक्षा के समान उपयोगी मालूम नहीं होता था और इसके इलावा घर की चार-दीवारी में रहने और सेवा कार्य करने वाली स्त्री को एक नए प्रबुद्ध जीवन के लिए तैयार करना अच्छे-अच्छे समाज-सुधारकों को भी अनुपयोगी मालूम होता था। परन्तु आप जानते थे और कहते भी थे कि माताओं के सुशिक्षित और प्रबुद्ध होने से देश जितनी जल्दी उन्नति करेगा, उतनी जल्दी कदाचित केवल पुरुषों की शिक्षा से नहीं कर सकेगा। इसीलिए आप पूरे मन से स्त्री के जीवनोद्धार में संलग्न रहे।

: 21 :

विचार-क्रांति के ग्रनथक यात्री

आपके जीवन-कार्य के दो मुख्य पहलू थे, एक तो स्त्री को सुशिक्षित और प्रबुद्ध बनाना और दूसरे समाज में प्रचलित स्त्री-जीवन की हीनता के भाव का निराकरण करना। जैसे कि पहले कहा जा चुका है, उस समय अच्छे अच्छे प्रगतिशील लोग भी स्त्री को पुरुष के बराबर सुशिक्षित और प्रबुद्ध बनाने के पक्ष में नहीं थे। जनता की इस मनोवृत्ति को दूर करने के लिए आप समाज को दिखा देना चाहते थे कि पुरुष भले ही स्त्री को हीन मानते चले आए हों, परन्तु वास्तव में वह भाव गलत और धर्म-विरुद्ध था।

अपने विद्यालय में शिक्षा दीक्षा ग्रहण करके जागृति पथ पर अग्रसर हो रही अपनी छात्राओं को आप इस मानस-क्रांति के लिए भी माध्यम बनाना चाहते थे। आप की छात्राएं अपने विशेष पीली धोतियों के वेश में स्थानीय आर्य-समाज के साप्ताहिक सत्संगों और विशेष समारोहों में, शामिल होने के लिए पंक्ति-बद्ध रूप में जाती थीं, तो उस दृश्य का दर्शकों के मानस पर एक प्रभाव पड़ता था। इसके अतिरिक्त आप अपनी छात्राओं को न केवल स्थानीय आर्य समाज के मंच पर भजन गाने और बोलने के लिए खड़ा करते थे बल्कि बाहर की आर्य समाजों में भी ले जा कर उनकी प्रतिभा का प्रदर्शन करते थे। आपके लिए यह लोक-शिक्षण का एक तरीका था।

आपको यात्रा का शौक था और आप अक्सर अपनी यात्राओं को अपने इस लोक-शिक्षण का माध्यम बनाते थे। ज़िला होशियारपुर के कस्बा हरियाना की माई भगवती कन्या-पाठशाला के वार्षिक उत्सव पर आप अपने साथ कन्याओं को भी लेकर जाते थे। कांगड़ा और बैजनाथ में आपके परिवार के चाय के बाग थे। गर्मियों में आप वहां जाते तो अपने साथ अपनी कुछ छात्राओं को भी उसी तरह ले जाते थे जिस तरह कोई अपने बच्चों को ले जाता है। आपने अपनी छात्राओं को अपने घर के बच्चों से अलग नहीं माना था। जैसे कि कहा जा चुका है, इसमें आपकी माता और पत्नी की भी पूरी अनुकूलता थी।

इन छोटी-छोटी यात्राओं के अतिरिक्त आपने कई लम्बी-लम्बी भारत-दर्शन की यात्राएं भी कीं। कुछ यात्राओं में आप बम्बई, पूना और दक्षिण में दूर तक गए, कुछ यात्राएं पूर्व दिशा में उत्तर-प्रदेश से होकर कलकत्ता तक कीं और कुछ यात्राएं राजस्थान के प्रसिद्ध ऐतिहासिक वीर-पुरुषों के क्रीड़ा-स्थलों के दर्शन के लिए कीं। अपनी छात्राओं के साथ रियासत झालावाड़, रियासत देवास और रियासत उदयपुर में गए। वहां के राजाओं ने आपका और आपकी कन्याओं का हार्दिक स्वागत किया, आप की संस्थाओं की आर्थिक सहायता भी की और आपके प्रभाव की प्रशंसा की। सामान्यतः आपके कार्यक्रम स्थानीय आर्य समाज के प्रबन्ध में होते थे। इन कार्यक्रमों में आपकी कन्याएं वेदमंत्रों का पाठ और भजन-गान करती थीं, कभी-कभी वक्तृता भी करती थीं। तत्पश्चात् आप स्त्री-शक्ति पर व्याख्यान देते थे। प्रसिद्ध बड़ौदा रियासत में स्वयं महाराजा बड़ौदा ने आपके कार्यक्रम की अध्यक्षता की। आपकी छात्राएं राजमहल में महारानी से मिलने भी गईं। कलकत्ता में विश्व विद्यालय के प्रसिद्ध वाइस चान्सलर सर आशुतोष मुकरजी और प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता विपिनचन्द्र पाल ने आप के कार्य की प्रशंसा करते हुए कहा था—

"……वास्तविक राष्ट्रीय शिक्षा का कार्य तो आप ही कर रहे हैं।"

आपकी इन लम्बी यात्राओं में सामान्यतः आपकी धर्मपत्नी या पुत्रबधू साथ होती थीं ताकि कन्याओं को किसी प्रकार की असुविधा न हो। इस तरह की यात्राओं से आपकी छात्राओं का स्टेज पर बोलने का उत्साह बढ़ता था। इन्हीं यात्राओं में आपकी छात्राओं ने ट्रेनिंग लेकर आगे स्वयं, बिना आपके भी, अफ्रीका और बर्मा तक धन संग्रह के लिए यात्राएं कीं।

इस प्रकार जहां आपका कार्य अपने कार्य-केन्द्र, जालन्धर में, कन्याओं की जीवन शक्तियों का विकास करना था, वहां साथ ही, प्रदेशीय तथा भारतीय स्तर पर स्त्री-शक्ति जागरण के लिए प्रदर्शन करना, मानो जलूस निकालना भी था। आपकी इन यात्राओं से जहां स्त्री-जागरण के पक्ष में वातावरण बनता था, वहां आपके यात्रा-स्थानों के लोगों को अपनी कन्याओं को आपकी संस्था में भेजने की प्रेरणा भी मिलती थी। इन यात्राओं ही का परिणाम था कि विशाल पंजाब प्रदेश के इलावा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, बंगाल, बर्मा, और अफ्रीका से कन्याएं आपके विद्यालय में पढ़ने के लिए आती थीं।

इस समय वास्तव में स्त्री-शिक्षा और स्त्री-शक्ति-जागरण के क्षेत्र में आपकी संस्था एक अद्वितीय संस्था थी। आपकी संस्था की छात्राओं का भारत-कोकिला सरोजनी नायडू तक पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा था। 1915 में अपनी एक ऐसी ही बम्बई की यात्रा के दौरान आपने और आपकी कन्याओं ने बम्बई में उनसे मिल कर उन्हें विद्यालय में पधारने का निमन्त्रण दिया था, जिसके अनुसार वे संस्था में पधारीं और बाद में भी एक से अधिक बार आईं।

—×—

: 22 :

चाचा जी

किसी बच्चे को जो नाम मां-बाप देते हैं, उसमें बच्चे की रुचि का या उसके आगे के विकसित होने वाले व्यक्तित्व का कोई आभास नहीं होता, वह नाम तो माँ-बाप की रुचि या इच्छा का द्योतक होता है। बड़े होने पर बहुधा हम अपने लिए अपनी रुचि का नाम भी चुनते हैं, जैसे कि हमारे कथा-नायक ने अपने लिए 'सत्य प्रकाश' 'स्वयं प्रकाश' आदि नाम चुने। आपके चुने इस नामों से यह आभास मिलता है कि आपको सत्य के प्रति श्रद्धा थी या आप 'प्रकाश' फैलाना चाहते थे। ये दोनों बातें आप के लिए सार्थक सिद्ध हुई।

परन्तु हमें कुछ ऐसे नाम भी मिल जाते हैं, जो हमारे चरित्र को बहुत अच्छी प्रकार व्यक्त करते हैं। आपका 'चाचा जी' नाम ऐसा ही था। 28-30 वर्ष की आयु में आपने कन्याओं की शिक्षा का, स्त्री-शक्ति के जागरण का, कार्य उठाया। उस समय आपको यही 'चाचा जी' नाम मिलना स्वाभाविक था। अभी आप पिता जी कहलाने की आयु को नहीं पहुंचे थे और नन्हीं-नन्हीं, पांच-पांच, छः-छः साल की कन्याओं के लिए, 'भाई' या 'भ्रा' की आयु से आगे निकल चुके थे। ऐसी अवस्था में कन्याओं की ओर से आपको 'चाचा जी' नाम मिलना ही प्रासंगिक था। 'चाचा' शब्द में प्यार और आदर की झलक तो 'पिता' शब्द जैसी ही है परन्तु इसमें भय का, संकोच का आभास नहीं है। आपने, स्वाभाविक रूप में मिले, उस नाम और सम्बोधन को सार्थक किया।

यह नहीं कि आप अपने विद्यालय की छात्राओं में नियमों के पालन की ढिलाई आने देते थे। आप स्वयं भी नियम-पालन में दृढ़ थे और ऐसी ही दृढ़ता आप अपने साथियों में और अपनी छात्राओं में विकसित करना चाहते थे। आपने लिखा है——

"……हंसी आती है, उन पर, जो स्वयं तो नियमों का पालन नहीं करते और नियमों को तोड़ने में कुछ भी संकोच नहीं करते, लेकिन दूसरों को नियम पालन न करने पर कड़े शब्द सुना कर ललकारते हैं।"

आपके अपने नियम-पालन के स्वभाव से साथियों और कन्याओं में नियम-पालन का होना स्वाभाविक था। परन्तु अपने 'चाचा जी' होने के नाते आप कन्याओं पर, विशेषत: छोटी कन्याओं पर प्यार और स्नेह की खूब बर्षा करते थे। आश्रम में रहने वाली, दूर-दूर से आईं, नन्हीं-नन्हीं कन्याओं को, यदि कठोर नियम-पालना ही सिखाया जाता और उन्हें पिता का, माता का, चाचा का प्यार और स्नेह न मिलता तो उन का दिल लगा कर रहना ही मुश्किल था। आपके प्रोत्साहन से, आश्रम में छोटी-छोटी कन्याओं की एक 'हो मंडली' विकसित हो गई थी, जो उच्च स्वर में उठाई गई, लम्बी 'हो...' की आवाज से आपके इर्द-गिर्द जमा हो जाती थी और जिसके साथ आप बच्चों की तरह खेलते और गाते थे। आपने उस मण्डली के लिए एक गाना भी तैयार कर दिया था। उन नन्हीं बच्चियों को अपने श्रद्धेय चाचा जी के साथ इस प्रकार खेलने का जो समय मिल जाता था, वह उन्हें घर की और घरवालों की याद भुला कर, दिल लगा कर रहने की शक्ति देता था।

अपने इसी 'चाचा' के प्यार के बल पर आप कन्याओं की आदतों के सुधारने में भी सफल होते थे। यदि कोई कन्याएं आपस में नाराज़ हो जातीं और आपकी सामान्य प्रेरणा से आपस में न बोलतीं तो आप उनसे रूठ जाते थे। आपके इस रूठने की स्थिति को कन्याएं सहन नहीं कर सकती थीं और झटपट क्षमा मांग लेती थीं।

ऐसे ही एक बार दीवाली की तैयारियां करती हुई दो छात्राएं आपस में नाराज़ हो गईं। उनमें से एक की ज्यादती थी। जब आपके कहने पर भी उसने अपनी गलती महसूस न की, तो आप यह कह कर घर चले गए कि अब मैं आश्रम नहीं आऊंगा।"

कन्याएं आपकी नाराज़गी को कैसे सहन कर सकती थी? तत्क्षण उस कन्या ने आप को निम्नलिखित आशय का पत्र लिखा—

".....चाचा जी, मेरी गलती क्षमा करें। आगे को मैं किसी लड़की को ऐसी बात नहीं कहूंगी। आप ही हमारे पिता हैं। आप यहां नहीं आएंगे, तो हम यहाँ कैसे रह सकती हैं? जब तक आप आश्रम में नहीं आयेंगे, तब तक सब कन्याएं भोजन नहीं करेंगी.....।"

पत्र को पढ़ते ही आप आश्रम में आए। आपके आने से सब खुश हो गईं। कन्याओं में नियम-पालन की भावना पैदा करने के लिए और उनकी आदतों को सुधारने के लिए चाचा जी का यह तरीका था। एक बार किसी कन्या के किसी दोष को देख कर आपने अपनी डायरी में लिखा था—

"……मेरे आत्मा में यदि यथेष्ट साधना होती तो ऐसे दोष कन्याओं में क्यों होते ? मुझे अधिक साधना करनी चाहिए।"

1935 में हुई आपकी मृत्यु के समय जिन लोगों ने कन्याओं के बिलख-बिलख कर रोने का दृश्य देखा था, वही उस स्नेह की कल्पना कर सकते हैं, जो आपके विद्यालय की कन्याओं को अपने प्यारे चाचा जी के लिए था।

—×—

: 23 :

बेदाग़ आंचल

आध्यात्मिक दृष्टि से देखें तो जीवन के सभी कार्यों का, जीवन की सभी गति-विधियों का, एक ही लक्ष्य और परिणाम है कि इन से हमारे मन की शुद्धि हो। इस दृष्टि से काम करने वाले लोग अपने काम को एक साधना मानते हैं और अपनी इस साधना से अपने मन को शुद्ध कर लेते हैं। आपने भी अपनी डायरी में बार-बार लिखा है कि "..... मैंने तो इस काम को एक साधना के रूप में आत्म-शुद्धि के लिए उठाया है।" इस दृष्टि के अनुसार काम करने वाला व्यक्ति जीवन में कभी निराश नहीं होता। कई दफा हमारे किसी कार्य का अपेक्षित परिणाम नहीं होता तो इससे हमें निराशा हो सकती है। परन्तु यदि काम से अपेक्षा ही केवल आत्म-शुद्धि की रहे और दूसरे परिणामों की ओर ध्यान न रहे, या वे परिणाम गौण रहे तो केवल अपनी आत्म-शुद्धि में सन्तुष्ट रह कर इस निराशा को प्राप्त नहीं होते।

दुनिया में सामान्य लोग तो किसी बड़े और मुश्किल काम को उठाते ही नहीं हैं। ऐसे काम को उठाने बाले कई लोग, निराश होकर, उस काम को बीच ही में छोड़ देते हैं। चंद लोग ऐसे होते हैं, जो अन्त तक अपने कार्य में लगे रहते हैं। लेकिन ऐसे लोगों की गिनती और भी कम होती है जो अपने काम से बेदाग़ आंचल लेकर निकल जाएं। आप ऐसे ही बिरले लोगों में से थे।

आपने अपनी चढ़ती जबानी में स्त्री-शिक्षा का नाजुक कार्य उठाया। एक सम्पन्न घर में पैदा होने के कारण आपके रास्ते में कई तरह के खतरे थे। परन्तु आपने अपने जीवन के आरम्भ ही से त्याग, तपस्या और सादगी का ऐसा जीवन अपनाया कि परिवार के ऐश्वर्य का आप पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ सका। आपको, अपनी माता की, लगातार संगति मिलते रहने से आपके अन्दर ऐसी किसी कुवृत्ति की परछाई तक नहीं पडी।

अपनी युवा-अवस्था से आपका सम्पर्क और सानिध्य युवती स्त्रियों से भी रहा परन्तु अपनी आध्यात्मिक दृष्टि के कारण आपने यौवन और सौन्दर्य में भगवत्-दर्शन करना सीख लिया था। राम कृष्ण परमहंस की तरह एक बनी ठनी वैश्या तक को देख कर अवश्य आप भी कह सकते होंगे, "..... माता, आज तुमने यह क्या रूप धारण

किया है ! तुम्हारा यह रूप मुझ पसन्द नहीं है.....।" ऐसी उत्कट साधना ही के बल पर आप अपने नाजुक काम में निश्चल टिके रहे ।

अवश्य ही आपने ब्रह्मचर्य की साधना के इस उदात्त पहलू के साथ उस साधना के दूसरे पहलू पर मानव शरीर की तुच्छता और वास्तविकता के साक्षात्कार के पहलू पर भी ध्यान दिया था । अपने विधवा-आश्रम में प्रविष्ट हुई एक युवती विधवा के शरीर शृंगार के प्रति आकर्षण को देख कर आपने उसे समझाते हुए कहा था.....।"

".....तुम अपने मन में एक तो मृत शरीर का और दूसरे एक कोढ़ी के शरीर का चिंतन और मनन किया करो ।"

आत्मा की सुन्दरता और शरीर की तुच्छता का साक्षात्कार करने वाला पुरुष ही स्त्री-शिक्षा जैसे नाजुक काम में निश्चल रह सकता है ।

आपके कार्य के आरम्भ काल में आपकी भरी जवानी में, आपके कुछ ईर्ष्यालु साथियों ने आप पर ये इलजाम तो लगाए कि आप विद्यालय के सर्वेसर्वा बनना चाहते थे और विद्यालय को अपने परिवार की संस्था बनाना चाहते थे, परन्तु किसी ने कभी आपके चरित्र पर उंगली नहीं उठाई । आपका यही ऊंचा और शुद्ध चरित्र था, जिसके बल पर कन्याओं के माता-पिताओं ने अपनी सन्तानों को आपके सपुर्द कर दिया ।

बाह्य सावधानता के लिए आपने अपना वेश सदा बहुत सादा और सात्विक रखा । स्वदेशी का आपका व्रत तो आर्य समाज में आने के साथ ही और शायद, इससे भी पहले विद्यार्थी काल ही से शुरू हो गया था, परन्तु 1920-21 में गांधी जी के आन्दोलन के साथ ही आपने शुद्ध सफेद खादी का वेश अपना लिया । आपने शुद्ध खान-पान, सादा और शुद्ध वेश, शुद्ध रहन-सहन और आध्यात्मिक चिंतन और मनन के फलस्वरूप आप सदा आचरण के एक ऊंचे धरातल पर रहे ।

आपके इस आध्यात्मिक चिंतन और ऊंचे चरित्र बल का प्रभाव था कि आपके पुरुष साथी और पुरुष अध्यापक भी उसी सांचे में ढल गए थे । संस्था के इतिहास में, इस संस्था के इतिहास में, जिसमें सैंकड़ों सुन्दर युवती लड़कियां रहती और शिक्षा प्राप्त करती हों, कभी किसी उग्र अशोभनीय घटना का न होना, आपके चरित्र बल का और आपकी पीछे छोड़ी चरित्र-बल की विरासत ही का परिणाम है ।

आपने, अपनी चढ़ती जवानी से आरम्भ करके, लगभग पैंतालीस वर्ष तक स्त्री-शिक्षा और स्त्री-शक्ति-जागरण का कार्य किया, परन्तु आपकी सफेद चादर पर एक भी दाग़ नहीं है । ऐसा जीवन ही धन्य जीवन है ।

तभी जिंदगी यह सफल जिंदगी है,
रहे अगर बेदाग आंचल हमारा ।

—X—

खण्ड–III

उत्तर-पश्चिमी भारत

में

स्त्री-शक्ति-जागरण का

मूर्त-रूप

कन्या महाविद्यालय, जालन्धर नगर

जालन्धर कोई ऐतिहासिक स्थान नहीं है, लेकिन कन्या महाविद्यालय ने इसे देश भर में मशहूर कर दिया है। स्त्री-शिक्षा के बारे में महाविद्यालय सराहनीय और अनुकरणीय काम कर रहा है।

11, अक्तूबर 1916

सर माइकेल ओडवायर
(पंजाब के लैफ्टिनेण्ट गवर्नर)

जब भी कभी मैं जालन्धर जाती हूं, कन्या महाविद्यालय को देखे बिना रह नहीं सकती।.....छात्राओं का यह सुन्दर उद्यान है। यहां मस्तिष्कों और आत्माओं का विकास हो रहा है। सब ओर सहयोग और माधुर्य का वातावरण है.....

2, नवम्बर 1925

सरोजिनी नायडू
(प्रधान-इण्डियन नैशनल कांग्रेस)

: 1 :

परिस्थितियां

शताब्दियों से, लगभग एक हज़ार वर्षों से, पतनोन्मुख भारत, अंग्रेज़ी राज्य के स्थापित होने तक पतन की निम्नतम तह तक पहुंच चुका था। पराधीनता की शताब्दियों ने भारत की आत्मा की चेतना पर जड़ता के परदे डाल दिए थे। जीवन में उत्साह नहीं रह गया था, सब ओर निराशा का वातावरण था।

देश की उस सर्वांगीण जड़ता की शिकार सबसे अधिक देश की स्त्री हुई थी। हमारे समाज में, और दुनिया के सारे मानव-समाज में, स्त्री का स्थान पुरुष से नीचा रहा है। उस सामाजिक पतन के युग में स्त्री का स्थान क्या होगा, यह कल्पना की जा सकती है।

अंग्रेज़ी राज भले ही देश की पराधीनता का काल था, परन्तु इस काल में देश के मस्तिष्क पर पाश्चात्य विचारों का प्रभाव पड़ा, जिससे देश के जीवन पर छाई जडता को सख्त ठेस पहुंची और एक नई चेतना का आविर्भाव हुआ। विज्ञान की शक्ति पर अधिकार जमा रहे पाश्चात्य जीवन के सम्पर्क से भारतीय जीवन-सागर में भी प्रगति की तरंगें पैदा हुईं।

अंग्रेज़ी राज्य के साथ ईसाई मिशनरियों का प्रचार-कार्य बहुत बढ़ गया। राज्य की सत्ता के सहयोग से ईसाई मिशनरी जल्दी ही इस देश को ईसाइयत के रंग में रंग देने के मनसूबे बांध रहे थे। देश में ईसाई धर्म के फैलने से अंग्रेज़ी सत्ता को बल मिलता था। इसलिए राज्य-सत्ता मिशनरियों की सहायक थी। अंग्रेज़ी राज्य के जमने पर उस सरकार को अपने राज्य को चलाने के लिए ऐसे अंग्रेज़ी जानने वाले भारतीय युवकों की ज़रूरत पड़ी जो विलायत से आने वाले अंग्रेज़ों की तुलना में बहुत थोड़ा वेतन लेकर अंग्रेज़ अधिकारियों और भारतीय जनता के बीच एक कड़ी बनकर राज्य-तंत्र को सुदृढ़ बना सकें। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में अंग्रेज़ी सरकार ने ऐसी शिक्षा की योजना बनाई जिसमें अधिक ज़ोर अंग्रेज़ी भाषा पर था।

इस तरह देश में दो तरह की शिक्षा-संस्थाएं कायम होने लगीं, एक तो ईसाई मिशनरियों की संस्थाएं जिनमें ईसाई धर्म-प्रचार पर बहुत ज़ोर था, दूसरी सरकारी शिक्षण-संस्थाएं जिन में ईसाई धर्म की बजाए पाश्चात्य जीवन-पद्धति का, पाश्चात्य आदर्शों का वातावरण था। दोनों तरह की संस्थाओं का परिणाम देश के लिए एक जैसा ही था। इन संस्थाओं से निकलने वाले युवक बाहर से भले ही भारतीय दिखाई देते थे परन्तु अन्दर से पाश्चात्य संस्कृति के अंध-श्रद्धालु बन जाते थे और भारतीय भावनाओं का मज़ाक तक उड़ाते थे।

ऐसे समय में देश में कुछ महापुरुष पैदा हुए जिन्होंने देश की भारतीयता की रक्षा के लिए मार्ग प्रशस्त किया। इन महापुरुषों में एक स्वामी दयानन्द सरस्वती थे, जिनका प्रभाव उत्तर-पश्चिमी भारत में पड़ा। 1875 के आस-पास से इस प्रदेश में नव-चेतना की एक लहर पैदा हुई, जो आर्य समाज के रूप में फैलने लगी। देखते ही देखते यह नव-चेतना प्रदेश के अन्य सम्प्रदायों में भी जा पहुंची। इस नव-चेतना ने शिक्षा तथा समाज-सुधार के क्षेत्रों को विशेष रूप में प्रभावित किया।

1886 के आस-पास इस नव-चेतना ने जहां लड़कों की शिक्षा के लिए लाहौर में दयानन्द एंग्लो वैदिक स्कूल और कालिज को जन्म दिया वहां लड़कियों की शिक्षा के लिए जालन्धर में कन्या महाविद्यालय और फिरोजपुर में सिक्ख कन्या महाविद्यालय की स्थापना के लिए प्रेरणा दी। इस नई शिक्षा का उद्देश्य यह था कि देश की आधुनिक पीढ़ी को अंग्रेज़ी राज्य की परिस्थितियों के अनुरूप विषयों का शिक्षण तो मिले परन्तु उसकी भारतीय भावनाएं सुरक्षित रहें।

उस समय लड़कों की ऐसी शिक्षा तो ज़माने की मांग समझी गई, क्योंकि उसकी मदद से युवकों को सरकारी नौकरियां मिल जाती थीं, परन्तु लड़कियों के लिए ऐसी शिक्षा का बहुत विरोध था। लड़की का स्थान तो घर की चार-दीवारी में, अपने घरेलू काम-काज ही में, माना जाता था। उसे पढ़ाना न केवल एक बोझ बल्कि उच्छृंखलता का प्रेरक माना जाता था। लड़कों के ऐसे स्कूल तो बहुत तेज़ी के साथ खुलने लगे, परन्तु लड़कियों के स्कूल को चलाना एक विकट कार्य सिद्ध हुआ।

जालन्धर में कन्या महाविद्यालय की स्थापना का इतिहास संचालकों के अद्भुत उत्साह और संघर्ष का इतिहास है। उन्नीसवीं शताब्दी का अन्तिम दशक इस दिशा में हुए कठोर तप और संघर्ष का इतिहास है। आज की सर्व-प्रचलित स्त्री-शिक्षा का आधार वही उस ज़माने का तप और संघर्ष था।

: 2 :

आरम्भ

लगभग 1880 से जालन्धर में आर्य समाज का कार्य आरम्भ हो गया था। आर्य समाज में सामान्यत: पढ़े-लिखे युवक थे, जो नई आरम्भ हुई शिक्षा-प्रणाली के स्कूलों में पढ़ कर पुरानी रूढ़ियों और जड परम्पराओं से सन्तुष्ट नहीं थे और जिन्हें स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्राचीन वैदिक संस्कृति के आदर्शों ने एक नई दिशा दिखा दी थी। इस नए शिक्षित वर्ग में स्त्री-जाति की दयनीय दशा को बदलने की भी भावना थी। स्वामी दयानन्द ने अपनी कृतियों में स्त्री-शिक्षा का भी पूरा समर्थन किया था। जैसे कि पहले वर्णन आ चुका है, स्वामी जी की प्रेरणा से ज़िला होशियारपुर के पुराने समृद्ध कस्बे हरियाना में माई भगवती ने कन्याओं की शिक्षा के लिए उस समय से पहले ही एक कन्या पाठशाला चला रखी थी।

जालन्धर के जो पढ़े-लिखे लोग अपनी कन्याओं को पढ़ाना चाहते थे, उनके लिए सरकारी ज़नाना स्कूल या मिशनरी ईसाई पाठशाला ही थी। उस समय आर्य समाज जालन्धर के सर्व-मान्य नेता लाला देवराज और लाला मुन्शीराम थे। लाला मुन्शीराम की अपनी लड़की, वेदवती, स्थानीय ईसाई कन्या पाठशाला में पढ़ती थी। एक दिन उस लड़की ने अपने स्कूल में सीखा हुआ नया भजन "……ईसा-ईसा बोल, तेरा क्या लगेगा मोल ?" अपने पिता जी को सुनाया और पिता के पूछने पर स्कूल में सीखी ईसाई धर्म-सम्बन्धी दूसरी बातें भी सुनाईं। यह सब सुन कर आर्य समाज के नेता, लाला मुन्शीराम के मन में एक चिंतन पैदा हो गया। उन्होंने अपने आर्य समाजी साथियों के सामने अपना चिंतन प्रस्तुत किया।

इस चिंतन के फलस्वरूप 1886 में आर्य समाज ने प्रस्ताव किया कि एक कन्या पाठशाला की स्थापना की जाए और इसके लिए दो चार रुपये मासिक खर्च मंजूर किया। उस ज़माने में कन्याओं को पढ़ाने वाली अध्यापिका भी कहां मिल सकती थी ? वह प्रस्ताव ऐसे ही रह गया। अगले वर्ष फिर उस प्रस्ताव को दोहराया गया, काम आरम्भ भी किया गया, परन्तु बात आगे न बढ़ सकी। लेकिन इसी दौरान

ला० देवराज जी की माता ने माई लाडी नाम की एक बहन को, जो ईसाई पाठशाला में काम कर चुकी थी, एक रुपया मासिक और साथ रोटी देकर अपने घर में छोटी सी कन्या पाठशाला चलाई। आर्य समाज जालन्धर के बहुत से कार्य-क्रम, सत्संग, स्वाध्याय, समाज सुधार और स्त्री-शिक्षा, सर्व-प्रथम आपकी माता जी के सहयोग से आपके घर में आरम्भ हुए। आपको अपनी माता जी का ऐसा मार्ग-दर्शन और सहयोग मिलता रहा ; तभी आप अपने सारे कार्यों का श्रेय स्वयं न लेकर अपनी माता जी को देते थे।

अन्ततः 1890-91 में फिर से आर्य समाज ने इस दिशा में प्रयत्न किया। एक छोटा-सा कमरा किराए पर लेकर 8 छात्राओं के साथ काम आरम्भ किया गया। दस रुपए मासिक खर्च स्वीकृत किया गया। पं० श्रीपति दो रुपए मासिक लेते थे और एक अध्यापिका चार रुपए मासिक। यह प्रयत्न सफल हुआ। 1892 की, आर्य समाज की रिपोर्ट में लिखा है कि पाठशाला में 55 कन्याएं थीं और इस बात पर हर्ष प्रकट किया गया है कि बहुत-सी कन्याओं ने आभूषण पहनना छोड़ दिया है। रिपोर्ट में आगे आशा के स्वरों में लिखा गया है—

"…..क्या हम इसी पाठशाला से, जो प्राइमरी जमात तक शिक्षा देती है, सन्तुष्ट हैं ? नहीं, हम इससे कहीं आगे बढ़ना चाहते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि दूसरी शिक्षा हमारे जीवन में आर्यत्व का संचार नहीं कर सकती। इस बात को विचार कर आर्य समाज एक कन्या महाविद्यालय कायम करना चाहता है और करेगा भी। विरोध-रूपी तूफान के रहते हुए भी हम स्त्री-शिक्षा की नौका को उस पार पहुंचाएंगे।"

इन प्रयत्नों में और अन्तिम प्रयत्न की सफलता में बार-बार आर्य समाज का नाम आया हैं। इस नाम के पीछे व्यक्तित्व आप ही का है। आर्य समाज के अध्यक्ष भी आप ही थे और रिपोर्ट की काव्यमय शैली से भी स्पष्ट है कि वह रिपोर्ट आप जैसे साहित्यिक व्यक्ति की ही लिखी थी।

—×—

: 3 :

विरोध का तूफ़ान

गत अध्याय में 1892 की आर्य समाज की रिपोर्ट में, नई स्थापित की गई कन्या पाठशाला की सफलता पर हर्ष प्रकट करते हुए साथ ही विरोध के तूफान का जिक्र किया गया है। आज-कल स्थान-स्थान पर कन्या स्कूल स्थापित होते देखने के आदी हम यह कल्पना भी मुश्किल से कर सकते हैं कि उस समय कन्याओं का स्कूल, एक आरम्भिक स्कूल भी, स्थापित करने का क्या अर्थ था। जैसे कि बार-बार कहा गया है देश की शताब्दियों की जड़ता ने स्त्री को चौंके-चूल्हे में ही कैद कर दिया था। समाज में प्रचलित शोषण की वृत्ति ने दलित वर्ग को और स्त्री को पतन के गर्त में गिरा दिया था।

आज तक भी, इतनी प्रगति के होते हुए, स्वतन्त्र भारत में भी, जहां राष्ट्र के हर व्यक्ति को, एक स्त्री को भी, एक जैसे अधिकार प्राप्त हैं, और जहां स्त्रियों ने ऊंचे से ऊंचे पदों को सुशोभित किया है, सामान्यत: हम लड़की के पैदा होने पर न केवल हर्ष नहीं मनाते बल्कि सहानुभूति के भाव प्रकट करते हैं, तो उस ज़माने में इस दिशा में क्या मनोवृत्ति होगी, उस ज़माने में जबकि हम नव-जागरण के उदय-काल ही को देख पाए थे और शताब्दियों की चली आई निर्जीव रूढ़ियों के मानसिक कैदी थे।

उस समय के जीवित प्रबुद्ध लोग इस बात की गवाही देंगे कि उनके जीवन के आरम्भ काल में, इस शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में, हमारे पंजाब प्रदेश में, बहुत से गांवों में लड़कियों को पैदा होते ही मार डालने की प्रथा थी और उस प्रथा के उन्मूलन के लिए सरकार को उन गांवों में पोलीस की चौकियां स्थापित करनी पड़ी थीं, जहां लड़की के जन्म और मृत्यु की तत्क्षण रिपोर्ट न करना एक अपराध माना गया था।

आज के प्रकाश के युग में वह दुष्ट प्रथा तो नहीं रह सकती थी परन्तु कन्या को एक बोझ तो माना ही जाता रहा है, जिसे उतार फेंकना ही एक उद्देश्य था। कन्या

का विवाह करके उसे पति-गृह भेजने के लिए हमारे समाज में आज तक यह मुहावरा प्रचलित है कि 'ढेर का कूड़ा ढेर पर ही फैंकना है।" इस मनोवृत्ति के समाज में कन्याओं को शिक्षा देकर प्रबुद्ध करने की बात कैसे सहन होती ?

अपने स्त्री-शिक्षा के आरम्भ के समय आप, लोगों के घरों में जा-जा कर, और मां बाप को समझा बुझा कर कन्याओं को स्कूल में लाते और कई दफ़ा ऐसा भी होता कि पिता ने कन्या को भेज दिया तो उसका ताया या दादा स्कूल में आकर और लड़झगड़ कर कन्या को वापिस ले गया। ऐसी घटनाएं भी हुईं कि किसी कन्या की सगाई इसलिए छूट गई कि उसने पढ़ना शुरू कर दिया था। 1934 की, कन्या महाविद्यालय की पत्रिका, 'जलविद् सखा' में एक पुरानी छात्रा ने अपने लेख में लिखा है—

".....जब स्त्री-शिक्षा के प्रेमियों पर ईंटों और पत्थरों की वर्षा होती थी, जब लोग उन पर अनेक लांछन लगाने में संकोच नहीं करते थे, जब कन्याओं की शिक्षा को पाप समझा जाता था, जब किसी कन्या के हाथ में अक्षर-दीपिका का होना इतना बड़ा अपराध माना जाता था कि उसकी सगाई तक छूट सकती थी, तब श्रद्धेय चाचा जी ने कन्या महाविद्यालय की स्थापना करके बड़ी दूर-दर्शिता का काम किया। 1909 में जब मैं यहां पढ़ने के लिए आई तो बिरादरी ने मेरे घर वालों को बहिष्कार का भय दिखाया था।"

आपके उस समय के साथियों और कार्य-कर्त्ताओं में जिन महानुभावों का नाम लिया जा सकता है, उनमें पं० श्रीपति जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जैसे कि पीछे कहा गया है पं० श्रीपति कन्या पाठशाला के सर्वप्रथम अध्यापक थे। स्वयं आपने पंडित जी की संक्षिप्त जीवनी लिखी जिसमें उनकी प्रशंसा में लिखा—

"पं० श्रीपति ने कन्या-शिक्षा का कार्य तब आरम्भ किया था, जब स्त्री-शिक्षा का नाम लेने वालों को मूर्ख, पागल, धर्म-नाशक और देश को तबाह करने वाले कहा जाता था।"

ऐसे विरोध के तूफान में आपने अपने, उस समय के क्रांतिकारी कार्य को आरम्भ किया। जब कोई नेक आदमी, नेक इरादे से, किसी नेक काम को आरम्भ करता है तो भगवान् उसकी मदद के लिए साथियों को भेज देते हैं।

विकास

यह ठीक है कि गत शताब्दी के अन्तिम दशक के आरम्भ में जब जालन्धर की आर्य समाज ने कन्या पाठशाला की स्थापना की तो जन-साधारण के लिए वह एक नई चीज़ थी और वे अपनी कन्याओं को पढ़ने भेजने के लिए अनुकूल नहीं थे। परन्तु जनता के शिक्षित युवक-वर्ग और कुछ पुराने प्रबुद्ध लोग भी इस नई जीवन क्रान्ति के लिए तैयार थे। दो ही वर्ष में आर्य समाज के नेताओं ने देख लिया कि आरम्भिक विरोध के पश्चात् लोगों ने कन्याओं की शिक्षा के नए कार्य को न केवल सहन कर लिया बल्कि उसके लिए उत्साह भी दिखाया। जैसे कि पीछे कहा जा चुका है दो ही वर्ष के बाद की कन्या पाठशाला की प्रगति को देख कर लाला देवराज जी ने अपनी रिपोर्ट में उस छोटी सी पाठशाला को एक महाविद्यालय का रूप देने की बात कही थी।

1892 में आर्य समाज जालन्धर ने, दूसरे शब्दों में लाला देवराज और लाला मुन्शी राम ने, पाठशाला को कन्या महाविद्यालय का रूप देने की और उसके साथ छात्रवास खोलने की योजना बनाई। उस योजना को उस समय के प्रबुद्ध लोगों, शिक्षा-विशारदों और जन-नेताओं के पास, उनकी राय और उनके सुझाव लेने के लिए, भेजा गया। उस जन-जागरण के उदय-काल में प्रायः उन सभी लोगों ने योजना को पसन्द किया। कुछ ने अपने सुझाव भी दिए। तब योजना को अन्तिम रूप दिया गया और उसे जनता के सामने प्रस्तुत करके उसके लिए धन-संग्रह की अपील की गई।

प्रस्तावित कन्या महाविद्यालय के प्रबन्ध के लिए जालन्धर आर्य समाज ने 'कन्या महाविद्यालय मुख्य सभा' नाम से प्रबन्ध-कर्तृ-सभा का निर्माण करके 1886 में उसकी रजिस्ट्री करवा दी। तब तक इस चार-पांच वर्ष की आयु की संस्था का छात्रावास भी स्थापित हो चुका था।

उस नव-जागृति-काल में स्थान-स्थान पर ऐसे प्रबुद्ध परिवार, विशेषतः आर्य-समाजी विचार के लोग ही थे जो अपनी कन्याओं को शिक्षा दिलाना चाहते थे, परन्तु

उस समय इसके लिए कन्या पाठशालाएं कहां थीं ? जालन्धर आर्य समाज के नेता, लाला देवराज और लाला मुन्शी राम, आर्य समाज के क्षेत्र में विख्यात और विश्वास-पात्र नेता थे। उन नेताओं की आरम्भ की गई पाठशाला में अपनी कन्याओं को भेजने के लिए वे तैयार थे, परन्तु उसके साथ छात्रावास नहीं था। बाहर से आई छोटी छोटी कन्याओं की ज़िम्मेदारी उठाना कोई आसान काम नहीं था।

ऐसे कठिनाई के समय में भी लाला देवराज जी के परिवार की, विशेषत: आप की माता और पत्नी की, सहायता मिली। पहले पहल 1893 में डेरा ग़ाज़ी खां के एक आर्य समाजी ने अपनी कन्या और बहू को शिक्षा के लिए जालन्धर भेजा तो लाला जी ने उन्हें अपने परिवार में रख कर पाठशाला में उनकी पढ़ाई का प्रबन्ध कर दिया। दो तीन वर्ष तक जो भी और कन्याएं बाहर से आती रहीं उनको भी आपके परिवार के साथ निवास मिलता रहा। आखिर 1895 में कन्याओं के लिए, एक किराए के मकान में, छात्रावास भी खोल दिया गया।

आज-कल के कन्या महाविद्यालय को और दूसरे ऐसे लड़कियों के स्कूल-कालिजों को देख कर यह कल्पना करना मुश्किल है कि उस समय वह नया विद्यालय और छात्रावास किसी अपनी, इस मतलब के लिए बनाई गई, इमारतों में नहीं थे, बल्कि लाला जी के अपने निवास-स्थान के आस-पास, किराए के मकानों में थे। जैसे कि पहले कहा जा चुका है विद्यालय के और विशेषत: छात्रावास के प्रबन्ध में आपकी माता जी और आपकी पत्नी अपना काफी समय लगाती थीं। दूर-दूर के स्थानों की नन्ही-नन्ही कन्याओं को संभालने के लिए और माता-पिता से दूर रहते हुए, उनका दिल लगाने के लिए, मातृ-स्नेह की ज़रूरत थी। कन्याओं को वह मातृ-स्नेह आपकी माता से, आपकी पत्नी से और स्वयं आप से मिला। इस मातृ-स्नेह के बिना इस कार्य का सफल होना असम्भव था। परन्तु जब भगवान् किसी कार्य को परवान चढ़ाना चाहते हैं, तो उसके लिए उपयुक्त साधन भी प्रस्तुत कर देते हैं।

1897 में छात्रावास में कन्याओं की संख्या 22 तक पहुंच गई। इस प्रदेश की स्त्री-शिक्षा के इतिहास में 22 कन्याओं के उस, किराए के मकान के, छात्रावास का जो महत्त्व है, वह आज के सैकड़ों छात्राओं के अपने शानदार भवनों में चल रहे होस्टलों का नहीं है।

1897 में विद्यालय के साथ एक कन्या अनाथालय की और 1909 में एक विधवा-भवन की स्थापना हो गई।

: 5 :

प्रगति

लाला जी ने स्त्री-शक्ति के जागरण के लिए जैसे कन्या महाविद्यालय की कल्पना की थी, उसको सफल और साकार रूप देने के लिए जिस अनुभव की आवश्यकता थी, वह आपके पास या आपके किसी साथी के पास नहीं था। उस समय आपकी आयु केवल चौंतीस पैंतीस वर्ष थी और आपने शिक्षा के क्षेत्र में काम भी नहीं किया था। वास्तव में उस समय हमारे प्रदेश में शिक्षा का और विशेषत: स्त्री-शिक्षा का क्षेत्र था ही कहाँ ? इस प्रदेश में अंग्रेज़ी को और अंग्रेज़ी शिक्षा को आए मुश्किल से आधी शताब्दी हुई थी। जो स्त्री-शिक्षा यहाँ थी, वह सरकारी तथा ईसाई ज़नाना स्कूलों की थी। उसकी नकल-मात्र करना तो आपका ध्येय नहीं था।

देश के जिन भागों में अंग्रेज़ी राज्य देर से स्थापित था और नई शिक्षा को आरम्भ हुए भी काफ़ी वर्ष हो गए थे, वहां की संस्थाओं को देखने से कुछ रास्ता मिल सकता था। इस नए प्रयोग का चिंतन तो आप के मस्तिष्क में था ही। आप ने इस दिशा में मार्ग-दर्शन पाने के लिए दूसरे प्रदेशों में चल रही संस्थाओं को देखने का निश्चय किया।

1896 में आपने एक मास के लिए उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बड़ौदा तथा बम्बई का दौरा किया। आपने अपने साथ अपनी धर्मपत्नी और कन्या महाविद्यालय की तीन छात्राओं को लिया। जहां भी आप गए वहां आपने चल रही शिक्षण-संस्थाओं, विशेषतः स्त्री-शिक्षण संस्थाओं को देखा। इसके साथ आपने वहां की संस्थाओं में अपनी संस्था की कन्याओं की प्रतिभा और शिक्षा-दीक्षा का प्रदर्शन भी किया और अपनी योजना के सम्बन्ध में व्याख्यान भी दिए।

बड़ौदा, अहमदाबाद और बम्बई आदि प्रबुद्ध नगरों की स्त्री-शिक्षा संस्थाओं को देख कर आपने बहुत कुछ सीखा। बड़ौदा के प्रगतिशील और समाज-सेवी महाराजा ने आपका हार्दिक स्वागत किया। उन्होंने कन्या महाविद्यालय की कन्याओं के वेद-मन्त्र गान को बहुत पसन्द किया। कन्याएं बड़ौदा की महारानी से भी मिलीं। बम्बई में

आप उस समय के प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय नेता जस्टिस रानाडे से मिले, जिन्होंने आपके कार्य की योजना को बहुत पसन्द किया।

बम्बई की पाठशालाओं के सम्बन्ध में आपने लिखा है—

".....पाठशालाओं को देख कर मेरी आँखें खुल गईं। कन्याओं का गाना कितना अच्छा था! कन्याएं बहुत समझदार और होशियार मालूम होती थीं। मैंने उन पाठशालाओं को देख कर बहुत लाभ उठाया.....।"

अपने इस दौरे में आपने जहां जो कुछ उपयोगी बात देखी उसे अपनी संस्था में जारी करने का निश्चय किया। अपनी कल्पना की स्त्री-संस्था को आप एक ऐसा रूप देना चाहते थे जिसमें इस अनुभव से प्राप्त की गई सुन्दर और उपयोगी बातों का समावेश हो।

अब आपका प्रायः सारा सार्वजनिक समय कन्या महाविद्यालय के लिए कार्य करने में जाता था। इससे आपके साथियों को यह शिकायत रहती थी कि आप आर्य समाज के दूसरे कामों की तरफ ध्यान नहीं देते थे। उस सम्बन्ध में आपने 1896 की अपनी डायरी में लिखा है।

".....जिस पाठशाला में युवा लड़कियां हैं, जिस पर सारे पंजाब की आशा लगी हुई है और जिसने अभी बहुत काम करना है, उसके लिए जितना समय दिया जाए, थोड़ा है। आर्य समाज के बहुत से साथी कहते हैं कि देवराज समाज का कुछ भी काम नहीं करता। इससे बढ़ कर और क्या गलत-फहमी होगी? समाज अब तक बहुत तरक्की कर जाता, अगर हमारी स्त्रियां हमारे साथ होतीं। स्त्रियों के अज्ञान से आर्य धर्म और आर्य समाज को बहुत हानि हो रही है। मैं जड़ को सींच रहा हूं। मैं घरों को स्वर्ग बनाने की कोशिश कर रहा हूं। माताएं जब आर्य बन जाएंगी, तब पुत्र क्यों आर्य न बनेंगे?"

इस महान् उद्देश्य को सामने रख कर आपने स्त्री-शिक्षा का कार्य उठाया था और उसके लिए अपना सर्वस्व लगा दिया था। आपके परिश्रम से विद्यालय जिस गति से उन्नति करता गया उसका अन्दाज़ा छात्राओं की संख्या की नीचे की तालिका से लग सकता है—

वर्ष	विद्यालय	आश्रम
1891	8	—
1892	55	—
1895	77	5

वर्ष	विद्यालय	आश्रम
1896	99	16
1897	134	22
1904	166	60
1907	203	105
1912	362	158

विधवा-भवन और अनाथालय में भी संख्या बढ़ती गई थी।

—×—

: 6 :

संस्था के भवन

जालन्धर शहर में अड्डा होशियारपुर के रेलवे फाटक के पास आर्य समाज मन्दिर है। शहर का यही भाग आर्य समाज तथा कन्या महाविद्यालय के कार्यों का केन्द्र था। समाज-मन्दिर से फाटक पार करके कुछ दूर पर लाला जी का निवास-स्थान, सोंधी-परिवार का खानदानी स्थान, 'सालिग-निवास' है। उसके सामने कोट-किशनचन्द की पुरानी किला-नुमा आबादी है, जो लाला जी के समय में शहर से अलग थलग बाहर थी। यह आबादी कुछ शताब्दियों पहले आपके पूर्वज लाला किशनचन्द के नाम पर बनी थी और इसमें सोन्धी परिवार के बहुत से मकान थे।

अंग्रेज़ी राज्य में शहर के नए विकास से पहले, 'सिविल लाइन्ज़' की आबादी से पहले, शहर का यही भाग, कोट-किशनचन्द और आस पास का इलाका शहर का, मुख्य रूप में हिन्दू आबादी की सांस्कृतिक गतिविधियों का, केन्द्र था। यह क्षेत्र जालन्धर की सब से पुरानी आबादी 'किला मुहल्ला' के भी समीप है। आर्य समाज की गतिविधियों का केन्द्र यही स्थान रहा। जब देश में राष्ट्रीय चेतना पैदा हुई और गांधी जी के नेतृत्व में स्वतन्त्रता-संग्राम आरम्भ हुआ, तब भी यही क्षेत्र उसकी गतिविधियों का केन्द्र बन गया। कोटकिशनचन्द के साथ लगता, पुराने मन्दिरों का क्षेत्र है जिसका एक पुराना सूखा हुआ तालाब 'गान्धी मण्डप' नाम से स्वतन्त्रता-संग्राम के आन्दोलन में, देश के नेताओं के व्याख्यानों का मंच था। देश के बड़े से बड़े नेता, जो शहर में आते थे, सामान्यतः लाला जी के छोटे भाई रायज़ादा हंसराज के पास ठहरते थे और उनके सार्वजनिक व्याख्यान सामान्यतः गान्धी मण्डप ही में होते थे। आज़ादी के बाद के शहर के विकास के फल-स्वरूप अब शहर की गतिविधियों का केन्द्र सिविल लाइन्ज़ की तरफ बदल गया है।

यही कोट किशनचन्द का इलाका कन्या महाविद्यालय के आरम्भ और विकास का क्षेत्र है। विद्यालय का आरम्भ तो एक किराए के कमरे में हुआ। परन्तु कुछ ही वर्ष बाद विद्यालय की एक छात्रा परमेश्वरी देवी ने अपने पिता को प्रेरित करके

थापरां मोहल्ला का वह स्थान अपनी मातृ-संस्था को दान दिला दिया, जिसमें आज 'देवराज गर्ल्ज हायर सैकण्डरी स्कूल' चल रहा है। विद्यालय की एक दूसरी छात्रा पार्वती देवी ने अपने विवाह के पश्चात्, अपने खर्च से, उस दान में मिले स्थान पर एक बड़ा कमरा बनवा दिया। इस प्रकार संस्था की अपनी इमारत की बुनियाद पड़ गई और यह इमारत, आगे से आगे आवश्यकता के अनुसार बढ़ती चली गई। तब से लेकर, 1913 में, शहर से बाहिर कन्या महाविद्यालय के वर्तमान स्थान पर, छात्रावास के और कुछ छोटे-मोटे शैड और छप्पर बन जाने पर, बड़ी श्रेणियों के, वहां चले जाने तक, यही थापरां मुहल्ला का स्थान संस्था के अध्ययन-अध्यापन का स्थान रहा। 1913 तक जब हम कन्या महाविद्यालय का नाम लेते हैं, तो हमारा मतलब थापरां मुहल्ले के इसी स्थान से, आज के देवराज गर्ल्ज़ हायर सैकण्डरी स्कूल के स्थान से होता है। 1913 के बाद इस संस्था को देवराज नगर विद्यालय कहा जाने लगा और कन्या महाविद्यालय नाम बाहिर के विद्यालय को, वर्तमान कन्या महाविद्यालय (कालिज) को, मिल गया।

इस प्रकार विद्यालय के लिए, अध्ययन अध्यापन के लिए तो संस्था का अपना स्थान बन गया, परन्तु छात्रावास तथा विधवा-आश्रम और अनाथालय किराए के अलग-अलग मकानों में रहे। आर्य समाज मन्दिर से फाटक पार करने पर बाएं हाथ एक बड़ी कोठी थी. जिसके साथ एक विशाल मैदान और बहुत से वृक्ष आदि थे। वह कोठी विद्यालय का मुख्य छात्रावास था। उस स्थान पर आज का मुहल्ला लक्ष्मीपुरा आबाद है।

वहां से आगे जाकर, सालिग निवास के सामने, एक दूसरी किराए की कोठी में, दूसरा छात्रावास था। सालिग निवास और कोट किशनचन्द के बीच में सड़क पर विधवा-आश्रम और अनाथालय के किराए के मकान थे।

इस तरह विद्यालय से सम्बन्धित सभी गति-विधियों के स्थान आपके निवास सालिग-निवास के पास ही थे। आप नियम-पूर्वक घर से निकलते थे और रास्ते में पड़ने वाले सभी स्थानों में से होते हुए और उन्हें देखते हुए थापरां मुहल्ला में विद्यालय के मुख्य स्थान तक पहुंच कर वहां काफी समय गुज़ारते थे। मुख्याध्यापिका, आचार्या या अधिष्ठात्री कोई भी हो, आपका कार्यक्रम ऐसे ही चलता रहता था।

1913 में विद्यालय के छात्रावास तथा बड़ी श्रेणियों के बाहिर चले जाने तक का विद्यालय का इतिहास शहर की इन्हीं अलग-अलग इमारतों के साथ सम्बन्धित है।

बाहिर की भूमि, जहां अब कन्या महाविद्यालय (कालिज) है, 1905-6 में खरीदी गई, 1910 के आसपास यहां निर्माण-कार्य शुरू हुआ और 1913 में यह

स्थान आबाद हो गया। छात्रावास की किले जैसी इमारत का कुछ भाग और पढ़ाई के लिए शैड और छप्पर तब तक बन चुके थे। पढाई उन शैडों और छप्परों में या वृक्षों के नीचे होती थी। पढ़ाई के लिए पहली इमारत 'कृष्णा हाल', कृष्णा नाम की एक पुरानी छात्रा के रुपए से बनाई गई। प्रायः शेष सभी इमारतें आप के देहान्त के बाद बनीं।

इमारतों के अतिरिक्त स्थान-स्थान पर, संस्था से सम्बन्धित सेवा-भावी स्त्री-पुरुषों के नामों पर वृक्षों के कुछ कुंज थे या वृक्षों की पंक्तियां थीं, जिनकी छाया में कार्य होता था।

—x—

: 7 :

नगर से बाहिर—खुलें में

जैसे कि कहा जा चुका है संस्था का आरम्भ आर्य समाज जालन्धर के समाज-मन्दिर के, तथा संस्था के संस्थापक लाला देवराज जी के खानदानी निवास-स्थान, 'सालिग-निवास' के, आस-पास किराए के मकानों में हुआ और बाद में थापरां मुहल्ला में अपना एक भवन भी बन गया, परन्तु दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही गति-विधियों के लिए शहर से बाहिर, खुले स्थान पर, एक आदर्श शिक्षण-केन्द्र स्थापित करने की कल्पना भी मौजूद थी। 19वीं शताब्दी के समाप्त होते होते, जी० टी० रोड पर, आज के डी० ए० वी० कालिज के स्थान के आसपास, इसके लिए भूमि खरीदी भी गई थी। परन्तु उस भूमि के, आर्य समाज जालन्धर से और सोन्धी परिवार के निवास-स्थान से अलग, एक तरफ होने से, वहां निर्माण-कार्य आरम्भ करने में हिचकिचाहट थी, क्योंकि कन्याओं की संस्था के लिए सुरक्षा का वातावरण होना आवश्यक था।

ऐसे समय में, 20वीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में 'रेरू' गांव के नम्बरदार नत्था सिंह ने लाला जी से कहा :—

".....लाला जी, आप उधर असुरक्षित दिशा में क्यों जाते हैं। आप हमारे गांव के समीप जगह लें। संस्था की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी हमारे गांव की रहेगी। गांव की तरफ से मैं यह वचन देता हूं।"

लाला जी नत्था सिंह को और उसकी हिम्मत को जानते थे। सेवा-भावी और उदार-हृदय नम्बरदार की बात आपको पसन्द आई। नम्बरदार नत्था सिंह की सहायता से कुछ ज़मीन दान में और कुछ कीमत में मिल गई। यह वही ज़मीन है, जिस पर आज कल कन्या महाविद्यालय (कालिज) स्थित है। यह स्थान था भी शहर के समीप और था भी कोट किशनचन्द, आर्य समाज और सालिग-निवास के सानिध्य में। उस समय यह ज़मीन रेत के टिब्बों से युक्त और उजाड़ सी थी। कुछ लोगों ने तो कहा भी कि..... "क्या इस उजाड़ रेगस्तान में कन्या महाविद्यालय बनाया जाएगा?....." परन्तु कल्पना और योजना के धनी लाला जी भविष्य की सम्भावनाओं को जानते थे।

1903 से संस्था के साथ एकाकार आचार्या कु० लज्जावती बताती हैं—"1905-6 में चाची जी छात्राओं को यहां घूमने और खेलने के लिए ले आया करते थे। यहां छात्राएं चाचा जी के बनाए देश प्रेम के गाने गाती हुई खेला करती थीं। 1905 के बंग-भंग से उत्पन्न हुए स्वदेशी आन्दोलन का प्रभाव उस समय की हवा में था। जब भवन-निर्माण के लिए ईण्टें आने लगीं, तो चाचा जी स्वयं और उनके साथ लड़कियां भी ईण्टों को उचित स्थानों पर रखती थीं। उन्हीं दिनों चाचा जी ने कन्याओं के हाथों से यहां वृक्ष और बाड़ के रूप में, खट्टे के पेड़ लगवाने शुरू कर दिये। मेरे अपने हाथ से लगाए खट्टे के पेड़ों की बाड़ अब तक मौजूद है।"

1910 में महाराजा कपूरथला के हाथों विद्यालय के विशाल किला-नुमा आश्रम की आधार-शिला रखी गई। 1913 तक आश्रम का कुछ भाग बन गया, तो छात्रावास तथा बडी श्रेणियों को बाहर ले आया गया। जैसे कि पहले कहा जा चुका है, उस समय पढ़ाई के लिए केवल टीन के शैड, छप्पर और वृक्ष ही थे, जिन्हें देख कर अंग्रेज़ सरकार के अधिकारियों ने एक बहुत बड़ी आर्थिक सहायता का संकेत किया। परन्तु संस्था के संचालकों की दृष्टि स्वतन्त्र विकास की थी। संस्था को देखने आई-एक अंग्रेज़ महिला के सरकारी सहायता से अच्छे भवन बनवा लेने के संकेत के उत्तर में आचार्या कु० लज्जावती ने उन छप्परों में कन्याओं द्वारा गाए जा रहे देश-प्रेम के गानों को गाए जाते देख कर, स्पष्ट कह दिया.....

".....हमें अपने ये शैड और छप्पर ही पसन्द हैं, जिनमें हम स्वतन्त्रता के साथ ऐसे गाने गा सकते हैं।"

इस स्थान पर विद्यालय का पहला भवन, 'कृष्णा-भवन', 1932 में संस्था की पुरानी छात्रा कृष्णा के छोड़े गए रुपए से बना। इस भवन की नींव में डालने के लिए राजस्थान में, राणा प्रताप की क्रीड़ा-स्थली हल्दी-घाटी की मिट्टी लाने के लिए चाचा जी स्वयं गए और आचार्या कुमारी लज्जावती ने इस भवन की आधार शिला रखी।

इस स्थान पर संस्था के शेष भवन तो 1935 में, चाचा जी की मृत्यु के बाद बने, जिनमें से पहला, 'देवराज भवन', तो उन्हीं के स्मारक के रूप में बना।

1905-6 की वही छोटी-छोटी कन्याओं की खेल-कूद की भूमि आज एक विशाल, कई विषयों में एम० ए० तक की पढ़ाई वाले, कालिज के रूप में विद्यमान है।

यहां यह बताना भी आवश्यक है कि नम्बरदार नत्था सिंह ने और उनके बाद भी उनके गांव ने, संस्था की सुरक्षा में पूरा योग-दान दिया।

—x—

: 8 :

छात्राओं की श्रद्धा

किसी शिक्षा संस्था के सफल कहे जा सकने का एक यह बड़ा प्रमाण है कि उससे शिक्षा प्राप्त छात्र-छात्राओं की उसके प्रति कितनी श्रद्धा कायम रहती है। यह श्रद्धा तभी पैदा होती और कायम रहती है जब शिक्षा पाने वाले छात्र या छात्राएं यह अनुभव करें कि संस्था ने उनके जीवन के निर्माण में अपनी ज़िम्मेदारी पूरी की है और उन्हें मातृ-स्नेह दिया है। इस परीक्षण के आधार पर कन्या महाविद्यालय को एक सफल संस्था कहा जा सकता है। अपनी मातृ-संस्था के लिए कन्याओं की श्रद्धा के प्रमाण उसके आरम्भ ही से मिलने लग जाते हैं।

जैसे कि कहा गया है, आरम्भ में विद्यालय के पास अपना कोई स्थान नहीं था और सभी काम किराए के मकानों में होते थे। संस्था के आरम्भ ही के दिनों में परमेश्वरी देवी नाम की एक छात्रा ने संस्था में उस समय की चार श्रेणियों की पढ़ाई पूरी की थी। उसका विवाह निश्चित हो गया था। उसका घर थापरां मुहल्ले में छत्ती गली के पास था। उसके पिता लाला भागमल एक सम्पन्न आदमी थे जिनके घर के साथ एक खुला मैदान तबेले के रूप में था। विवाह से कुछ दिन पहले पिता को अपनी पुत्री के, विद्यालय में सीखे हुए, भजन और वेद-मन्त्र आदि सुनने का अवसर मिला तो वे बहुत खुश हुए और उन्होंने अपनी इकलौती बेटी से कहा.....

".....मैं तुम्हें कुछ इनाम देना चाहता हूं। माँगो, तुम क्या मांगती हो ?....."।

उनका ख्याल था कि परमेश्वरी कोई गहना कपड़ा मांग लेगी। लेकिन परमेश्वरी ने कहा.....

".....पिता जी, हमारे विद्यालय के पास अपनी कोई जगह नहीं है। आप यह घर वाला तवेला विद्यालय को दे दें....."।

लाला भागमल दान-शील प्रकृति के थे। वे पुत्री की मांग से खुश हुए। उन्होंने लाला देवराज जी को बुला कर उन्हें अपना संकल्प बताया। 1896 में उस स्थान की

रजिस्टरी हो गई। इसके चन्द ही दिन बाद लाला भागमल का देहांत हो गया। उसी स्थान पर आज देवराज गर्ल्ज़ हायर सैकण्डरी स्कूल चल रहा है।

संस्था की एक पुरानी छात्रा पार्वती ने, दान में मिले उस स्थान पर एक बड़ा कमरा बनाने के लिए 800 रुपए दे दिए। बाद में जब उसे मालूम हुआ कि कमरे पर दो हजार के करीब रुपए खर्च आए हैं, तो उसने शेष रकम भी भेज दी। यह ख्याल रहे कि उस ज़माने का एक रुपया आज के पच्चास रुपए के बराबर तो होगा ही।

प्राय: सभी पुरानी छात्राएं अपनी मातृ-संस्था के लिए दान देने और काम करने में एक दूसरी से बढ़ कर उत्साह दिखाती थीं। कुछ छात्राओं ने तो देश में और विदेशों में लम्बी-लम्बी यात्राएं करके पच्चास-पच्चास हज़ार तक रुपए जमा किए। इसका उल्लेख अन्यत्र मिलेगा।

रुपए के दान के अतिरिक्त छात्राएं, अपनी पढ़ाई के पश्चात्, अपनी मातृ-संस्था के लिए समय का दान देती थीं और शिक्षण तथा प्रबन्ध के कामों में सहयोग देती थीं। कम से कम छ: मास का समय देने वाली छात्राओं के नाम विद्यालय के प्रवेश-द्वार के समीप अंकित रहते थे।

पुरानी छात्राओं का सम्पर्क अपनी मातृ-संस्था के साथ बना रहता था। वे अपने अपने स्थानों पर समाज-सुधार तथा शिक्षण का कार्य भी करती थीं। स्थान-स्थान की आर्य समाजों के उत्सवों पर चाचा जी जाते रहते थे और वहां की पुरानी छात्राओं के साथ सम्पर्क बनाए रखते थे।

अपने जीवन में प्रवेश करके भी पुरानी छात्राएं समय समय पर संस्था में आती रहती थीं। विद्यालय का वार्षिकोत्सव एक विशेष अवसर होता था जब पुरानी छात्राएं अपनी मातृ-संस्था में आती थीं।

बहुत सी पुरानी छात्राएं अपनी कन्याओं को भी विद्यालय में अध्ययनार्थ भेजती थीं। ऐसे भी उदाहरण हैं, जब परिवार की तीन तीन पीढ़ियों ने संस्था में शिक्षा प्राप्त की। देश की बहुत कम संस्थाओं को, शायद किसी ही संस्था को, यह गौरव प्राप्त हुआ हो।

कन्या महाविद्यालय ने प्रदेश के नव-जागरण-काल के आरम्भ ही में अपना कार्य शुरू किया था और उसके संस्थापक भी एक ऐसे महापुरुष थे, जिनके अन्त:करण में स्त्री के जीवन के उत्थान की क्रान्तिकारी भावना थी। उस हार्दिक भावना का प्रभाव छात्राओं पर पड़ना स्वाभाविक था।

—×—

: 9 :

प्रथम आचार्या—पंडिता सावित्री देवी

विद्यालय के प्राय: आरम्भ-काल ही में सावित्री देवी नाम की एक बाल-विधवा का विद्यालय में आगमन हुआ, जो आदर्श भारतीय स्त्री के अपने गुणों, सेवा भावना, नम्रता, लज्जा-शीलता, श्रम-निष्ठा और पवित्रता के कारण, गुणों के पारखी चाचा जी को संस्था के लिए भगवान् की एक देन मालूम हुई। ज़िला मुजफ्फरगढ़ में पैदा हुई सावित्री 1890 में, केवल दस वर्ष की आयु में विधवा हो गई। एक स्थानीय महानुभाव श्री हेमराज़ ने उसे कुछ देर तक पढ़ा कर कन्या महाविद्यालय में भेजने का प्रबन्ध कर दिया। 1894 में चाचा जी स्वयं सावित्री को विद्यालय में ले आए। श्री हेमराज ने उसके लिए थोड़ी सी छात्र-वृत्ति का प्रबन्ध कर दिया था। कुछ देर तक विद्यालय में रह कर, एक बार छुट्टियों में घर जाने पर, वह विद्यालय लौटने में असमर्थ हो गई, क्योंकि उसे मिली आर्थिक सहायता बन्द हो गई थी। उसने चाचा जी को अपनी कठिनाई के बारे में लिखा तो आपने उसके खर्च का प्रबन्ध कर दिया और वह अपने छोटे मोटे ज़ेवर बेच कर विद्यालय आ पहुंची।

अपनी परिश्रम-शीलता से सावित्री ने पढ़ाई में योग्यता प्राप्त कर ली। चाचा जी की प्रेरणा से उसके स्वाभाविक गुणों का विकास होने लगा। उसने सामान्य रूप में स्त्री-समाज में बोलना और संस्था की पत्रिका में कुछ लिखना भी सीख लिया। पढ़ाने और प्रबन्ध में भी वह सफल सिद्ध हुई। सावित्री देवी चाचा जी का दाहना हाथ बन गई।

1905 में सावित्री देवी ने बम्बई और दक्षिण भारत की लगभग साढ़े तीन महीने की यात्रा का भी साहस किया। लगभग पांच हजार मील की यात्रा में उसने बीस के करीब व्याख्यान दिए, एक हजार के करीब विद्यालय के कार्य-विवरण बांटे और एक हज़ार के करीब रुपए जमा किए। अपनी यात्रा में सावित्री देवी ने आचार्य कर्वे का हिंगणे-आश्रम भी देखा और उससे अपने विद्यालय में वैसा विधवा-आश्रम स्थापित करने की प्रेरणा ली।

चाचा जी को अपने कार्य के लिए अपने विचारों के अनुकूल एक गुणवती कार्य-कर्त्री मिल गई थी, जिसे आपने मुख्याध्यापिका, अधिष्ठात्री, उप-सम्पादिका आदि भिन्न-भिन्न स्थितियों में रख कर उसका विकास किया। अन्त में सावित्री देवी कन्या महा-विद्यालय की पहली आचार्या भी कहलाई।

संस्था का यह पहला युग, जो स्थापना के साथ आरम्भ हुआ, 1918 में आचार्या सावित्री देवी की मृत्यु तक, 'आचार्या सावित्री देवी युग' कहला सकता है। चाचा जी को विशेष बौद्धिक गुणों और योग्यताओं की अपेक्षा, भारतीय आदर्श के अनुरूप जिन स्त्री-गुणों की अधिक कद्र थी वे सब सरल और सीधी-सादी आचार्या सावित्री देवी में मौजूद थे और उनकी स्नेह-शील प्रकृति के कारण वे गुण छात्राओं में भी संचार कर सकते थे। यही चाचा जी का शिक्षा का उद्देश्य था।

1900 में जब सावित्री देवी अभी पढ़ती थी, चाचा जी ने 'सावित्री नाटक' नाम की अपनी कृति अपने विद्यालय की इस छात्रा को समर्पित करते हुए लिखा था.....

".....प्रिय धर्मात्मा पुत्री सावित्री ! सुशीलता, धर्म-भाव, आज्ञा-पालन, विद्या-प्रेम आदि गुणों को धारण करती हुई तुम वास्तव में विद्यालय का पुष्प कहलाने के योग्य हो। तुम जैसी देवियां जब शिक्षा समाप्त करके कन्या महाविद्यालय की इस लता का सिंचन करेंगी, तब कैसा आनन्द होगा ! पितृ-स्नेह के साथ मैं यह पुस्तक तुम्हें समर्पण करता हूं।"

अपनी छात्रों के गुणों की ऐसी कद्र करने वाले चाचा जी की छात्राओं को अपने गुण-विकास के लिए प्रेरणा क्यों न मिलती होगी। स्वाध्याय-शील सावित्री देवी ने अपने जीवन-संयम के अनुभव के आधार पर 'इन्द्रिय-दमन' नाम की एक छोटी सी पुस्तिका भी लिखी।

1913 में उन्हें कन्या महाविद्यालय की आचार्या नियुक्त किया गया। उसी वर्ष विद्यालय के छात्रावास समेत बड़ी श्रेणियां, शहर से बाहिर, अपने नए स्थान पर आई थीं। ऊंचे चरित्र के ऐसे गुणों के होते हुए, दुर्भाग्यवश सावित्री देवी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था। उन्हें आराम के लिए पहाड़ पर भी भेजा गया और इलाज के लिए कलकत्ता भी भेजा गया। परन्तु स्वास्थ्य गिरता ही गया। अन्ततः 1918 में चालीस वर्ष से भी कम आयु में, संस्था की प्रथम आचार्या सावित्री देवी का जालन्धर में देहान्त हो गया। संस्था के लिए यह एक बड़ी क्षति थी।

चाचा जी को अपने साथ कार्य करने वालों के स्मारक स्थापित करने का शौक था। उससे पुराने, जाने वाले, लोगों का सन्मान भी होता है और उनके प्रति कृतज्ञता भी प्रकट होती है और साथ ही नए कार्य-कर्त्ताओं को प्रेरणा मिलती है। सावित्री देवी की स्मृति में, लगभग चालीस हज़ार रुपए के खर्च से विधवा-आश्रम के भवन का निर्माण किया गया, जो 'सावित्री-भवन' कहलाया। विद्यालय के बाग़ में एक कुंज को 'सावित्री कुंज' नाम दिया गया। बहुत वर्षों तक उनका मृत्यु-दिवस भी मनाया जाता रहा।

—×—

: 10 :

धार्मिक शिक्षा

19वीं शताब्दी का भारत का नव-जागरण एक धार्मिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक आभा के साथ हुआ था। स्वामी दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज का आन्दोलन भी ऐसा ही था। समाज-सुधार तो उस जागरण का एक स्वाभाविक समयानुकूल पहलू था।

स्वामी दयानन्द ने अनुभव किया था कि वेद की प्राचीन शिक्षा को भूलकर देश की ऐसी दुर्दशा हुई थी। उन्होंने वेद के अध्ययन को बहुत ऊंचा स्थान दिया था। आर्य समाज के कार्य-क्रम में भी वेद की शिक्षा-दीक्षा को एक प्रमुख स्थान प्राप्त था। आर्य समाज के गुरुकुल-विभाग ने वैदिक शिक्षा को अधिक महत्त्व दिया था और महात्मा मुन्शी राम द्वारा गुरुकुल-कांगड़ी की स्थापना का मुख्य उद्देश्य ही वैदिक ज्ञान का प्रसार था।

लाला देवराज जी भी आर्य समाज के गुरुकुल विभाग के प्रमुख पुरुषों में थे। स्वभावतः आपकी संस्था में भी वैदिक धार्मिक शिक्षा का महत्त्व होना स्वाभाविक था। सन्ध्या और प्रार्थना के मन्त्रों तथा स्वस्ति-वाचन और शान्ति-प्रकरण को कंठस्थ करना भी धार्मिक शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण अंग था। संस्था में दोनों समय का यज्ञ-हवन और दोनों समय की नियमित सन्ध्या-प्रार्थना अनिवार्य कार्य-क्रम थे।

भारतीय विचार और दर्शन के अध्ययन के लिए संस्कृत भाषा एक आधारभूत भाषा है। भारत का प्रायः सारा प्राचीन साहित्य, बौद्धमत और जैन मत से पहले का साहित्य, संस्कृत, बल्कि उसके भी प्राचीन रूप, वैदिक तथा आर्ष भाषाओं में है। इस दृष्टि से कन्या महाविद्यालय में संस्कृत के अध्ययन को बहुत महत्त्व का स्थान प्राप्त था। लाला देवराज जी के स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी, मध्यम-मार्गी दृष्टि-कोण के कारण यद्यपि संस्था में संस्कृत-व्याकरण आदि के बारे में गुरुकुल कांगड़ी

जैसी कड़ाई नहीं थी, तो भी संस्कृत के ज्ञान के लिए व्याकरण का विषय अनिवार्य था।

हमारे देश के प्राचीन साहित्य में वेद के बाद उपनिषदों का स्थान है। उपनिषदों के ज्ञान का अपना विशेष आध्यात्मिक महत्त्व है। संस्था के आध्यात्मिक शिक्षा के पाठ्य-क्रम में उपनिषदों का यह अध्ययन-अध्यापन वास्तव में आध्यात्मिक जीवन का एक सुदृढ़ आधार माना जाता था।

धार्मिक शिक्षण के उस बौद्धिक सुदृढ़ आधार के साथ विद्यालय में आचार्य-आचार्या के ऊंचे जीवन और नैतिक चरित्र को भी विशेष महत्त्व दिया जाता था। संस्था की स्थापना के समय एक प्राचीन ऋषि के समान शकलो-सूरत और आचरण वाले अध्यापक पं० श्रीपति ने जो परम्परा स्थापित की, वह आगे से आगे जारी रही। आचार्य और अध्यापक कोई विषय भी पढ़ाएं उनके स्वभाव और आचारण का प्रभाव तो शिष्यों पर पड़ता ही है। इसी दृष्टि से संस्था के संस्थापक किसी अध्यापक अध्यापिका की बौद्धिक प्रतिभा की अपेक्षा उसके चरित्र की ओर अधिक ध्यान देते थे। संस्था की प्रथम आचार्या पंडिता सावित्री देवी के ऊंचे, शुद्ध आचरण और शांत स्वभाव को इसीलिए इतना महत्त्व दिया गया।

ऐसे ही ऊंचे चरित्र के एक अध्यापक, भक्त रैमलदास, बहुत समय तक विद्यालय में धर्म-शिक्षा पढ़ाते रहे। वे आदर्शवादी प्रकृति के पक्के आर्य समाजी थे और स्वामी दयानन्द के प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे। स्वामी जी के ग्रन्थों को वे बड़ी निष्ठा के साथ पढ़ाते थे। उनकी सच्चरित्रता तथा निष्ठा के कई प्रसंग प्रचलित हैं। कहते हैं कि एक बार एक आदर्श ब्रह्मचारी विद्यार्थी की जीवन-चर्चा का परम्परागत वर्णन करते हुए उन्होंने छात्राओं से कहा कि एक ब्रह्मचारी को नंगे पांव रहना चाहिए। इस पर किसी मुंह-फट छात्रा ने कह दिया..... "आप ही गरमियों के मौसम में नंगे पांव विद्यालय आकर देखें।" छात्रा ने तो यह गम्भीरता से नहीं कहा था परन्तु भक्त रैमलदास ने उस दिन से नंगे पांव विद्यालय आना जाना शुरू कर दिया, मौसम चाहे कैसा भी हो। यह नहीं कि उन्होंने रोष में ऐसा किया, बल्कि अपने कहे के अनुसार आचरण करना अपना कर्त्तव्य माना।

चाचा जी का अपना जीवन एक सजीव धर्म-शिक्षण ही था। एक आचार्य और अध्यापक के तीन मुख्य गुण कहे जा सकते हैं, अपने विषय का पांडित्य, विद्यार्थियों के प्रति प्रेम-भाव और पक्षपात-रहित आचरण। ऐसे आचार्य की प्रदान की हुई विद्या ही ठीक से फलवती होती है। 'आचार्य' शब्द के अर्थ ही हैं, "जिसका आचरण अनुकरणीय हो।" विद्यालय में आचार्य शब्द के इस अर्थ का महत्त्व माना जाता था। तभी इस संस्था से पढ़ कर निकली छात्राओं में विद्या और शिक्षा का एक तेज था।

—×—

: 11 :

साथी और सहयोगी

बड़े-बड़े कार्यों में, सामाजिक आन्दोलनों में, प्रायः एक व्यक्ति अवश्य ऐसा होता है, जिसका सर्वस्व-चिन्तन उस कार्य के लिए, उस आन्दोलन के लिए होता है। उस कार्य या आन्दोलन के लिए श्रद्धा रखने वाले, परन्तु मुख्य रूप में अपना कोई दूसरा काम करने वाले, कुछ साथी और सहयोगी उस सर्वस्व-चिन्तन वाले व्यक्ति के इर्द-गिर्द जमा हो जाते हैं। अपना थोड़ा समय देने वाले भी वे लोग उस मुख्य सेवा-साधक का सहारा बन जाते हैं। उसको उनसे नैतिक बल भी मिलता है, व्यवस्था में मदद भी मिलती है और कभी आपात्काल में आश्रय भी मिलता है।

कन्या महाविद्यालय के क्रान्तिकारी कार्य में लाला देवराज सर्वस्व-चिन्तन वाले महानुभाव थे। आपके जीवन का मुख्य ध्येय ही स्त्री-शक्ति को जागृत करना था और इसी ध्येय की पूर्ति के लिए आपकी सभी शक्तियां और गति-विधियां थीं। अपने घर के ज़मींदारी आदि के कार्य को आपने अपने परिवार के दूसरे लोगों पर छोड़ रखा था।

आपके कार्य के सब से पुराने और लगभग पचहत्तर वर्ष तक इस कार्य में सहयोग देने वाले साथी थे रायबहादुर बद्रीदास, जिन्होंने लगभग 1896 में जालन्धर में वकालत शुरू की और जिन्हें लगभग उसी समय लाला जी ने अपने कार्य में खींच लिया। लगभग 30 वर्ष तक, जब तक वे वकालत के लिए लाहौर नहीं चले गए, वे प्रायः प्रतिदिन कुछ समय के लिए आकर विद्यालय के आफिस के आवश्यक कार्य को देखते थे। उन्हीं दिनों एक लम्बे समय तक वे संस्था की प्रबन्ध-कर्तृ-सभा के सैक्रेटरी भी रहे। लाहौर में रहते हुए भी वे संस्था के सहयोगी रहे। 1935 में लाला देवराज जी के देहान्त के पश्चात् वे प्रबन्ध-कर्तृ-सभा के अध्यक्ष बने और चन्द वर्ष पहले, अपनी लगभग सौ वर्ष की आयु के अन्त तक, इस पद पर रहे। वे एक विद्वान् और अध्ययन-शील व्यक्ति थे। पंजाब के जन-जीवन में उनका बहुत आदर का स्थान था। लाहौर के गुरुद्वारा 'शहीद गंज' का मुकद्दमा उन्होंने बिना किसी फ़ीस

के लड़ा था और उसमें विजय प्राप्त की थी। उनकी 'रायबहादुर' की उपाधि उनको उस जन-सेवा कार्य के लिए मिली थी जो उन्होंने इस प्रदेश में 'कोप्रेटिव' आन्दोलन में की थी।

आपके एक साथी और सहयोगी आपके अपने सोंधी परिवार के लाला जेठामल थे। वे भी वकालत करते थे और विद्यालय के आरम्भ से लेकर 1924-25 में अपनी मृत्यु तक, प्राय: प्रतिदिन संस्था में आते थे और अपनी व्यावहारिक बुद्धि से यथोचित मदद करते थे। आपके सगे भतीजे लाला वृन्दावन ज़मीनों के ख़रीदने और मकानों के निर्माण-कार्य में निपुण थे और इस दिशा में पूरा सहयोग देते थे। एक दफ़ा संस्था को अचानक कई हज़ार रुपए की तत्क्षण जरूरत पड़ गई, तो उन्होंने अपने रसूख से, इतवार के दिन बैंक खुलवा कर और रुपया निकलवा कर दिया। आपके जमींदारी के तथा अन्य घरेलू कामों में भी वे आपकी मदद करते रहते थे।

आपके भाई रायज़ादा भगतराम पंजाब के चोटी के वकील थे। सरकार में भी उनका रसूख था। सारे शहर में उनका रौब था। उनके कारण लड़कियों की इस संस्था को सुरक्षा का आश्वासन था। जैसे कि पहले कहीं कहा जा चुका है एक बार कुछ गोरे सैनिक, सड़क पर जा रही विद्यालय की छात्राओं की पंक्ति तोड़ कर बीच में से गुज़र गए, तो उन्होंने अपने रसूख से वह क्षेत्र सैनिकों के लिए वर्जित क्षेत्र घोषित करवा दिया। इसी तरह संस्था की राष्ट्रीय गति-विधियों के कारण एक बार संस्था की तलाशी लेने की बात निकली तो रायज़ादा साहिब ने तत्क्षण एक ऊंचे अधिकारी को फ़ोन पर कहा....."आप यह देख लें कि संस्था मुझे बहुत प्रिय है और उसके लिए मैं अपना सब कुछ लगा सकता हूं।..."। सरकार को तलाशी की बात छोड़नी पड़ी।

शहर के एक दूसरे वकील लाला कर्म चन्द बाहरी भी लगभग 1913-14 से, आपकी मृत्यु के बाद तक, संस्था की सेवा करते रहे। आपके बाद कुछ देर तक वे प्रबन्ध-कर्तृ-सभा के अध्यक्ष भी रहे।

आपके एक सहयोगी और साथी लाला जगन्नाथ मित्तल, 1925-26 में अपनी वकालत के आरम्भ-काल से लेकर कुछ वर्ष पहले तक, अपनी लगभग अस्सी वर्ष की आयु तक, विद्यालय की प्रबन्ध-कर्तृ-सभा के सैक्रेटरी रहे। वे बताते हैं....."मेरी वकालत के आरम्भ ही में एक दिन लाला जी मेरे पास आए। तभी आपने मुझे अपने कार्य में खींच लिया और कुछ ही दिनों बाद मुझे सैक्रेटरी का उत्तरदायित्व संभाल दिया....."।

शहर के एक दूसरे वकील लाला रामकृष्ण भी, जो इस शताब्दी के आरम्भ से एक लम्बे समय तक आर्य प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष रहे और जिनका आर्य समाज के क्षेत्र में बहुत सन्मान और आदर था, आपके प्रशंसकों और सहयोगियों में

से थे।

अपने इन सहयोगियों और साथियों के साथ लाला जी के सम्बन्ध बहुत मधुर थे। सभी आपका आदर करते थे और आपको उन सब पर विश्वास था। आचार्या कुमारी लज्जावती बताती हैं.....

".....विद्यालय के शहर से बाहर, अपने वर्तमान स्थान पर आ जाने पर भी, आपके कई साथी प्रायः प्रतिदिन शाम को संस्था में आते थे और काम-काज के सम्बन्ध में विचार विमर्श करते थे।"

—×—

: 12 :

पारिवारिक वातावरण

आरम्भ ही से विद्यालय की एक विशेषता रही कि उसका वातावरण एक परिवार का सा था। आरम्भ में चाचा जी के अपने घर पर ही एक छोटी सी कन्या पाठशाला थी, जो आपकी माता जी की कोशिश से चल रही थी। जब नई बाकायदा पाठशाला चलाई गई, तो भी आपके साथ आपकी माता जी और आपकी पत्नी सहयोग देती रहीं। आरम्भ में आप और आपके सहयोगी अपने परिचित परिवारों की कन्याएं पाठशाला के लिए लाते थे। कन्याओं के परिवारों के साथ व्यक्ति-गत सम्पर्क के कारण, कन्याएं अपने घर के से वातावरण में रहती थीं।

जब विद्यालय के साथ आश्रम बना तो भी पहले पहल सामान्यत: दूर नज़दीक के परिचित आर्य समाजी परिवारों की लड़कियां आईं। उनमें से कुछ लड़कियां तो पारिवारिक परिचय के कारण कुछ दिनों तक आपके परिवार ही में रहीं। प्राचीन काल में छात्र युवक ऋषियों के घरों में रह कर विद्या-अध्ययन करते थे। कन्या महाविद्यालय का भी वैसा ही घर का सा वातावरण था।

जब तक विद्यालय शहर में था, दोनों छात्रावास आपके घर के बिल्कुल समीप थे। आपकी माता जी और आपकी पत्नी लगातार घण्टों तक छात्रावास में काम करती थीं, कन्याओं की देख-रेख करती थीं। आप भी बाकायदा तौर पर छात्रावास में आते थे। कन्याओं को भी आपके घर में जाने की अनुमति मिल जाती थी।

विद्यालय और छात्रावास का आकार बढ़ जाने पर भी और बड़ी श्रेणियों तथा छात्रावास के शहर से बाहर खुले स्थान पर चले जाने पर भी, वह पारिवारिक वातावरण बना रहा। आपका बाकायदा संस्था में आना और पिता के समान सब की पढ़ाई और सुख-सुविधा की जानकारी रखना तथा छोटी-छोटी नई आई हुई कन्याओं के साथ खेलना जारी रहा।

विद्यालय की पहली आचार्या, पंडिता सावित्री देवी भी, जो संस्था के लगभग आरम्भ-काल से 1918 में अपनी मृत्यु तक, संस्था में रहीं, संस्था ही को अपना सर्वस्व

समझती थीं। वे बड़ी बहन जी कहलाती थीं। वे स्वभाव से और आपकी प्रेरणा से आप ही के ढांचे में ढल गई थीं। संस्था के, विशेषत: संस्था के छात्रावास के, इस पारिवारिक वातावरण ही के कारण कन्याएं जीवन भर के लिए संस्था की हो जाती थीं।

चाचा जी स्थान-स्थान वर आर्य समाजों के उत्सवों पर जाते थे तो उन-उन स्थानों की अपनी पुरानी कन्याओं और उनके परिवारों से भी मिलते थे, पढ़ रही कन्याओं के परिवारों में भी जाते थे। आपके इस व्यक्ति-गत सम्बन्ध और परिचय के आधार पर एक विशाल विद्यालय-परिवार विकसित हो गया था, जिसके प्रेरणा-पुरुष आप थे। आपकी इस प्रेरणा से विद्यालय से निकली सैंकड़ों कन्याएं स्थान-स्थान पर पाठशालाएं खोल कर या अपने परिवारों ही में स्त्री-शिक्षण का कार्य करने लगी थीं।

संस्था के इस पारिवारिक वातावरण का परिणाम यह था कि दु:ख-सुख में छात्राएं परस्पर मिलजुल कर एक दूसरी की मदद करती थीं। उदारहरण के लिए एक बार शहर में और छात्रावास में भी हैज़े की बीमारी फूट पड़ी और बीमार छात्राओं की सेवा के लिए कुछ कन्याओं को नियुक्त करके शेष को अलग रख दिया गया, तो उन अलग रखी गई छात्राओं ने आपको पत्र में लिखा—

".....पिता-तुल्य पूजनीय और माता-तुल्य स्नेह-दाता, श्रीयुत चाचा जी ! हम कन्याओं की, जिन्हें आपने अलग भेज दिया है, विनम्र प्रार्थना है कि बीमार बहनों की सेवा करने वाली हमारी बहनें अब थक गई होंगी, क्योकि दिन-रात काम करते-करते थकावट हो ही जाती है। इसलिए अब उनकी जगह हमें सेवा का अवसर दीजिए। हमारी इस प्रार्थना को ज़रूर स्वीकार कीजिएगा।"

क्वेटा की कन्या दुर्गावती यह पत्र लेकर गई। उसके घर से रेलवे पास आया हुआ था ताकि वह घर जा सके। उसे बताया गया कि यदि सेवा करनी होगी तो वह घर नहीं जा सकेगी। उसने तत्क्षण घर जाने का मोह छोड़ कर कह दिया—

".....मैं घर जाने की अपेक्षा सेवा करना बेहतर समझती हूं.....।"

—×—

: 13 :

कुछ स्वस्थ परम्पराएं

स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा आर्य समाज के आन्दोलन का एक महत्त्वपूर्ण अंग अतीत का गौरव था। लगभग एक हज़ार वर्ष पहले तक यह देश स्वतन्त्र रहा था और इसका इतिहास गौरव-पूर्ण था। उस अतीत काल की परम्पराएं नए भारत को प्रेरणा देने वाली हैं। कन्या महाविद्यालय में उन प्राचीन पस्म्पराओं को एक सुन्दर, प्रेरणा-प्रद रूप दिया गया।

उदाहरण के लिए वर्षा-काल के आरम्भ में गुरु-पूर्णिमा का प्राचीन पर्व आता है। इस पर्व पर गुरु-जनों का, शिक्षकों का, आदर-सत्कार किया जाता था। विद्यालय में भी इस पर्व को श्रद्धापूर्वक मनाया जाता था। प्राप्त की गई विद्या तभी फलवती होती है जब शिष्य के अन्तःकरण और आचरण में गुरु-जनों के प्रति आदर और श्रद्धा के भाव हों। इस दिन विद्यालय की छात्राएं अपने अध्यापकों और अध्यापिकाओं को भोजन आदि के उपहारों से सम्मानित करती थीं।

इसी तरह रक्षा-बन्धन का पर्व विद्यालय का एक विशेष पर्व था। कन्याएं अपने गुरु-जनों को राखी बांधती थीं और विद्यालय के हितैषियों को भी राखी भेजती थीं। उत्तर में वे हितैषी-जन संस्था को कुछ आर्थिक सहायता भी भेजते थे। 1922-23 में लाला लाजपतराय धर्मसाला जेल में थे, तो राखी के पर्व पर विद्यालय की छात्राओं ने उन्हें राखी भेजी। उस के साथ उन्होंने स्वयं काते गए सूत के बुने कपड़ों के दो जोड़े ; दो कुर्त्ते, दो पाजामे और दो टोपियां, भेजे। उत्तर में लाला जी जो पत्र लिखा, उसमें उन्होंने उदात्त और काव्य-मय भावनाओं को व्यक्त करते हुए लिखा—

".....परमात्मा तुम छात्राओं को सीता की पवित्रता, रानी पद्मिनी की सुन्दरता और लक्ष्मीबाई की वीरता प्रदान करें।"

ग्यारहवीं शताब्दी में महमूद आदि के आक्रमणों के बाद देश का जीवन ह्रास की ओर जाने लगा था। इस्लामी राज्य की लम्बी शताब्दियों में, देश की सामान्य दुर्बलता

और हीनता के बावजूद, उस काल के इतिहास के कुछ प्रेरणामय वीर-प्रसंग भी सामने आते हैं। इन प्रसंगों में राजस्थान के इतिहास का महाराणा प्रताप की वीरता का प्रसंग देश के लिए प्रेरणा और गौरव का स्रोत रहा है। हिन्दुस्तान के सम्राट् अकबर और मेवाड़ के महाराणा प्रताप के संघर्ष का यह प्रसंग काव्य की कल्पनाओं का विषय रहा है। लाला देवराज की राजपूती वीरता की कहानियों के भाव अपनी सीधी-सादी कविताओं में गूंथते रहते थे।

1932 में, संस्था में, नगर से बाहर के स्थान पर, 'कृष्णा-हाल' नाम से भवन बना तो लाला देवराज जी को यह प्रेरणा हुई कि उस इमारत की बुनियाद में हल्दीघाटी की मिट्टी डाली जाए। कृष्णा एक विधवा थीं, जिन्होंने कुछ समय विद्यालय की सेवा की थी और मृत्यु के समय अपना कुछ रुपया और अपने भूषण संस्था के भवन-निर्माण के लिए छोड़े थे। उस स्मारक भवन के निर्माण से पहले लाला जी स्वयं हल्दीघाटी नाम के उस स्थान पर पहुंचे, जहां सम्राट् अकबर की सेनाओं के साथ महाराणा प्रताप का युद्ध हुआ था और जहां की मिट्टी उस वीरता की भावना से सनी हुई है। आज भी कृष्णा भवन को देखते हुए दर्शक का ध्यान वीरता की प्रतीक मिट्टी की ओर और संस्था के संस्थापक की उस राष्ट्रीय भावना की ओर जाता है।

वास्तव में लाला देवराज जी ऐसे अवसरों और प्रसंगों की तलाश में रहते थे जिन से छात्राओं को देश-प्रेम, राष्ट्रीयता और वीरता की प्रेरणा मिल सके। आपकी यही इच्छा आपकी मृत्यु के बाद, 1937 में आचार्या कु० लज्जावती द्वारा, संस्था के विशाल आंगन में स्थापित एक ऊंचे खम्भे में व्यक्त हुई, जो विद्यालय की शारदा नाम की एक छात्रा के पिता के प्रदान किए गए रुपए से स्थापित किया गया और जिस पर प्रति सप्ताह लहराया गया राष्ट्र-ध्वज और जिसके नीचे प्रति सप्ताह गाया गया राष्ट्र-गान तब से लेकर आज तक छात्राओं के लिए राष्ट्रीय प्रेरणा के स्रोत हैं।

—×—

: 14 :

राष्ट्रीयता

लाला देवराज जी के हृदय में गहरी राष्ट्रीय भावनाएं थीं। एक सम्पन्न सरकार-परस्त घर में पैदा हो कर और एक लम्बे समय तक ज़ैलदार तथा आनरेरी मैजिस्ट्रेट के रूप में कार्य करते हुए भी आप अपने विद्यालय में राष्ट्रीय भावनाओं का संचार करते थे। कन्याओं के लिए लिखी गई अपनी सरल और सुबोध कविताओं में राष्ट्रीय भावनाएं गूंथ कर आप उन्हें कन्याओं से गवाते और उन्हें याद कराते थे। आर्य समाज द्वारा किया गया प्राचीन वैदिक संस्कृति का प्रचार तो राष्ट्रीयता का एक आधार था ही। अपनी इसी राष्ट्रीय भावना तथा स्वतन्त्र वृत्ति के कारण आपने बड़ी भारी सरकारी मदद को ठुकरा कर भिक्षा पर निर्वाह करना स्वीकृत किया।

आपके स्वभाव में गहरी पैठी हुई यह राष्ट्रीयता गांधी-युग आने के साथ एक ज्वलंत रूप में प्रकट हुई। उस समय आचार्या कुमारी लज्जावती का युग आरम्भ हो चुका था। 1918 में आचार्या सावित्री देवी की मृत्यु के बाद, उस समय तक उपाचार्य के रूप में काम करने वाली, विद्यालय की पुरानी छात्रा, कुमारी लज्जावती संस्था की आचार्या नियुक्त हुईं। आचार्या जी ने भी आपकी और बाद में लाला लाजपतराय की प्रेरणा से अपने अन्तःकरण की स्वाभाविक राष्ट्रीयता को एक प्रखर रूप में विकसित कर लिया था।

1919 का कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन जलियाँवाला काण्ड की छाया में, अमृतसर में सम्पन्न हुआ था। सरकारी दमन-चक्र के कारण उत्पन्न हुए भय के उस वातावरण में, आर्य समाज के नेता, स्वामी श्रद्धानन्द ने उस अधिवेशन की स्वागत कारिणी-समिति की अध्यक्षता स्वीकृत करके, उस समय के भय के वातावरण को बदला। उस अधिवेशन में चाचा जी, उनके साथी तथा सहयोगी, रायबहादुर बदरीदास और लाला जेठामल भी सम्मिलित हुए और कुमारी लज्लावती के नेतृत्व में विद्यालय की छात्राओं ने अधिवेशन में राष्ट्र-गान गाया।

1920 के विद्यालय के वार्षिक-उत्सव पर गांधी जी ने आना स्वीकृत कर लिया था, परन्तु बाद में असहयोग-आन्दोलन में व्यस्तता के कारण अपनी मजबूरी प्रकट करते हुए जब उन्होंने लिखा कि "मुझे इस धर्म-संकट से बचाएं" तो लाला लाजपतराय को उस उत्सव की अध्यक्षता के लिए बुलाया गया।

गांधी जी के चरखे और खादी के कार्य-क्रम के आरम्भ होते ही संस्था खादीमय हो गई। कन्याएं चरखा कातने, खादी बुनने और पहनने लगीं।

1920-21 के असहयोग आन्दोलन के समय हमारे देश में कदाचित् कन्याओं की यही संस्था सब से आगे थी। संस्था का वातावरण तो खादीमय था ही। इसके साथ संस्था की पुरानी छात्राओं ने स्थान-स्थान पर उस आन्दोलन में सहयोग दिया। भारत की पहली सत्याग्रही स्त्री विद्यालय की पुरानी छात्रा 'पार्वती' थी। शहर में कोई महान् कांग्रेसी नेता आएं 'वन्दे-मातरम्' गान तथा दूसरे राष्ट्रीय गाने गाने वाली विद्यालय ही की छात्राएं होती थीं। उस समय, वर्तमान दोआबा कालिज के समीपस्थ; सूखा-तालाब, गांधी मण्डप के नाम से कांग्रेस के जलसों और व्याख्यानों का स्थान होता था। जब अन्य प्रान्तों के, देश बन्धु चितरंजन दास जैसे, हिन्दी न बोलसकने वाले, नेता व्याख्यान देते थे, तो बहुधा विद्यालय की आचार्या कुमारी लज्जावती उनके व्याख्यानों का हिन्दी में अनुवाद करती थीं।

भारतीय युवकों के हृदय-सम्राट् सरदार भगत सिंह और उनके साथियों की क्रांतिकारी गति-विधियों में संस्था की पुरानी छात्राओं, सुशीलादेवी और लीलावती ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया। सरदार भगतसिंह का केस लड़ने और प्रीवी कौंसिल तक अपील करने का कार्य, आचार्या कुमारी लज्जावती ने, कुछ दूसरे साथियों की मदद से, सम्पन्न किया।

1929 के लाहौर में हुए कांग्रेस अधिवेशन में, आचार्या जी के नेतृत्व में काम करने वाली लगभग डेढ सौ स्वयं-सेविकाओं में से, लगभग आधी कन्या महाविद्यालय की छात्राएं थीं। तत्पश्चात् कन्या महाविद्यालय में हर सोमवार को ध्वजा-अभिवादन और राष्ट्र-गान का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। 1937 में संस्था के मैदान के दरम्यान एक ऊंचा स्तम्भ गाड़ा गया, जिस पर लहराने वाली राष्ट्र-ध्वजा, अंग्रेज़ सरकार के घोर-दमन के समय भी, दूर-दूर से दिखाई देती थी और देश की आन का संकेत करती थी।

समय-समय पर देश के प्रायः सभी राष्ट्रीय नेता संस्था में पधारते रहे। स्वतन्त्र भारत में सम्पन्न हुए कांग्रेस के अमृतसर अधिवेशन में भी विद्यालय की छात्राओं ने राष्ट्र-गान तथा अन्य गाने गाए।

इस प्रकार आरम्भ-काल से राष्ट्रीयता संस्था के वातावरण का अंग रही और सस्था को अपनी इस विरासत पर गर्व है।

—×—

: 15 :

समाज-क्रान्ति की भावना

पराधीनता की लम्बी शताब्दियों से हमारा देश जड़ता की भावनाओं में जकड़ा हुआ था, जीवन के लगभग प्रत्येक अंग पर निर्जीव और अर्थहीन रूढ़ियाँ छाई हुई थीं। जीवन के निरन्तर ह्रास से पुरानी सजीव परम्पराएं लुप्त हो गई थीं।

भारत की स्त्री उस जड़ता और उन निर्जीव रूढ़ियों का विशेष शिकार थी। जब देश के पुरुष भी, राजा महाराजा भी, आभूषणों को पहनते हुए गर्व अनुभव करते थे, तो स्त्रियों के लिए तो आभूषण प्राणों के समान प्रिय बन गए थे। परदे के रिवाज ने स्त्री को चौंके-चूल्हे और घर के तंग आंगन में बन्द कर दिया था। दूध पीती बच्चियों की शादियां होती थीं और गुड़ियों से खेलने वाली लड़कियां विधवाएं कहलाती थीं। स्त्री ने अपने पतन की अवस्था ही को अपनी स्वाभाविक स्थिति मान लिया था।

लाला देवराज जी का स्त्री-शिक्षा का आन्दोलन वास्तव में स्त्री-शक्ति के जागरण का आन्दोलन था। आपका उद्देश्य कन्याओं को साक्षर बनाना और किताबी शिक्षा देना मात्र नहीं था। आप कन्याओं को प्रबुद्ध, तेजस्वी और कर्मशील बनाना चाहते थे, उनके जीवन की घुटन को दूर करके उनके जीवन को विकसित करना चाहते थे और जड़ तथा निर्जीव रूढ़ियों से मुक्त करना चाहते थे। आपका प्रिय वाक्य था कि 'ये कन्याएं देवयानी बनें।'

विद्यालय की स्थापना के पहले या दूसरे वर्ष की रिपोर्ट देते हुए आपने हर्ष प्रकट किया था कि विद्यालय में आने वाली बहुत सी कन्याओं ने गहने पहनना छोड़ दिया था। स्त्रियों का गहने पहनना और गहनों से प्यार करना उनके द्वारा दासता के जीवन की सुन्दर स्वीकृति ही तो है।

इस प्रकार आपके आन्दोलन से स्त्रियों में परदे और घूंघट का रिवाज भी दूर होता गया। यदि आप किसी उत्सव में किसी स्त्री को घूंघट में देखते थे, तो कभी-

कभी उसके पास जाकर प्यार से कहते थे, ".....देख बेटी, तुम्हारे आस पास की सब बहनें शेरों की तरह बैठी हैं। तू इनके बीच में गीदड़ बन कर क्यों बैठी है?" इन पुरानी निर्जीव रूढ़ियों को तोड़ने में आपका परिवार सदा आगे रहा। मृत्यु पर सियापे और ऊंचे-ऊंचे रोने-धोने और लम्बे शोक के रिवाज को दूर करने में आपके परिवार ने पहल की। आपके पिता की मृत्यु पर आपकी माता ने शोक-प्रदर्शन में संयम के आचरण से शेष परिवारों के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत किया।

शिक्षा और प्रचार के फैलने से लड़के लड़कियों की विवाह की आयु बढ़ने लगी और शनैः शनैः बाल-विवाह का रिवाज दूर हुआ। आप विधवाओं, विशेषतः बाल-विधवाओं के विवाह के पक्ष में थे, परन्तु विधवाओं को प्रेरणा देते थे कि वे त्याग, तपस्या और समाज-सेवा के जीवन को अपनाएं। एक प्रतिभाशाली विधवा को आप समाज-सेवा के जीवन के लिए तैयार कर रहे थे। अन्ततः जब उसने विवाह कर लिया और आपके किसी साथी ने इस सम्बन्ध में आप की प्रतिक्रिया पूछी तो आपने कहा,.....

".....समाज के एक सामान्य सदस्य के रूप में मैं उस लड़की के विवाह कर लेने से खुश हुं, परन्तु एक समाज-सुधारक के नाते मैं उसका समाज-सेवा का जीवन अपनाना बेहतर समझता था।....."।

हमारे समाज में दहेज और विवाह-शादियों के आडम्बर की प्रथा अभी तक चली आती है। यह प्रथा स्त्री-जाति का अपमान है। लड़की तभी ग्रहण योग्य है, जब उसके साथ दाज-दहेज हो, उसका मतलब है कि लड़की के व्यक्तित्व का मूल्य नकारात्मक है। लड़की के व्यक्तित्व की कद्र होनी चाहिए, न कि उसके साथ मिलने वाले दाज-दहेज की। इस मुआमले में कन्याएं स्वयं दोषी हैं, क्योंकि वे स्वयं चाहती हैं कि अच्छे दाज-दहेज के साथ जाएं। इस का मतलब है कि या तो उनके अन्दर वास्तव में गुणों की कमी है और वे उस कमी की पूर्ति दाज-दहेज से करना चाहती हैं या उन्हें अपने गुणों पर विश्वास नहीं है। आज की पढ़ी लिखी कन्याएं भी इस दृष्टि से बहुत पिछड़ी हुई हैं। 1915-16 में विद्यालय में पढ़ी एक लड़की, ठाकुर देवी ने आज की इन कन्याओं के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत किया था। एम० बी० बी० एस० में पढ़ रहे एक लड़के के साथ उसकी सगाई तय हो रही थी। परिवार भी सम्पन्न था और लड़का भी अच्छा था। परन्तु बातचीत में लड़के ने दहेज और सोने का संकेत कर दिया। यह सुन कर ठाकुर देवी ने उस लड़के के साथ विवाह करने से साफ इनकार कर दिया। जब उसे समझाया गया, तो उसने जोरदार शब्दों में कहा..... "वह मुझ से विवाह नहीं करना चाहता, बल्कि सोने के ढेर से विवाह करना चाहता है, कहीं कर ले।" उसके स्थान पर उसने डी.ए.वी कालिज के एक, पचहत्तर रुपए मासिक लेने वाले आजीवन-सदस्य के साथ विवाह करना पसन्द किया, जिसे उसके अपने व्यक्तित्व की कद्र थी। यह साहस आज से साठ वर्ष पहले की कन्या का था, जिसे लाला देवराज से ऐसी हिम्मत और ऐसी दृष्टि मिली थी।

—×—

: 16 :

संस्था का पाठ्य-क्रम

जब कन्या महाविद्यालय की स्थापना हुई, उस समय संस्थापकों के सामने शिक्षा का कोई पाठ्य-क्रम नहीं था। तब तक केवल कुछ सरकारी या ईसाई ज़नाना स्कूल थे। उनके पाठ्य-क्रम विद्यालय के उद्देश्यों के अनुकूल नहीं थे। इस कमी को पूरा करने के लिए ला० देवराज ने हिन्दी भाषा के शिक्षण के लिए पाठ्य-पुस्तकों की अपनी स्वतन्त्र रचना करना आरम्भ किया, जिस रचना में राष्ट्रीयता और धर्म-भावना ओतप्रोत थी। वे पुस्तकें बहुत पसन्द की गईं। जैसे-जैसे अन्य स्थानों पर भी आर्य कन्या पाठशालाएं खुलती गईं, वैसे-वैसे उन पुस्तकों की मांग भी बढ़ती गई। पंजाब प्रदेश के बाहिर की कई आर्य कन्या पाठशालाओं ने भी उन पुस्तकों को अपनाया।

उन पुस्तकों में से कुछ के पन्द्रह-पन्द्रह बीस-बीस तक और एक दो के तो तीस-तीस संस्करण निकले। कुल पुस्तकों की प्रकाशित प्रतियों की संख्या दस लाख तक पहुंचती है।

धर्म-शिक्षा और संस्कृत तो विद्यालय के मुख्य विषय थे। इस सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है।

गणित या अंग्रेज़ी के विषय भी रखे गए परन्तु उस ज़माने में इन विषयों पर अधिक ज़ोर नहीं था। बहुत वर्षों तक गणित की शिक्षा का उद्देश्य साधारण हिसाब किताब कर लेना और अंग्रेज़ी की शिक्षा का उद्देश्य केवल पत्र पर ऐड्रैस लिख-पढ़ लेना ही रहा।

भूगोल तथा इतिहास के शिक्षण के प्रति भी पहले वर्षों में बहुत ध्यान नहीं था।

एक विषय के शिक्षण के क्षेत्र में विद्यालय ने क्रान्तिकारी कार्य किया। वह विषय था संगीत। भारतीय संस्कृति में संगीत का स्थान एक आध्यात्मिक विद्या जैसा है। हमारे वेदों में एक वेद साम-वेद, संगीत-प्रधान है। परन्तु देश की अन्य विद्याओं के ह्रास के समान इस विद्या का भी बहुत ह्रास हुआ। यह विद्या ऐसे लोगों के हाथों

में पड़ गई, जिनका उद्देश्य राजा-महाराजाओं के भोग-विलास में सहयोग देना मात्र था। इस दृष्टि से इस विद्या को एक हीन स्थान प्राप्त हो गया।

लाला देवराज जी ने अपने जीवन के आरम्भ-काल में स्त्रियों को भद्दे गाने गाते सुन कर बहुत दुःख अनुभव किया था। आपने संगीत की भारतीय विरासत को पहचान लिया था और अपनी संस्था में इस दिशा में कुछ करने का निश्चय कर लिया था। आपने कन्याओं को वेद-मन्त्र और धार्मिक गाने लिखा कर आर्य-समाजों के उत्सवों में उनके कार्यक्रम रखने तक का साहस किया।

उस समय संगीत-शिक्षण के लिए कोई अध्यापिका या चरित्रवान् अध्यापक मिलना भी मुश्किल था। विद्यालय के छात्रावास की अधिष्ठात्री एक महाराष्ट्रीय महिला, सुभद्राबाई की पुत्री को संगीत की शिक्षा का कुछ ज्ञान था। उसी से आरम्भ किया गया। बाद में विद्यालय के एक पुरुष अध्यापक, पं० देवीचन्द को लाहौर के गन्धर्व महाविद्यालय में भेज कर उन्हें तीन वर्ष तक संगीत की शिक्षा दिलाई गई और पं० विष्णुदिगम्बर की पुस्तकों के आधार पर कन्याओं के लिए संगीत का पाठ्य-क्रम बनाया गया।

खाना बनाने तथा रोगी-सेवा की शिक्षा कन्याओं को छात्रावास के जीवन में व्यावहारिक रूप में मिलती ही थी।

कन्याओं में लिखने की रुचि पैदा करने के लिए समय-समय पर संस्था की अपनी पत्रिकाएं प्रकाशित की जाती रहीं। 'पांचाल-पंडिता' शायद देश में, या कम से कम देश के इस भाग में, स्त्रियों की पहली पत्रिका थी। कन्याओं में वक्तृता की रुचि पैदा करने के लिए 'वाग्-वर्धिनी' सभा तो थी ही, साथ ही उनके लिए आर्य समाज का प्लेट-फार्म भी था।

विद्यालय की अपनी उपाधियां थीं, अपने 'सर्टिफिकेट' थे। प्राइमरी श्रेणियां पास करने वाली कन्या 'सभ्या' कहलाती थी और मिडल की श्रेणियां पास करने वाली 'शिक्षिता'। स्कूल की शिक्षा समाप्त करने पर 'दीक्षिता' की उपाधि मिलती थी। जब स्कूल से ऊपर की श्रेणियां आरम्भ हुई तो 'उप-स्नातिका' और 'स्नातिका' की उपाधियां जारी हुईं। विद्यालय की अन्तिम उपाधि 'स्नातिका' थी। स्नातिकाओं को उपाधियां देने का वैसा ही उत्सव होता था जैसा कालिजों और विश्व-विद्यालयों में डिग्रियां देने का होता है।

इस प्रकार विद्यालय का अपना स्वतन्त्र ध्येय था। स्वतन्त्र पाठ्य-क्रम था और स्वतन्त्र वातावरण था। बहुत लम्बे समय तक, नई परिस्थितियां पैदा हो जाने के कारण परिवर्तन होने तक यह चलता रहा।

—×—

: 17 :

मध्यम मार्ग

उन्नीसवीं शताब्दी में हमारे देश में अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना से और पाश्चात्य विचारों के सम्पर्क से जो नया चिन्तन पैदा हुआ, उससे नई समाज-रचना के कुछ कार्यक्रम आरम्भ हुए। सरकार द्वारा जारी की गई शिक्षा-प्रणाली के फलस्वरूप देश के युवकों में अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति तिरस्कार की भावना पैदा होने लगी थी और पाश्चात्य जीवन-दृष्टि का आकर्षण बढ़ रहा था। ऐसी परिस्थितियों में आर्य समाज द्वारा लाहौर में डी-ए-वी स्कूल और कालिज की स्थापना की गई, जिससे स्थान-स्थान पर ऐसी शिक्षण-संस्थाओं का एक जाल बिछने लगा। नई अंग्रेज़ी शिक्षा युवकों को नौकरियां देने वाली थी और उसका प्रलोभन आकर्षक था। इन नई भारतीय शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा का पाठ्य-क्रम तो सरकारी था और मिलने वाली उपाधियां भी वही थीं, परन्तु संस्थाओं में किसी हद तक भारतीय वातावरण बनाए रखने की और थोड़ी बहुत धार्मिक शिक्षा देने की कोशिश ज़रूर थी।

परन्तु कुछ ही वर्षों में यह अनुभव होने लगा कि शिक्षा के इस प्रयोग से सरकारी और दूसरी नौकरियों के लिए अधिक युवक तो तैयार होने लगे थे परन्तु उन युवकों पर भारतीय संस्कृति के आदर्शों का प्रभाव बहुत कम पड़ता था। इस अनुभव के आधार पर आर्य-समाज के आदर्शवादी वर्ग ने, जिसके नेता जालन्धर के महात्मा मुन्शी राम थे, हरिद्वार के पास गुरुकुल की स्थापना की, जिस में युवकों को प्राचीन भारतीय आदर्श के अनुसार शिक्षा-दीक्षा देने का कार्यक्रम बना। स्कूलों और कालिजों की शिक्षा तो उस समय की धारा के साथ तैरने जैसी थी, जब कि गुरुकुल की शिक्षा-दीक्षा समय की धारा के विरुद्ध तैरने का प्रयत्न था। गुरुकुल में आदर्शवादी आर्य-समाजी परिवारों के लड़के आए और उन्हें प्राचीन सादगी और तपश्चर्या के आधार पर प्राचीन ढंग की शिक्षा देकर एक आदर्श जीवन के लिए तैयार किया गया। संस्था से निकल कर उनमें से बहुत से युवकों ने देश के सामाजिक सेवा-क्षेत्रों में और बाद में, स्वतन्त्रता-संग्राम आरम्भ होने पर, राष्ट्रीय क्षेत्रों में भी मार्के का काम किया। परन्तु त्याग और तपस्या के मार्ग पर चलने वाले युवक थोड़े ही हो सकते थे। तो भी इस शिक्षा-प्रणाली के साथ तेजस्वी जीवन की एक आभा जरूर रही।

कन्या महाविद्यालय के संस्थापक ने अपनी संस्था में एक मध्यम मार्ग को अपनाया। आपने न तो सरकारी पाठ्य-क्रम का अनुसरण किया और न सरकारी उपाधियों का मोह रखा। संस्था में अपना स्वतन्त्र पाठ्य क्रम और वातावरण था। शिक्षा नि:शुल्क थी, केवल भोजन का मामूली खर्च लिया जाता था। अमीर गरीब सभी छात्राएं एक सा वेश, पीली साढ़ी पहनती थीं। उस समय लड़कियों को नौकरियों के लिए तैयार करने की तो बात ही नहीं थी। संस्था का वातावरण सादगी का था। आचार्या कुमारी लज्जावती बताती हैं कि 1913 में जब संस्था की ऊपर की श्रेणियां और छात्रावास शहर से बाहर ले जाए गए, तो छात्रावास के बन चुके एक भाग के सिवाए शेष निवास-स्थान तथा शिक्षण-स्थान सामान्यत: टीन की चादरों के छप्पर थे। उस ज़माने में आज की शिक्षण-संस्थाओं के आराम के साधन कहाँ थे ? तो भी अध्यापक अध्यापिकाओं और छात्राओं के सामने नव-जीवन निर्माण का ऊंचा लक्ष्य जरूर था।

सादगी और तपश्चर्या की दृष्टि से विद्यालय ने एक माध्यम मध्यम मार्ग अपनाया उदाहरण के लिए गुरुकुल में छात्रों के सोने के लिए लकड़ी के तख्त रखने का आग्रह था परन्तु विद्यालय के छात्रावास में चारपाइयों का प्रबन्ध था, जिन्हें लड़कियां आसानी से अन्दर-बाहिर ले जा सकें। लड़कियां छुट्टियों में और अन्य आवश्यक अवसरों पर घर जा सकती थीं। उनके लिए गुरुकुल की तरह नंगे पांव रहने की शर्त भी नहीं थी।

लाला देवराज जी की प्रेरणा तो रहती थी कि प्रतिभा-शाली लड़कियां, विशेषत: बाल-विधवाएं, त्याग और सेवा का मार्ग अपनाएं परन्तु आप जानते थे कि अन्तत: अधिकांश लड़कियों ने घरों को बसाना था। आपके सामने यह आदर्श रहता था कि वे अपने जीवन में सफल और सुखी रहते हुए, आदर्शोन्मुख रहें। 1935 में आपके जाने के बाद, नई परिस्थितियों के अनुसार संस्था को नया मोड़ देना पड़ा और सरकारी शिक्षा और उपाधियों की बात सामने आई। तब से संस्था अपने नए रूप में ढलने लगी।

-X-

: 18 :

अन्य प्रदेशों के साथ सम्पर्क

हमारे देश में जब-जब कहीं कोई ऐसा महापुरुष पैदा हुआ है, जिसने सारे देश के जीवन-निर्माण के लिए कोई आन्दोलन उठाया तब तब उस आन्दोलन के फलस्वरूप देश के भिन्न-भिन्न दूरस्थ और अलग भाषाएं बोलने वाले प्रदेशों में भी एक सजीव सम्पर्क पैदा हुआ है और एकता की भावना का विकास हुआ है। स्वामी दयानन्द भी एक ऐसे ही महापुरुष थे। उन्होंने प्राचीन वैदिक संस्कृति के पुनरुत्थान का आन्दोलन आरम्भ किया और जहां जहां वे गए, वहाँ वहां उनके विचारों का स्वागत करने वाले श्रद्धालु मिल गए। उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज के केन्द्रों में पारस्परिक सम्पर्क और सहयोग होना स्वाभाविक था।

19वीं शताब्दी में देश में जो नव-जागरण हुआ उसके मुख्य केन्द्र तीन थे, बंगाल, बम्बई राज्य और पंजाब। आर्य समाज की स्थापना सर्वप्रथम बम्बई में हुई, परन्तु वहां उस पौधे की जड़ न लग सकी। वास्तव में आर्य समाज की विचार-धारा पंजाब तथा अन्य उत्तर पश्चिमी प्रदेशों के अधिक अनुकूल थी और यहीं इसका विकास हुआ। तो भी जहां जहां अन्यत्र भी स्वामी जी ने अपना विचार फैलाया था, वहां भी उसका कुछ प्रभाव तो रहा। स्वामी जी बम्बई राज्य के, गुजरात काठियावाड़ के, तो रहने वाले ही थे। इसलिए वह राज्य और प्रदेश तो आर्य-समाज के लिए तीर्थ-स्थान ही था। बाद में वहां, मुख्य रूप में शहरों में, आर्य समाजों की स्थापना भी हुई। बंगाल के मुख्य शहर कलकत्ता में पंजाबियों की एक बड़ी संख्या रहती थी। उनके कारण वहां आर्य समाजों की स्थापना होना स्वाभाविक था। उस समय के विशाल पंजाब में, आज के पंजाब, हरियाणा और पाकिस्तान में, और साथ लगते राजस्थान तथा पश्चिमी उत्तर-प्रदेश में तो यह भारतीय नव-जागरण आर्य समाज के रूप में ही प्रकट हुआ था। इस प्रकार आर्य समाज का मुख्य क्षेत्र पंजाब प्रदेश होते हुए भी पूर्व में कलकत्ता तक और दक्षिण में महाराष्ट्र तक उस का प्रभाव था।

गत शताब्दी के अन्तिम दशक में कन्या महाविद्यालय की स्थापना के साथ ही,

संस्था के संस्थापक ने, देश के अन्य प्रगति-शील प्रदेशों की स्त्री-शिक्षा की संस्थाओं से मार्ग-दर्शन और प्रेरणा लेने के लिए और अपनी संस्था के कार्य के प्रचार के लिए, यात्राएं आरम्भ कर दीं। जहां जहां आर्य समाजें थीं, या कम से कम कुछ आर्य समाजी लोग थे, वहीं आपके क्रान्तिकारी कार्य के प्रशंसक मिल जाते थे। जहां जहां आप और आपके साथ जाने वाली बहनें और कन्याएं ठहरती थीं, वही स्थान आपके कार्य के प्रचार-स्थान बन जाते थे। उस ज़माने में कन्याओं का स्टेज पर खड़े होकर वेद-मन्त्र गान करना, भजन गाना और व्याख्यान तक देना एक अद्भुत बात थी। ये यात्राएं ज्यादातर दक्षिण की तरफ, बम्बई, पूना और हैदराबाद तक हुईं। 1915 में जब भारत-कोकिला सरोजिनी नायडू पहली बार कन्या महाविद्यालय में पधारीं, तो उन्होंने यह बताया कि उन्हें अपने बचपन में स्टेज पर बोलने की प्रेरणा और हिम्मत कन्या महाविद्यालय की पहली आचार्या पंडिता सावित्री देवी के उधर कहीं हुए प्रवचन को सुनकर हुई थी। इन यात्राओं में विद्यालय सम्बन्धी जानकारी का साहित्य भी बांटा जाता था। इस प्रकार विद्यालय के नाम और कार्य की जानकारी देश के अन्य दूरस्थ प्रदेशों में भी पहुंच गई थी।

इस विचार-प्रचार कार्य का प्रभाव यह हुआ कि देश के दूरस्थ भागों से भी छात्राएं विद्यालय में पढ़ने के लिए आने लगीं और उन प्रदेशों के समाज-सेवी स्त्री-पुरुषों को विद्यालय देखने की भी जिज्ञासा हुई। इन प्रदेशों की यात्राओं से विद्यालय के लिए जो प्रेरणा मिली, जो नए अनुभव मिले, जो उपलब्धियां हुईं, उनका महत्त्व भी कम नहीं है। बम्बई और महाराष्ट्र तथा गुजरात की कन्या-संस्थाओं में नृत्य तथा संगीत के कार्य-क्रम देख कर लाला देवराज जी को अपनी संस्था में भी इन विषयों का प्रवेश करने की प्रेरणा मिली। गुजरात के 'गरबा' नृत्य को तो आपने इतना पसन्द किया कि अपनी उस समय की शिष्या और आज की आचार्या कु० लज्जावती को, वह नृत्य देखने और सीखने के लिए भेजा और बाद में स्वयं नृत्य के साथ गाए जाने वाले हिन्दी कविता-वाक्य बना कर उस नृत्य का अपनी संस्था में प्रवेश किया। विद्यालय में संगीत की शिक्षा के प्रवेश में प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय गायक पं० विष्णु दिगम्बर ने बहुत सहायता की।

दूरस्थ प्रदेशों से संस्था में आने वाले महानुभावों का सिलसिला भी इस शताब्दी के आरम्भ के साथ ही शुरू हो गया। उन्हीं दिनों महाराष्ट्र की एक प्रबुद्ध बहिन गजराबाई अपनी हिन्दी की शिक्षा के लिए संस्था में आईं। एक समृद्ध आर्य समाजी परिवार, 1903 में, अवैतनिक रूप में संस्था की सेवा करने के लिए विद्यालय में आया और उस की यह सेवा लगभग 1927 तक जारी रही। इस सेवा-साधना का विवरण अगले प्रकरण में मिलेगा। बहुत वर्ष बाद एक महाराष्ट्रीय महिला श्रीमती शांताबाई भाटवडेकर कई वर्षों तक संस्था की आचार्या रहीं।

: 19 :

महाराष्ट्रीय बहिन सुभद्राबाई की सेवा–साधना

जैसे कि अभी संकेत किया गया है 1903 में एक समृद्ध महाराष्ट्रीय ज़मींदार परिवार के सदस्य ठाकुर शिवरत्न सिंह और उनकी पत्नी श्रीमती सुभद्राबाई, अपनी एक मात्र सन्तान कु० विद्यावती के साथ, अवैतनिक सेवा के लिए संस्था में आए। वे आर्य समाज की विचार-धारा से प्रेरित थे। घर में समृद्धि थी, अपनी ज़मीनें थीं। बेटी विद्यावती को अपने आदर्श के अनुरूप शिक्षा देने का भी उद्देश्य था।

ठाकुर साहिब ने संस्था के भवन-निर्माण कार्य की ज़िम्मेवारी ले ली। बहुत वर्षों तक अपनी मृत्यु तक, वे इस काम में लगे रहे। आज के कन्या महाविद्यालय का, 1913 में बना, किला-नुमा छात्रा-वास का आगे का भाग उन्हीं के निरीक्षण में बना। बेटी विद्यावती की शिक्षा-दीक्षा संस्था में हुई। उसका विवाह पंजाब में किया गया। यह अन्तर्प्रान्तीय और अन्तर्जातीय विवाह उस जमाने की एक समाज-क्रान्ति की घटना थी, जो समाज-क्रान्ति संस्था के संस्थापक का ध्येय थी। वर्षों की सेवा के बाद, एक बार ठाकुर साहिब अपनी ज़मीनें देखने के लिए महाराष्ट्र गए तो वहीं उनका देहान्त हो गया।

श्रीमती सुभद्राबाई ने छात्रावास की अधिष्ठात्री के रूप में सेवा साधना आरम्भ की। उनकी यह सेवा-साधना 1924-25 तक जारी रही। छोटी कन्याओं के छात्रावास की अधिष्ठात्री का कार्य उन कन्याओं की माता बने बिना नहीं हो सकता और सुभद्रा बाई मानो सचमुच कन्याओं की माता बन गईं। उनके पति का निवास बाहिर था और वे अपनी बेटी को साथ लेकर आश्रम ही में रहती थीं। आचार्या कु० लज्जावती, जो उनके समय में छात्रावास में भी रहीं और बाद में, उन्हीं के समय में विद्यालय की आचार्या भी रहीं, बताती हैं.....

".....सुभद्राबाई कन्याओं की माता ही थीं। माता ही के समान वे सब

कन्याओं की सेवा और सुख-सुविधा का ध्यान रखती थीं। सब कन्याओं के खाना खा चुकने के बाद वे स्वयं खाना खाती थीं। एक बार शहर में हैज़ा फूट पड़ा तो छात्रावास पर भी उसका प्रभाव पड़ा। छात्रावास की बहुत सी कन्याएं भी बीमार हुईं, कुछ की मृत्यु भी हुई। उस संकट-काल में बाई जी ने जिस मातृ-स्नेह से बीमार कन्याओं की सेवा की उसकी मिसाल मिलना मुश्किल है। उन्होंने अपने बीमार पड़ जाने की परवाह किए बिना, रातों जाग कर, सेवा-कार्य किया।....."।

उनकी इसी सेवा की लग्न को देखकर छात्रावास की उन छात्राओं ने, जिन्हें अलग से सुरक्षित स्थान पर रख दिया गया था, चाचा जी को लिखा था कि उन्हें भी बीमार बहनों की सेवा का अवसर दिया जाए। उस का जिक्र अन्यत्र आ चुका है।

बेटी विद्यावती विवाह के कुछ समय बाद, पहले ही चन्द दिन के बेटे को छोड़ कर, मृत्यु को प्राप्त हुई, तो बाई जी ने उस बच्चे को अपने पास रख कर पाला, बड़ा किया और पढ़ाया लिखाया। आचार्या जी बताती हैं कि वह लड़का बड़ा होकर सरकार में एक उच्चाधिकारी बना, जो अभी तक देहरादून में अपने ननिहाल के महाराष्ट्री गांव 'पातूर' के नाम पर रखे गए नाम के निवास-स्थान में रहता है और अवसर मिलने पर अपने नाना और नानी की सेवा-स्थली को देखने आ जाता है।

अपने निरीक्षण में रहने वाली कन्याओं और अन्य आश्रम-वासी बहनों के प्रति बाई जी की ज़िम्मेवारी की भावना यहां तक थी कि जब उनकी पुरानी छात्रा, परन्तु उस समय की आचार्या, कु० लज्जावती 1917 में, संस्था के लिए पच्चास हज़ार रुपए जमा करने तक संस्था में कदम न रखने की प्रतिज्ञा करके निकलीं, तो कुछ स्थानों पर बाई जी ने भी उनके साथ रहने का आग्रह किया ताकि वे माता के समान उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रख सकें।

एक लम्बे समय तक कन्या महाविद्यालय की दोनों आदर्श सेवा-साधिकाएं आचार्या सावित्री देवी और बाई जी एक साथ संस्था में रही थीं। जब इस लेखक ने आचार्या कु० लज्जावती जी से, जिन्होंने दोनों को निकट से देखा था, यह पूछा कि दोनों के स्वभाव में क्या अन्तर था, तो उन्होंने कहा.....

".....आचार्या सावित्री देवी निहायत नम्र, चाचा जी की आज्ञा को हाथ जोड़ कर स्वीकृत करने वाली, चुपचाप लग्न से काम में रत रहने वाली पुराने ढंग की आदर्श भारतीय स्त्री का नमूना थीं। परन्तु बाई जी अपने महाराष्ट्रीय स्वभाव के अनुसार हिम्मत से अपनी बात कहने वाली और अपना दृष्टिकोण समझा सकने वाली महिला थी। दोनों अपनी सेवा-साधना में एक से एक बढ़ कर थीं....."।

वृद्धावस्था में संस्था से जाने के बाद भी बाई जी यथा अवसर संस्था में आती

रहीं । संस्था वे अनुशासन और नियम-पालन के प्रति उनकी आस्था का जिक्र करते हुए आचार्या कु० लज्जावती जी ने बताया,

"……एक बार वे अपने दौहित्र के विवाह के पश्चात् उसकी पत्नी को लेकर मेरे पास आईं और 'हाफ-स्लीव' के वेश से विभूषित, उस नव-विवाहिता को संस्था में ले जाने का सुझाव हुआ, तो मेरे संकेत पर बाई जी ने तत्क्षण कहा कि इस वेश में संस्था के अन्दर जाना वास्तव में अनुचित है……" ।

इस महाराष्ट्रीय परिवार की विशेषत: सुभद्राबाई जी की सेवा-साधना इस संस्था के निर्माण का एक बुनियादी अंग है ।

—×—

: 20 :

सरकारी मदद से स्वतन्त्र

कन्या महाविद्यालय का स्त्री-शिक्षा का प्रयोग एक स्वतन्त्र प्रयोग था। जैसे कि कहा जा चुका है इसका अपना स्वतन्त्र पाठ्य-क्रम था और इसकी अपनी स्वतन्त्र उपाधियां थीं। कई बातों में, विशेषत: लड़कियों की संस्थाओं के लिए छात्रावास स्थापित करने के विषय में, सरकार ने स्वयं इस संस्था से प्रेरणा ली थी।

आर्य समाज के आन्दोलन के पीछे एक गहरी राष्ट्रीय भावना तो थी ही जिसे अंग्रेज़ सरकार सन्देह की दृष्टि से देखती थी। 1905 के बंग-विभाजन के विरुद्ध हुए बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन से, देश के कई अन्य प्रदेशों के समान, पंजाब में भी राष्ट्रीय जागृति का एक उबाल आया। उसके फलस्वरूप लाला लाजपत राय को, जो उस समय आर्य समाज के एक प्रसिद्ध नेता थे, जलावतन करके ब्रह्मा के माण्डले नगर में नज़रबन्द कर दिया गया। आर्य समाज, विशेषत: उसके गुरुकुल सैक्शन के प्रति सरकार की कड़ी दृष्टि थीं। कई प्रसिद्ध अंग्रेज़ अधिकारियों को गुरुकुल और वैसी अन्य संस्थाएं बग़ावत के अड्डे मालूम होती थी। कई वर्ष तक ऐसा वातावरण रहा।

1914 में महायुद्ध आरम्भ होने पर अंग्रेज़ सरकार को भारत की सहायता की जरूरत पड़ी, तो उसकी वह दृष्टि बदली। तब अंग्रेज़ सरकार की नीति आर्य समाज की संस्थाओं को आर्थिक सहायता के बन्धन में जकड़ने की थी। उस समय के पंजाब के गर्वनर 1915 में विद्यालय देखने आए। उन्होंने संस्था को आर्थिक सहायता देने का संकेत किया। उसके बाद कई अंग्रेज़ अधिकारियों ने, पंजाब के उस समय के अंग्रेज़ शिक्षा-निर्देशक, डी०पी०आई०, ने भी इस सम्बन्ध में स्पष्ट प्रस्ताव किए। परन्तु संस्था के संचालकों ने इस सम्बन्ध में दृढ़ता दिखाई।

एक अंग्रेज़ महिला, जिसका सम्बन्ध सरकार के शिक्षा-विभाग से था, विद्यालय को देखने आईं। उस समय शहर के बाहिर विद्यालय के छात्रावास का आगे का भाग ही बना था। क्लासें वृक्षों के या टीन के छप्परों के नीचे लगती थीं। इर्द-गिर्द चार-दीवारी भी नहीं थी। चारों तरफ खेत थे और बीच में विद्यालय चलता था। आचार्या

कु० लज्जावती, विद्यालय की उपाचार्या के रूप में, उस महिला को संस्था दिखा रही थीं। यह सब देख कर उस महिला ने भवन-निर्माण तथा सामान्य संचालन खर्च के लिए सरकारी सहायता का संकेत किया। उस समय पास के एक टीन के छप्पर में छात्राएं एक राष्ट्रीय गान गा रही थीं। उस महिला के संकेत के उत्तर में कुमारी जी ने अपने स्वभाव के अनुसार, स्पष्ट शब्दों मे कह दिया....."अपने टीन के छप्परों के नीचे हम ऐसे राष्ट्रीय गाने गाने में तो स्वतन्त्र है।" आचार्या जी बताती हैं कि बाद में कभी उस अंग्रेज महिला ने सरोजिनी नायडू के पास उनके इस उत्तर के बारे में शिकायत भी की।

अपनी इसी आर्थिक स्वतन्त्रता की नीति के कारण संस्था अपने स्वतन्त्र रूप में चल सकी। संस्था में न सरकारी पाठ्य-क्रम था, न सरकारी उपाधियाँ थीं और न सरकारी आर्थिक सहायता थी। संस्था की यही स्वतन्त्रता की दृष्टि थी जिसके कारण उसके संचालक और अधिकारी, उसकी आचार्या कु० लज्जावती और उसकी छात्राएं, 1919 के अमृतसर में, जलियांवाला बाग के हत्याकाण्ड और मार्शल-ला की छाया में हुए, कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में शामिल हुए। अपनी इसी स्वतन्त्र स्थिति के कारण 1921 से आरम्भ हुए असहयोग के दिनों में संस्था ने गाँधी जी के चरखे और खादी के कार्यक्रम को खुले रूप में अपनाया। अपनी स्वतन्त्र स्थिति के कारण ही यह संस्था पंजाब और पंजाब के शहर जालन्धर में आने वाले प्रायः सभी कांग्रेसी नेताओं को अपने हां निमंत्रित कर सकी। संस्था की इसी स्वतन्त्र स्थिति के आधार पर इसकी आचार्या कु० लज्जावती ने स्थानीय गान्धी मण्डप में होने वाले देश-बन्धु चित्तरंजन दास जैसे कांग्रेसी नेताओं के सख्त अंग्रेज़ी भाषणों का साथ-साथ हिन्दी में अनुवाद किया।

गुरुकुल कांगड़ी भी एक ऐसी ही स्वतन्त्र संस्था थी, परन्तु एक निर्जन स्थान में स्थित होने के कारण अपनी स्वतन्त्रता और राष्ट्रीयता की भावनाओं के बावजूद वह एक कोने में अपना कार्य कर रही थी, जबकि कन्या महाविद्यालय, पंजाब के मस्तिष्क दोआबा के मुख्य शहर जालन्धर में स्थित होने के कारण कांग्रेस की गति विधियों के साथ सम्बन्धित रहता था।

स्वतन्त्रता की यही घुट्टी पाकर संस्था की बहुत सी छात्राओं ने जैसे कि पहले भी कहीं कहा जा चुका हैं, देश की राष्ट्रीय गति-विधियों में जब क्रान्तिकारी आन्दोलनों तक में, भाग लिया। जालन्धर में और उसके आस-पास भी कहीं, उस समय का राष्ट्र गान 'बन्देमातरम्' गाने का अवसर आता था तो विद्यालय की खादी-धारी छात्राएं ही निमंत्रित की जाती थीं। 1937 में संस्था के मैदान में एक इतना ऊंचा खम्भा गाड़ दिया गया, जिस पर लहरा रहा, उस समय का राष्ट्र ध्वज, अंग्रेज़ के कठोर दमन-चक्र के दिनों में भी, दूर-दूर से दिखाई देता था। इस सब का आधार संस्था की स्वतन्त्र स्थिति थी, जिसमें सरकार का कोई दखल नहीं था

—×—

: 21 :

संस्था का आर्थिक आधार——भिक्षा-पात्र

1890 के आस-पास आर्य समाज जालन्धर ने आठ-दस रुपए मासिक के व्यय की स्वीकृति देकर कन्या पाठशाला का आरम्भ किया था। एक दो वर्षों ही में संस्था उन्नति करने लगी और उस का खर्च काफी बढ़ने लगा। आर्य समाज की आर्थिक सहायता के अतिरिक्त लाला देवराज जी ने आय के दो और स्रोत ढूंढ लिए, एक था 'रद्दी फण्ड' और दूसरा 'आटा फण्ड'। पढ़े लिखे लोगों के घरों में सामान्यतः रद्दी होती ही है। सामान्य रूप में अच्छे घरों में न तो रद्दी बेचने की आवश्यकता होती है और न उधर घर वालों का ध्यान जाता है। आपने ऐसे घरों से रद्दी जमा करके उसको बेचने और इस प्रकार कुछ मासिक आय प्राप्त करने की योजना बनाई। उसी प्रकार सामान्यतः धार्मिक घरों में प्रतिदिन रोटी के रूप में कुछ अन्न-दान की परम्परा रहती है। आपने इस भावना के आधार पर ऐसे घरों में घड़े रखवा दिए जिनमें घरवाले प्रतिदिन कुछ आटा डाल देते थे। उस आटे को जमा करके बेचने से भी काफी आमदनी होने लगी।

संस्था के लिए कुछ दान छात्राओं के घरों से भी मिल जाता था। स्थानीय सम्पन्न लोग भी संस्था के लिए दान देते रहते थे। संस्था के वार्षिक उत्सव पर दान के लिए विशेष अपील होती थी और उसके फलस्वरूप काफी रुपया मिल जाता था। संस्था के अध्यापक-अध्यापिकाएं त्यागी तपस्वी लोग थे। इनमें से कुछ तो केवल अपने भोजन ही का बोझ संस्था पर डालते थे। शेष लोग भी बहुत कम वेतन लेते थे। लाला जी स्वयं और आपके साथी प्रायः सम्पन्न लोग थे। उनसे भी संस्था को आर्थिक सहायता मिल जाती थी।

जैसे जैसे संस्था का आकार बढ़ता गया और उसकी नई नई प्रवृत्तियां बढ़ती गईं वैसे वैसे खर्च भी बढ़ता गया। शहर में तो सस्ते किराए में मकान मिल जाते थे, परन्तु जब शहर से बाहिर अपनी इमारतें बनाने की आवश्यकता हुई तो खर्च बहुत बढ़ गया। ऐसे समय संस्था की पुरानी छात्राओं ने धन-संचय के लिए यात्राएं करना आरम्भ किया। 1905 ही में आचार्या सावित्री देवी ने अपनी कई मास की,

दक्षिण तक की यात्रा में लगभग एक हजार रुपया जमा करके एक मार्ग बना दिया था।

लाला देवराज जी ने संस्था के लिए कभी कोई स्थायी कोष कायम नहीं किया। आपका विचार था कि आवश्यकता के समय जनता-जनार्दन के रूप में भगवान् सहायता भेज ही देते हैं। यदि कोई आपसे संस्था के स्थायी कोष के बारे में पूछता तो आप अपनी प्रतिभाशाली छात्राओं की ओर संकेत करके कह देते थे,....."यह एक लाख है, वह दो लाख है और उधर वह तीसरी तीन लाख है....."। यदि किसी समय किसी ने आपसे पूछा कि आपके आकस्मिक निधन की सूरत में संस्था को कौन चलाएगा तो आप राए बहादुर बदरीदास जैसे अपने साथियों के नाम ले देते थे और अपनी छात्राओं की ओर संकेत कर देते थे।

आपकी छात्राओं ने आपकी इस आशा को खूब पूरा किया। दुर्गावती जैसी अनेक छात्राओं ने अपनी पढ़ाई समाप्त करके पांच-पांच वर्ष तक संस्था की अवैतनिक सेवा की। छः मास से अधिक समय तक ऐसी सेवा करने वाली छात्राएं तो बहुत थीं और उनके नाम विद्यालय की डयोढ़ी में अंकित रहते थे। विद्यालय एक यज्ञ था, जिसमें अपनी अपनी आहूति डालने के लिए सभी कन्याएं तैयार रहती थीं।

एक बड़ी, पच्चास हजार की, रकम जमा करने के प्रण की पूर्ति से पहले, संस्था में कदम न रखने का तै करके, 1917 में आचार्या कुमारी लज्जावती यात्रा के लिए निकलीं। आपकी वक्तृता में एक विशेष प्रभाव था। लाला जी स्वयं या कोई दूसरे बड़ी आयु के स्त्री-पुरुष भी साथ रहते थे। आचार्या जी ने पंजाब, सीमा प्रान्त, सिन्ध, उत्तरप्रदेश और कलकत्ता का दौरा किया और एक वर्ष से कम अवधि में अपना प्रण पूरा करके संस्था में कदम रखा।

1929 में संस्था की पुरानी छात्रा देवकी देवी ने दस हजार रुपया जमा किया और साथ ही अवैतनिक रूप में संस्था में कार्य करने का प्रण किया, जिसे उन्होंने निष्ठा के साथ निभाया। बहुत देर तक वे नगर की संस्था 'देवराज नगर विद्यालय' की मुख्याध्यापिका रहीं। उन्होंने अपना निवास शहर से बाहिर छात्रावास में रखा। वे संस्था में भोजन करती थीं और दो आने प्रतिदिन, नगर-विद्यालय जाने आने का तांगे का किराया लेती थीं। इसी प्रकार उन्होंने 15-20 वर्ष तक सेवा की।

1930 में, छात्रावास की अधिष्ठात्री नारायणी देवी ने 11 हजार रुपया जमा हो जाने तक दिन में केवल एक बार भोजन करने का प्रण किया और कुछ ही महीनों में उसे पूरा कर लिया। 1933-34 में वे धन-संग्रह के लिए पूर्वी अफरीका गईं और वहां से लगभग 25 हजार रुपया लाईं। 1935 में लाला जी की मृत्यु के पश्चात् नारायणी देवी जी ने उनके स्मारक के लिए आठ हजार रुपया जमा किया।

आचार्या शन्नो देवी जी ने कुछ वर्ष संस्था में काम किया। उस दौरान उन्होंने संस्था के लिए धन-संग्रह के अभियान में पूर्वी अफ्रीका और ब्रह्मा तक की यात्रा की।

इन यात्राओं में जो धन संग्रह होता था, उसका एक कारण तो संस्था की ख्याति थी, संस्था का व्यक्तित्व था। दूसरे यात्रा पर निकलने वाली बहनों की अपनी प्रतिभा का प्रभाव पड़ता था। इस प्रकार बहनों का दूर-दूर तक भ्रमण करना जनता के लिए, विशेषत: आर्य समाजों के लिए, एक प्रेरणा और गौरव की बात थी। बहुत से संस्थानों पर संस्था की पुरानी छात्राएं भी इस धन-संग्रह में मदद करती करवाती थीं।

इस प्रकार लाला जी ने सरकार की आर्थिक सहायता को ठुकरा कर केवल भिक्षा-पात्र के सात्विक धन से संस्था को चलाया। आपका यह कहना कि आपकी छात्राएं ही आपकी संस्था की स्थायी निधि थीं शब्दश: पूरा हुआ और संस्था का तेज भी दिनों-दिन बढ़ता गया।

—×—

: 22 :

संस्थापक की कल्पना

आर्य समाज जालन्धर के 1920 के वार्षिकोत्सव पर लाला देवराज जी द्वारा दिए गए भाषण के निम्नलिखित अंशों से विद्यालय-सम्बन्धी उनकी दृष्टि और कल्पना की झांकी मिल जाती है—

".....मैं कन्या महाविद्यालय के काम को कोलम्बस के काम से उपमा दूंगा। फ़र्क केवल इतना है कि कोलम्बस अढ़ाई वर्ष की मेहनत के बाद अमरीका के तट पर पहुंच गया, परन्तु विद्यालय के कार्य कर्त्ताओं को अपने तीस वर्ष के कार्य के बाद भी अभी केवल किनारा नज़र आने लगा है।.....

".....विद्यालय एक वृक्ष है। इसकी शाखाएं बहुत सी हैं। इनमें से किसी शाखा में कुछ लगा है और किसी में कुछ। पहली शाखा विद्यालय, स्कूल या कालिज है, दूसरी शाखा आश्रम है, तीसरी शाखा विधवा भवन है और चौथी शाखा अनाथालय है।.....

".....कुछ लोग कहते हैं कि विद्यालय के अधिकारियों के दिमाग़ में खलल आ गया है और उन्होंने कई ऐसी बातें जारी कर दी हैं, जो शास्त्र-विरुद्ध हैं, जैसे गाना-बजाना। यदि कोई अन्य धर्मावलम्बी ऐसा एतराज करे, तो उसे क्षमा किया जा सकता है। परन्तु यदि वेदों का मानने वाला ऐसा एतराज करे, तो उसे क्षमा नहीं किया जा सकता। हमारा तो गाने के साथ सृष्टि के आदि-काल से सम्बन्ध है। यहां तक कि चार वेदों में से एक वेद, साम-वेद, केवल गान-विद्या के लिए है।.....

".....दूसरा एतराज पहरावे पर है। कोई कहता है कि लहंगे को लिबास में शामिल करो। हमारे यहां कन्याओं ने देश-देशान्तरों से आना है। यदि आश्रम या विद्यालय किसी एक ही प्रान्त के लिए होता तो हम उसी प्रान्त का पहरावा नियत कर लेते। परन्तु विद्यालय सारे देश के लिए है, किसी एक प्रान्त के लिए नहीं। ये कन्याएं सारे देश की प्रतिनिधि हैं। इसलिए हमें ऐसा ही पहरावा रखना होगा, जिसे पहनने में किसी भी प्रान्त की लड़कियों को आपत्ति न हो।.....

".....पिता की अपेक्षा माता में सन्तान के प्रति हित का भाव अधिक होता है। इसलिए पिता की अपेक्षा माता त्याग भी अधिक कर सकती है। यदि किसी संस्था में छात्राओ में त्याग की भावना है, तो वह भावना अमृतमयी है। आप विद्यालय की डयोढ़ी में प्रवेश करेंगे, तो आपको उन छात्राओं के नाम अंकित मिलेंगे, जिन्होंने छः मास या इस से अधिक समय तक, अपने आराम का त्याग करके, किसी न किसी रूप में विद्यालय की सेवा की है।

".....अभी हमें बहुत काम करने हैं। लड़कियों के लिए एक टैकनीकल स्कूल की ज़रूरत है। जिल्दी-साज़ी और घड़ी-साज़ी आदि काम लड़कियां घरों में बैठकर कर सकती हैं। लड़कियों को विद्या-प्राप्ति के लिए विदेश भेजने के लिए एक विदेश-यात्रा फण्ड, कायम करने की ज़रूरत है। रोगी-सेवा की शिक्षा लड़कियों को दी तो जाती है, परन्तु इस को अधिक बढ़ाने की आवश्यकता है। जगह जगह विद्यालय की शाखाएं कायम करना भी ज़रूरी है। पहाड़ पर लड़कियों के लिए 'रैस्ट-हाऊस' बनाने की ज़रूरत है। किश्ती चलाना और घुड़सवारी सिखाने के लिए प्रबन्ध करना है। स्त्री प्रचारिकाएं भी तैयार करना है।

".....हम अपनी सारी कन्या-पाठशालाओं में एक ही पाठ-विधि प्रचलित करके एक महिला विश्वविद्यालय की स्थापना करना चाहते हैं।"

आपके व्याख्यान के इन अंशों से स्पष्ट है कि आपकी कल्पना में ऐसे बहुत से कार्य-क्रम थे, जिनसे स्त्री-शक्ति के भिन्न-भिन्न पहलुओं का विकास हो सके। ऐसा नज़र आता है कि प्रकृति ने आपको देश की स्त्री के जीवन के विकास के लिए ही पैदा किया था। आपके अन्तःकरण में जहां भारत की पुरानी संस्कृति के उपयोगी अंगों को सुरक्षित रखने की तीव्र इच्छा थी, वहां आधुनिक वैज्ञानिक युग की उपलब्धियों के प्रति भी आदर था। वास्तव में हमारी आज की शिक्षा के लिए आवश्यक है कि मानव की पुरानी और नई उपलब्धियों का समन्वय किया जाए।

आज हमारी शिक्षा, स्त्री शिक्षा भी, एक नए मोड़ पर पहुंच गई हैं। जिस प्रकार अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना के समय हम पाश्चात्य विचार-प्रवाह से पराभूत हो गए थे, उसी तरह आज भी हम अपनी सांस्कृतिक बुनियाद को भूल कर पाश्चात्य जगमगाहट से चुंधिया रहे हैं। आज के मनीषियों को भी, हमारे कथा-नायक के समान, आज के युग और प्राचीन शाश्वत मूल्यों के बीच एक स्वस्थ समवन्य करना होगा। तभी शिक्षा एक आशीर्वाद बन सकती है।

: 23 :

अखिल भारतीय ख्याति

अपने जीवन के कुछ ही वर्षों में विद्यालय ने एक अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त कर ली थी। पंजाब प्रदेश से बाहर के भागों की छात्राएं भी संस्था में आने लगीं। 1904-05 में. संस्था की केवल 15 वर्ष की आयु में, छात्रावास में रहने वाली छात्राओं में से निम्नलिखित संख्या बाहर के भागों की लड़कियों की थी—

1.	मध्य प्रदेश	2
2.	राजपूताना	2
3.	उत्तर-प्रदेश	8
4.	सिन्ध	6
5.	सीमा प्रान्त	6
6.	बिलोचिस्तान	2

1908-10 में यह संख्या निम्नप्रकार हो गई थी—

1.	मध्य प्रदेश	3
2.	राजपूताना	3
3.	उत्तर-प्रदेश	27
4.	सिंध	2
5.	सीमा प्रान्त	6
6.	बिलोचिस्तान	9
7.	दक्षिण हैदराबाद	1
8.	बर्मा	6
9.	बम्बई	1
10.	आसाम	1
11.	बंगाल	1

बाद में पूर्वी अफ्रीका में नौकरी आदि के लिए बसे हुए भारतीय परिवारों की लड़कियां भी संस्था में आने लगीं।

जैसे कि पहले ज़िक्र आ चुका है, संस्था के संस्थापक अपने साथ कुछ अध्यापिकाओं और छात्राओं को लेकर देश के भिन्न-भिन्न भागों की यात्रा के लिए जाते रहते थे। इन यात्राओं से संस्था की ख्याति उन भागों में फैलती थी। उन भागों की प्रमुख स्त्री-शिक्षण-संस्थाओं के साथ सम्पर्क होने से विचारों का आदान-प्रदान होता था और संस्था के लिए नए कार्य-क्रम भी प्राप्त होते थे। संस्था में संगीत और नृत्य के समावेश की प्रेरणा महाराष्ट्र और गुजरात की स्त्री-संस्थाओं से मिली। इन यात्राओं में भिन्न-भिन्न प्रदेशों के महापुरुषों के साथ भी सम्पर्क होता था। उन्हें संस्था में आने के निमन्त्रण दिए जाते थे। 1915 की एक ऐसी ही यात्रा में, बम्बई के ताज-महल होटल में, भारत-कोकिला सरोजिनी नायडू को विद्यालय में पधारने का निमंत्रण दिया गया। संस्था को एक बार देखने से उनका स्नेह सदा के लिए मिल गया। बाद में राष्ट्रीय संग्राम के दिनों में जब भी वे पंजाब आईं, उस स्नेह के बन्धन से खिंच कर प्रायः संस्था में आती रहीं।

महाराष्ट्र से श्री गोपाल कृष्ण गोखले, प्रो० कर्वे, पं० विष्णुदिगम्बर, दक्षिण भारत से श्री निवास शास्त्री, रंगास्वामी आयंगर, श्रीसत्यमूर्ति, गुजरात से वी० जे० पटेल, अब्बास तैयब जी, उत्तर-प्रदेश से मदनमोहन मालवीय, बंगाल से देशबन्धु चितरंजनदास, बिहार से डा० राजेन्द्रप्रसाद और मध्य भारत से महाराजा गायकवाड़ जैसे महापुरुष समय-समय पर संस्था में आए।

1920 में गांधी जी ने भी संस्था के वार्षिकोत्सव पर पधारना स्वीकृत कर लिया था परन्तु असहयोग-आन्दोलन की व्यस्तता के कारण उनका आगमन न हो सका।

विद्यालय ने न तो सरकारी सहायता लेना स्वीकृत किया था और न इसके साथ कोई जागीर या अन्य स्थायी सम्पत्ति थी। संस्था ने कभी स्थायी कोष भी नहीं बनाया। संस्था में शिक्षा निःशुल्क थी और छात्रावास में केवल भोजन का मामूली खर्च लिया जाता था। इसलिए धन की आवश्यकता तो बनी ही रहती थी, धन-संचय के लिए संस्था की ओर से देश के भिन्न-भिन्न भागों की और कभी-कभी बर्मा और पूर्वी अफ्रीका आदि देशों की यात्राएं की जाती थीं। धन-संग्रह की इन यात्राओं के द्वारा भी संस्था की ख्याति देश के दूरस्थ भागों में और विदेशों में भी फैलती थी।

1920 में गांधी जी के नेतृत्व में आरम्भ हुए स्वतन्त्रता-संग्राम में संस्था का सहयोग और सहकार रहा। इससे उस समय के प्रायः सभी राष्ट्रीय नेता संस्था में आते रहे। देश भर के राष्ट्रीय क्षेत्र में संस्था का नाम था। 1938 में इस लेखक को, कुछ दिनों के लिए, वर्धा में डा० राजेन्द्र प्रसाद के सानिध्य में रहने का अवसर मिला। वे कन्या महाविद्यालय से अच्छी तरह परिचित थे और इसके राष्ट्रीय वातावरण की प्रशंसा

करते थे। बाद में राष्ट्रपति बनने पर भी वे संस्था में पधारे।

अपने प्रधान-मन्त्री-काल में पं० जवाहरलाल भी संस्था में आए।

जालन्धर कोई ऐतिहासिक प्रसिद्धि का शहर नहीं रहा है। पंजाब प्रदेश से बाहर इसकी ख्याति के दो ही कारण रहे हैं, एक हरि-वल्लभ का संगीत-समारोह और दूसरे कन्या महाविद्यालय।

संस्था की बहुत सी छात्राओं ने अपने-अपने स्थान पर और अन्य प्रदेशों में भी, जो समाज-सेवा के कार्य किए, उनका उल्लेख बहुत विस्तार का विषय है।

—×—

: 24 :

एक तीर्थ-स्थान

'तीर्थ' शब्द के अर्थ हैं 'विद्वान्', 'पवित्रात्मा' 'नेक आदमी'। ऐसे लोगों के, विद्वानों के, पवित्रात्माओं के, नेक आदमियों के निवास-स्थान तीर्थ-स्थान कहलाने लगे। आरम्भ में लोग ऐसे स्थानों पर इसलिए जाने लगे कि वहां विद्वानों का, पवित्रात्माओं का, नेक आदमियों का सम्पर्क और सत्संग मिलता था। हर ज़माने में नए तीर्थ स्थान बनते रहते हैं, जहां उस ज़माने के विद्वानों से पवित्रात्माओं से नेक और सेवा-भावी आदमियों से प्रेरणा मिलती है।

19वीं और 20वीं शताब्दियों में भी ऐसे नए तीर्थ स्थान बने और लोगों को प्रेरणा देते रहे। आर्य समाज के क्षेत्र में, एक लम्बे समय तक, लगभग पचास साठ वर्ष तक, लाहौर आर्य समाज के, गुरुकुल कांगड़ी के और कन्या महाविद्यालय जालन्धर के वार्षिक उत्सव ऐसे पर्व रहे, जब इस प्रदेश के बहुत से लोग आध्यात्मिक और सामाजिक प्रेरणा के लिए इन स्थानों पर आते जाते और कुछ दिन रहते थे।

देश के विभाजन तक, लगभग तीस वर्ष पहले तक, कन्या महाविद्यालय जालन्धर शहर से बिल्कुल बाहर, एक एकांत स्थान में था। उससे भी दस-बीस वर्ष पहले तक तो विद्यालय को जाने वाली सारी सड़क ही एकांत और सूनी थी। 1913 में जब विद्यालय यहां आया, तो इस स्थान का वातावरण बिल्कुल एकान्त और प्राकृतिक था, ऋषि आश्रमों जैसा, तीर्थ-स्थानों जैसा था। केवल यही कमी थी कि तीर्थ स्थान के महत्त्व को बढ़ाने वाली कोई नदी समीप नहीं थी, कोई जलाशय पास नहीं था।

विद्यालय का वार्षिकोत्सव पहले दिसम्बर में हुआ करता था परन्तु 1915 और 16 से अप्रैल में होने लगा। जिस प्रकार दिसम्बर में होने वाला संगीत का हरिवल्लभ सम्मेलन, शहर और प्रदेश के लिए प्रतीक्षा का विषय था उसी प्रकार कन्या महाविद्यालय का उत्सव शहर के और बाहिर के भी प्रबुद्ध आर्य समाजियों के लिए, विशेषतः यहां पढ़ने वाली कन्याओं के परिवारों के लिए, एक पुण्य पर्व था। उत्सव में आर्य समाज के क्षेत्र के विद्वान् और सन्यासी तो पधारते ही थे, देश के राष्ट्रीय नेता और

शिक्षा-शास्त्री भी आते थे। 1920 के उत्सव पर गांधी जी ने भी पधारना स्वीकृत किया था परन्तु असहयोग आन्दोलन में अपनी व्यस्तता के कारण वे आ नहीं सके थे और उनकी जगह, लाला लाजपतराय आए थे, जो अभी कुछ ही मास पूर्व लगभग छः वर्ष के बाद अमेरिका से लौटे थे। 1915 के उत्सव पर भारत-कोकिला सरोजिनी नायडू पधारी थीं। विद्यालय का उत्सव उस समय संगीत और साहित्य का, राष्ट्रीय भावनाओं का और आध्यात्मिक प्रवचनों का एक प्रेरणा-केन्द्र होता था।

कन्या महाविद्यालय के साथ, आश्रम के विशाल भवन के पीछे, लाला जी ने एक बाग़ लगाया था, जिसमें तरह-तरह के पेड़ पौधे थे। उस बाग़ के उत्तर-पूर्वी कोने में 'देव-निवास' नाम का छोटा सा, एक दो कमरों का मकान अब तक खड़ा है। यह स्थान आपके एकान्त-वास का स्थान था। उत्सव के दिनों में तो आप अपनी रिहायश यहीं कर लिया करते थे। कन्याओं के माता-पिता और परिवार के लोग अपनी कन्याओं की शिक्षा की स्थिति को देखने, उत्सव से प्रेरणा लेने और लाला जी के दर्शन करने के लिए आते ही थे। उनके निवास के लिए तम्बू लग जाते थे। अधिकांश कन्याओं के परिवारों के साथ आपका सम्पर्क होता ही था। इस अवसर पर नए सम्पर्क भी स्थापित होते थे। कन्याओं के माता पिता आपके साथ अपनी कन्याओं के सम्बन्ध में ऐसे ही बातें करते थे जैसे आप उनके अपने परिवार के बुज़ुर्ग हों।

सामान्यतः कन्या महाविद्यालय में पुरुषों का प्रवेश नियन्त्रित रहता था, परन्तु उत्सव के अवसर पर यह नियन्त्रण ढीला हो जाता था। लोगों के खुले रूप में आने जाने के बावजूद वातावरण में अनुशासन और नियन्त्रण रहता था। इस लेखक ने संस्था के 1925 के आस-पास के वर्षों के उत्सव देखे हैं। सारा वातावतण शान्त और पवित्र होता था। सब तरफ खादी का वेश दिखाई देता था। कन्याओं के संगीत के कार्यक्रम बहुत भव्य होते थे। कन्याओं की जल-तरंग बजाने की कला सर्वप्रिय होती थी।

विद्यालय का उत्सव आस-पास के खेतों वाले लोगों के लिए भी रुचि का विषय होता था। उत्सव के अवसर पर बने पकवानों से आप उन किसान हमसायों को, जिन में मुसलमान भी होते थे, उसी तरह तृप्त करते थे, जिस तरह बाहिर से आए अतिथियों को। इन हमसायों की मदद से, जंगल में बसा कन्या महाविद्यालय इतना सुरक्षित था कि विभाजन के दिनों की गड़बड़ में भी यहां कोई अप्रिय घटना नहीं हुई।

कन्याओं के स्नातिका-उपाधि वितरण का दृश्य बहुत भव्य होता था। थोड़ी-सी कन्याएं स्नातिका-वेश में, बहुत शान्त वातावरण में, पूरी संजीदगी के साथ अपनी शिक्षा-दीक्षा की उपाधियां ग्रहण करती थीं। दीक्षान्त-भाषण बहुत गम्भीर होता था। कन्याओं के किसी ऋषि आश्रम से विदा होने का सा दृश्य होता था।

—×—

: 25 :

तीर्थ पुरुष के आशीर्वाद

विद्यालय की आत्मा, लाला देवराज जो ने अपनी संस्था की छात्राओं के लिए 'जल-विद्' देवियां और 'जल-विद्' पुत्रियां आदि नाम प्रचलित किए थे। विद्यालय की पत्रिका का नाम भी 'जल-विद् सखा' रखा गया था। 'जल-विद्' शब्द 'जालन्धर' और 'विद्यालय' शब्दों के पहले अक्षरों को मिला कर बनाया गया था। विद्यालय के जन्म-दिवस के समारोह में बहुत सी पुरानी छात्राएं भी शामिल होती थीं, उस समय की छात्राएं तो मौजूद होती ही थीं। उस समारोह में आप अपनी छात्राओं को जो आशीर्वाद दिया करते थे, उस का एक उदाहरण आपका निम्न-लिखित प्रवचनांश हैं :—

".....जल-विद् देवियां सुनें और ध्यान लगाकर सुनें कि विद्यालय की महिमा इसके बाग और विशाल भवनों से नहीं है, बल्कि 'सावित्री देवी' जैसी धर्मात्मा देवियों से है। पुत्री उर्मिला अपने श्वसुर-गृह में सानन्द विचर रही है, ग्राम की स्त्रियां उसके व्यवहार से बहुत प्रसन्न हैं। इस कन्या को सुशिक्षिता बनाने और इसमें उत्तम संस्कार डालने में विद्यालय को जो सफलता मिली, वह वास्तव में विद्यालय का एक विशाल ज्योति-स्तम्भ है। लाखों रुपए की प्राप्ति की अपेक्षा मैं इस सफलता का अधिक मान करता हूं.....।"

इसी प्रकार आप विद्यालय की अध्यापिकाओं से कहा करते थे—"तपस्विनी निष्काम-व्रता 'सावित्री देवी' ने जिस स्थान पर अपना जीवन व्यतीत करके इसे पुण्य-भूमि तथा तीर्थ-स्थान बनाया, उसी स्थान पर स्थित आप स्त्री-शिक्षा का नहीं, संसार की उन्नति का काम कर रही हैं। माता-पिताओं ने अपनी नन्ही-नन्ही बालिकाओं को आपके सपुर्द किया हुआ है। कुलीन परिवारों ने अपनी स्यानी-स्यानी बेटियों को दूर-दूर से आपके पास भेजा है। आप एक महान् यज्ञ की होती है, एक महान् संग्राम की सेनानी हैं। भारत-वर्ष आपकी यज्ञ-शाला और समर-भूमि की ओर टिकटिकी लगाए देख रहा है। आपकी कितनी बड़ी जिम्मेवारी है। आपने कितने महान् काम को हाथ में लिया है। आप घोरतम संग्राम में लड़ रही हैं। यह लड़ाई आजकल ही में

समाप्त न होकर खूब देर तक चलने वाली है। इसमें आपको अपनी आहुति देनी होगी, अपने प्राणों तक को न्योछावर करना होगा। अपने आचरण को ऊंचा बनाओ। कन्याओं पर पुस्तकों का इतना प्रभाव नहीं पड़ेगा, आपके व्याख्यानों और गीतों का भी इतना प्रभाव नहीं पड़ेगा, जितना कि आपके हृदय का। अपने मन को पवित्र करो, सादा जीवन व्यतीत करो, अपने कर्त्तव्य से कभी न चूको, प्रेम-प्यार की मूर्ति बन जाओ। बस यही साधन इस यज्ञ की पूर्ति का है, इस युद्ध को जीतने का है।"

अपनी छात्राओं के लिए आप निम्न-लिखित साधना-मन्त्र बताते थे।

विद्यालय मेरा है और मैं विद्यालय की हूं। विद्यालय ने मुझ पर जो उपकार किए हैं, मैं उन्हें कभी न भुलाऊं और विद्यालय के लक्ष्यों, 'विद्या-लाभ' 'कर्त्तव्य-पालन' और सदाचार को पूरा करने में तत्पर रहूं। अपनी शारीरिक, सामाजिक और आध्यात्मिक, तीनों प्रकार की उन्नति करती हुई, सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझती हुई और अपने देश का उद्धार करने में अपना तन-मन-धन लगाती हुई, मैं अपनी माता के दूध को सफल करूं।

कन्याओं के विद्यालय छोड़ने के समय आप उन्हें जो कहा करते थे, उसका एक उदाहरण नीचे दिया गया है—

"..... पुत्री दुर्गा! तुम जीवन-पर्यन्त पठन-पाठन में लगी रहो। अपने घर में पुस्तकालय बनाओ। तुम देवी बनो। आनन्द-पूर्वक धर्मानुसार जीवन व्यतीत करो। अपने परिश्रम से देश के सुख को बढ़ाओ। तुम्हारे उद्यम से देश का उद्धार हो, तुम स्त्री जाति के लिए आदर्श बनो।

".....मेरी तो यह इच्छा है कि तुम में से प्रत्येक कन्या एक पाठशाला बन जाए, जिससे देश में कोई कन्या विद्या-हीन न रहे। तुम विद्यालय की गोद में रही हो और विद्यालय-माता ने तुम्हें विद्या का दूध पिलाया है। इसलिए आयु-पर्यन्त तुम्हारा और हमारा पुत्री और माता-पिता का सम्बन्ध रहेगा.....।"

अनाथालय की एक कन्या रामप्यारी के विवाह के समय आप अस्वस्थता के कारण डलहौज़ी में थे। वहां से आपने नीचे लिखा आशीर्वाद-सन्देश भेजा था।

".....विद्यालय मां की शिक्षा को सदा याद रखना। दोनों कुलों के यश को बढ़ाती रहना। मन को सम्भाल कर संसार में विचरना। संसार की दौड़ में सदा आगे रह कर मां के यश को बढ़ाना, मधुर वाणी और परिश्रमी जीवन के भूषणों से अपने आप को अलंकृत करके अपनी शोभा को बढ़ाना.....।"

आपके ऐसे आशीर्वादों और उपदेशों से विद्यालय का वातावरण और कार्य सुगन्धित रहता था।

—×—

: 26 :

कुछ प्रमुख दर्शकों की संक्षिप्त सम्मतियां

1

.....प्रान्त में कन्याओं का ऐसा दूसरा कोई स्कूल नहीं है. जिसे मैं इस स्कूल की अपेक्षा अधिक पसन्द करूं या अधिक प्रशंसनीय समझूं ।

स्कूल के अधिष्ठाता लाला देवराज लाखों में एक मनुष्य है और स्त्री-शिक्षा के लिए जो प्रयत्न उन्होंने किए हैं, उनकी जितनी प्रशंसा करूं, थोड़ी है ।

ऐसी संस्था को देखना, जहां विद्यार्थी ऐसे साफ-सुथरे, चुस्त चालाक और सुशिक्षित हैं, बड़ी प्रसन्नता की बात है ।

डबलयू बेल
(डायरैक्टर आफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन पंजाब)
27 नवम्बर, 1905

2

.....यह देख कर कि देश के प्राय: सभी भागों से लड़कियां यहां शिक्षा पाने के लिए आई हैं, मुझे बहुत प्रसन्नता हुई ।

4 मार्च, 1905

(लेडी) सी० एम० रिवाज़

3

.....ऐसी कोई दूसरी शिक्षा-संस्था बताना कठिन है, जिस पर रुपया खर्च करना अपेक्षाकृत अधिक लाभदायक हो सके.....।"

सी० आर० यू ह्यंग
वाइस चान्सलर
पंजाब यूनिवर्सिटी, लाहौर

4

.....छात्राओं के संस्कृत सम्भाषण को सुन कर मुझे विशेष आश्चर्य हुआ। यदि यह प्रयत्न बड़े पैमाने पर किया जाए, तो संस्कृत मृत-भाषा नहीं रहेगी।

यदि भारत-वर्ष में ऐसी अधिक संस्थाएं हों, तो स्त्री-जाति की उन्नति का युग दूर नहीं होगा.....।

महाराजा आफ़ गायकवाड़
11 अक्तूबर, 1911

5

.....छात्राओं में देश-भक्ति कूट-कूट कर भरी है और ऐसे कई उदाहरण हैं जहाँ इन छात्राओं ने अपने सम्बन्धियों को देश-सेवा के लिए प्रेरित किया.....।

रंगा स्वामी आयंगर
19 मार्च, 1922

6

.....संस्था का राष्ट्रीय वातावरण इसीलिए सम्भव हो सका है कि संस्था सरकार से मदद नहीं लेती और न ही यह सरकार के नियन्त्रण में है.....।

वी० जे० पटेल
1 मई, 1922

7

.....बाहिर से भी संस्था का रूप भारतीय है और उसके अन्दर भी गहरा आध्यात्मिक और राष्ट्रीय वातावरण फैला है.....।

.....न कहीं साम्प्रदायिक भावना दिखाई देती है और न प्रान्तीय भावना न ही अमीरों के बच्चों और अनाथ बच्चों के रहन-सहन में कोई भेद-भाव है...।

.....छात्राएं पंजाब के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों से भी आती हैं.....।

(प्रिंसीपल) एस० के० रुद्रा
20 नबम्बर, 1923

8

.....छात्राओं का यह सुन्दर उद्यान है। यहां मस्तिष्कों और आत्माओं का विकास हो रहा है.....यहां पर सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय शिक्षा दी जा रही है.....।

सरोजिनी नायडू
प्रधान इंडियन नैशनल कांग्रेस
2 नबम्बर, 1923

9

.....उत्तरीय भारत की इस प्रसिद्ध स्त्री-शिक्षा-संस्था ने संगीत के गौरव को समझ कर उसके प्रसार का बीड़ा उठाया.....

लता-मण्डपों में छात्राओं को शिक्षा प्राप्त करते देख कर आंखों के सामने प्राचीन ऋषियों के आश्रमों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों का चित्र आ जाता है।

विष्णुदिगम्बर
(प्रसिद्ध गायनाचार्य)
10 दिसम्बर, 1925

10

.....कन्या महाविद्यालय लाला देवराज की देश-भक्ति, उदारता, त्याग और हिन्दू जाति के उत्थान के लिए ऊंचे ध्येय का फल है। यह संस्था धार्मिक शिक्षा और गृह-सम्बन्धी शिक्षा देकर देश और स्त्री-जाति के लिए बहुत काम कर रही है.....।

(पंडित) मदनमोहन मालवीय

—×—

: 27 :

पत्र-पत्रिकाओं द्वारा यशोगान

1

".....सारे भारत में कन्या महाविद्यालय जालन्धर जैसी संस्था नहीं देखी गई। इसमें परदा-प्रथा नहीं है और न ही जाति-गत ऊंच-नीच का कोई भेद-भाव रखा गया है। अतः पंजाब भाग्यशाली प्रान्त है। संस्था में प्रायः सभी प्रान्तों की लड़कियां पढ़ती हैं और सब का रहन-सहन एक सा है।.....अनाथालय की बच्चियां उच्चवर्गों की लड़कियों के साथ बिना किसी भेद-भाव के खेलती उठती बैठती और पढ़ती हैं। भारत के किसी अन्य स्कूल में ऐसा नहीं देखा गया। विद्यालय में दक्षिण हैदराबाद, सीमा-प्रान्त, उत्तर-प्रदेश और राजपूताना की बहुत सी लड़कियां हैं।"

1 फरवरी 1907 के 'ट्रिब्यून' में प्रकाशित लेख से उद्धृत

2

"हमारे पंजाबी भाइयों ने समझ लिया है कि उसकी स्त्री-जाति अज्ञान के अन्ध कूप में पड़ी हुई है। इसी बात को सामने रख कर आर्य समाज की ओर से जालन्धर में एक अत्यन्त उपयोगी और महत्त्वपूर्ण कन्या महाविद्यालय स्थापित किया गया, जो लाला देवराज जैसे महानुभावों की संरक्षकता में दिन-दूनी रात चौगुनी उन्नति कर रहा है। इस विद्यालय के पीछे देश-भक्ति की अदम्य भावना काम कर रही है। अब तक कन्याओं के लिए केवल मामूली पढ़ना-लिखना और गिनती गिन लेना काफी समझा जाता था, परन्तु महाविद्यालय की योजना अपने ढंग की अनोखी और अनुकरणीय है, उसकी आकांक्षाएं महान् हैं।"

16 फरवरी 1906 की मद्रास की पत्रिका——'रीफार्मर'

3

".....इस संस्था में लड़कियों को अंग्रेज़ी शब्द ही नहीं रटाए जाते, बल्कि

संस्कृत, सिलाई, पाक-विद्या, चित्र-कला आदि विषयों की भी ठोस शिक्षा दी जाती है। यह संस्था अपने ढंग की अनोखी और अपूर्व है।"

बम्बई की पत्रिका——'इंडियन स्पैक्टेटर'
1908

4

पंजाब में स्त्री-शिक्षा का काम करने वाली सब से बड़ी संस्था जालन्धर का कन्या महाविद्यालय है। इस अत्युत्तम संस्था में केवल पंजाब ही की नहीं बल्कि सारे हिन्दुस्तान की छात्राएं शिक्षा प्राप्त करती हैं। इसके संस्थापक और सरगरम कार्य-कर्त्ता लाला देवराज जी की निःस्वार्थ सेवाओं ने इस संस्था को भारत भर की चोटी की संस्थाओं में से एक बना दिया है।

लाहौर की पत्रिका——'दीपक'
1914

5

भारत में आज चारों ओर स्त्रियों को राष्ट्रीय शिक्षा देने की चर्चा है। पूना में एक महिला महाविद्यालय खुला है। परन्तु हम नहीं जानते कि वहां राष्ट्रीय शिक्षा के किस आदर्श का अनुसरण किया जाएगा। हां, जालन्धर के कन्या महाविद्यालय के बारे में हम ज़रूर कह सकते हैं कि वहां वस्तुतः एक महान् राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की इस प्रगति की बुनियाद रखी जा रही है।

बंगाल की पत्रिका 'सर्वेण्ट' के
सम्पादक का लेख

6

".....देश में आज जगह जगह जो कन्या पाठ-शालाएं खुल रही हैं, वे जालन्धर के कन्या महाविद्यालय की कोशिशों और उसके प्रचार का ही फल है।"

लाहौर की पत्रिका 'देश'——
19 दिसम्बर 1914

7

".....गुजरात नैशनल कालिज एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का पहला कालिज

है। यह सब कन्या महाविद्यालय जालन्धर और गुरुकुल कांगड़ी के उदाहरण सामने रख कर किया जा रहा है। मुझे आशा है कि यह गुजरात में एक आदर्श कालिज का स्थान प्राप्त करेगा.....''।

13 नवम्बर 1920 को अहमदाबाद में गुजरात विद्यापीठ के उद्घाटन के महात्मा गाँधी के भाषण से उद्धृत

—×—

: 28 :

परिवर्तन

कन्या महाविद्यालय की स्थापना, 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में हुई और वह समय हमारे देश के लम्बी नींद के बाद कर्वट बदलने और आँखें मल कर अपने को स्मरण करने का था। देश की प्राचीन प्रतिभा की स्मृति ने एक आदर्श-वाद को जन्म दिया था। उसी आदर्श-वाद की प्रेरणा से इस संस्था का जन्म हुआ था। उस समय स्त्री-शिक्षा एक क्रान्तिकारी कार्य-क्रम था। सरकार की आर्थिक सहायता के बिना और सरकारी पाठ्य-क्रम से स्वतन्त्र शिक्षा का यह एक परम साहस का प्रयोग था। उस समय ऐसी स्त्री-शिक्षा-संस्था, कम से कम उत्तर भारत में, अन्यत्र नहीं थी। कन्याओं का छात्रावास तो निश्चित रूप में, इस क्षेत्र में सबसे पहले इसी संस्था ने स्थापित किया।

परन्तु इस क्रान्तिकारी प्रयोग के साथ-साथ अंग्रेज़ी ढंग की, सरकारी पाठ्य-क्रम की, शिक्षा भी बढ़ने लगी थी। जब एक बार स्त्री-शिक्षा का द्वार खुल गया तो स्थान-स्थान पर स्त्री-शिक्षा की पाठ-शालाएं खुलने लगीं, जो समय बीतने के साथ ऊंची शिक्षा के स्कूलों में भी बदल गईं। इस प्रकार स्थान-स्थान पर लड़कियों की पाठ-शालाओं और ऊंची शिक्षा के स्कूलों का जाल बिछने लगा। अंग्रेज़ी ढंग की शिक्षा प्राप्त करके युवकों को सरकारी नौकरियां मिलने लगी थीं और ऊंची शिक्षा पाकर ऊंची नौकरियां प्राप्त करने वाले युवक, पढ़ी लिखी लड़कियों से, पढ़ी लिखी भी सरकारी ढंग की लड़कियों से, विवाह करना चाहते थे। लाहौर आदि बड़े शहरों में लड़कियों के कालिज भी खुल गए थे। उन कालिजों में तो वही लड़कियां प्रविष्ट हो सकती थीं, जिन्होंने सरकारी उपाधियों की शिक्षा प्राप्त की थी। इस प्रकार लोगों की मांग थी कि उनकी लड़कियों को ऐसी शिक्षा मिले, जिसमें वे मैट्रिक आदि सरकारी परीक्षाएं पास करें और कालिजों में भी दाखिल हो सकें।

संस्था का प्रबन्ध जिन लोगों के हाथ में था वे काफी देर तक अपने आदर्श-वाद को बनाए रहे, परन्तु नए वातावरण के प्रभाव से संस्था में आने वाली कन्याओं की

संख्या घटने लगी। प्रबन्ध-कर्तृ-सभा के सदस्य भी परिवर्तन की मांग का प्रभाव महसूस करने लगे। परन्तु संस्था के संस्थापक, एक तरह से संस्था की आत्मा, लाला देवराज जी कहा करते थे....."मेरा मस्तिष्क परिवर्तन के पक्ष में है परन्तु हृदय परिवर्तन के विरुद्ध है।" अपने जीवन में आपने उस आदर्शवाद को बनाए रखा। 1935 में आपकी मृत्यु के बाद नज़र आने लगा कि परिवर्तन के बिना कोई चारा नहीं है। तो भी यही निर्णय किया गया कि दोनों पाठ्य क्रम चलते रहें। पुराना स्नातिका-पद्धति का पाठ्यक्रम भी रहे और जो छात्राएं मैट्रिक आदि परीक्षाएं पास करना चाहें, उन्हें प्राइवेट रूप में परीक्षाओं के लिए तैयार किया और भेजा जाए। बहुत वर्षों तक यह चलता रहा।

परन्तु ज़माने का प्रवाह बहुत तेज था। पुराना आदर्शवाद घटता जा रहा था। शिक्षा की व्यावहारिक उपयोगिता को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा था। शिक्षा के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति वह श्रद्धा नहीं रही थी। विज्ञान का युग भी बहुत तेज़ी के साथ आ रहा था। स्वतन्त्रता की ओर बढ़ रहे देश में लड़कियों के लिए सभी क्षेत्र खुलते जा रहे थे। स्त्री किसी भी क्षेत्र में पुरुष से पीछे नहीं रहना चाहती थी। इन परिस्थितियों में दिन प्रतिदिन पुरानी शिक्षा-पद्धति का ह्रास होता गया और सरकारी तथा विश्वविद्यालय की शिक्षा का क्षेत्र बढ़ता गया।

यह परिवर्तन होने पर भी संस्था की बुनियाद में पड़ा आदर्शवाद एक सहज अनुशासन और राष्ट्रीयता के वातावरण के रूप में संस्था को एक विशेषता प्रदान करता रहा। संस्था में ध्वजारोहण और राष्ट्र-गान का कार्य-क्रम और विशेष दिनों और अवसरों पर श्वेत खादी का वेश संस्था की विशेषताएं रहीं। इन बातों में अन्य संस्थाओं ने भी इस संस्था का अनुकरण किया। संस्था के वातावरण में एक ईमानदारी और पारस्परिक विश्वास की भावना रही। वर्षों तक संस्था में छात्राओं के लिए किसी प्रकार का, गैरहाज़िरी का भी, जुर्माना नहीं था, स्टाफ की हाज़िरी का रजिस्टर तक नहीं था। संस्था के हिसाब-किताब में कभी किसी तरह की गोपनीयता नहीं रही। संस्था के प्रबन्धक और प्रिंसिपल ऐसे रहे, जिनके जीवन से कुछ प्रेरणा मिल सकती थी, जिनके सामने पुराने आदर्शवाद का लक्ष्य झलकता था।

: 29 :

आचार्या कु० लज्जावती

75 वर्ष से संस्था के साथ

दुनिया में बहुत कम व्यक्तियों को किसी महान् कार्य या संस्था के साथ पौन शताब्दी से भी अधिक समय तक न केवल सम्पर्क रखने का, बल्कि उस के विकास में अपनी प्रतिभा तथा शक्ति लगाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा। यह सौभाग्य कन्या महाविद्यालय के साथ अपने जीवन को एकाकार कर देने वाली, इसे अपने जीवन का कार्य बना लेने वाली, आचार्या कु० लज्जावती को प्राप्त हुआ है। 1903 में, छः वर्ष की आयु में, संस्था के जीवन के शैशव काल में, एक प्रतिभा-सम्पन्न छात्रा के रूप में, संस्था में प्रवेश करने के समय से आज 1979 तक, अपनी 82 वर्ष की आयु तक, आप संस्था के साथ हैं।

उस समय की संस्था की सात-आठ वर्षों की पढ़ाई समाप्त करके आप 1910 में घर चली गईं। परन्तु उन सात-आठ वर्षों में संस्था के संस्थापक, लाला देवराज ने आपकी प्रतिभा और योग्यता को पहचान लिया था। उन्हें आप के अन्दर एक चिंगारी दिखाई दे गई थी जिसे वे अपनी छात्राओं में ढूंढते रहते थे। आप की स्मरण-शक्ति, कुशाग्र-बुद्धि और वाक्-प्रतिभा ने उन्हें प्रभावित कर दिया था। 1910 में वे पेशावर के आर्य-समाज-उत्सव में गए तो आप के घर पहुंच कर आपके माता-पिता से आप को छः मास के लिए मांग लाए। उस समय स्वामी श्रद्धानन्द की संस्था गुरुकुल कांगड़ी से कुछ पहले-पहले योग्य स्नातक निकले थे, जिन के आर्य-समाजों में दिए गए व्याख्यानों की धूम थी। कन्या महाविद्यालय की इस तेरह-चौदह वर्ष की स्नातिका के आर्य-समाजों में होने वाले व्याख्यानों की और भी अधिक धूम मची। आप की वाक्-प्रतिभा का प्रभाव तो था ही, इस के अतिरिक्त, उस पिछड़े समय में, स्त्री-शक्ति के जागरण के अरुणोदय-काल में, ऐसी छोटी आयु की लड़की का स्टेज पर बोलना और ओजस्वी रूप में बोलना, एक आश्चर्य ही था।

उस समय के, आर्य-समाज के श्रद्धेय महापुरुष, स्वामी सत्यानंद ने आप को प्रेरित किया कि आप अपने जीवन को आर्य-समाज तथा स्त्री-शक्ति-जागरण के कार्य के लिए

समर्पित कर दें। वैदिक धर्म और संस्कृति के संस्कार तो आप को जन्म ही से अपने प्रबुद्ध आर्य-समाजी नाना और अपनी धर्म-वृत्ति माता से मिल चुके थे, और कन्या महाविद्यालय के सात-आठ वर्ष के आप के अध्ययन-काल में इन संस्कारों का विकास भी हो चुका था। अब स्वामी सत्यानंद जी जैसे तपोधन महापुरुषों की प्रेरणा ने भी अपना काम किया। छः मास के लिए मांग कर लाई गई वह तेरह-चौदह वर्ष की छात्रा अपनी मातृ-संस्था के और आर्य-समाज के स्त्री-शक्ति-जागरण के कार्य में दीक्षित हो गई।

1913 में, केवल सोलह वर्ष की आयु में, विद्यालय की उस समय की आचार्या पंडिता सावित्री देवी के अस्वस्थ रहने के कारण, आप को उन की सहायता के लिए उपाचार्या नियुक्त कर दिया गया। 1918 में आचार्या सावित्री देवी के असामयिक निधन पर आप विद्यालय की आचार्या नियुक्त हो गईं। 1926 तक आपने इस कार्य को निभाया। आप के कार्य का, विशेषतः संस्था के लिए, एक वर्ष से भी कम समय में, पचास हज़ार रुपये जमा करके लाने का उल्लेख पिछले पृष्ठों में आ चुका है।

1920-21 में भारत में गांधी-युग आरम्भ हो गया था और देश की स्वतन्त्रता के लिए एक अद्भुत संग्राम आरम्भ हो चुका था। आप के राष्ट्रीय-भावना-सम्पन्न हृदय पर भी उस का प्रभाव होना स्वाभाविक था। 1920 में लाला लाजपतराय अमरीका से लौटे तो उनके सम्पर्क और व्यक्तित्व का प्रभाव भी आप पर पड़ा।

1916 में आप की माता के देहान्त से, आप की दो छोटी बहनों और एक छोटे भाई के पालन-पोषण और शिक्षण की ज़िम्मेवारी आप पर पड़ गई थी। आप अपने भाई-बहनों को अपने पास ले आईं। संस्था के संस्थापकों ने, लाला देवराज, राए बहादुर बदरी दास और अन्य प्रबन्धकों ने आप के उस विपत्ति-काल में जिस आत्मीयता का परिचय दिया, उसका वर्णन करते हुए आप भाव-विभोर हो जाती हैं। आप कहती हैं, "बच्चों को मेरे साथ भेजते हुए मेरे पिता ने मेरे मामा को इसलिए साथ भेज दिया था ताकि वह देखे कि यदि बच्चे आदर और सन्मान के साथ मेरे पास न रह सकते हों तो कुछ दिनों के बाद उन को वापिस ले आए। जब हमारी गाड़ी जालन्धर स्टेशन पर पहुँची तो संस्था की आचार्या और प्रबन्ध-कर्तृ-सभा के प्रायः सभी प्रमुख सदस्यों को हमारे स्वागत के लिए प्लेट-फार्म पर खड़े देख कर मेरे मामा बच्चों के सम्बन्ध में निश्चिन्त हो गए और मुझे भी अपनी स्वीकृत की गई उस पारिवारिक ज़िम्मेवारी को निभा सकने के लिए साहस प्राप्त हुआ।"

1926 तक आप की एक बहन का विवाह किया जा चुका था और दूसरे दोनों बच्चे स्कूलों की पढ़ाई समाप्त करके लाहौर में रह कर कालिजों की पढ़ाई करना चाहते थे। आप को लाला लाजपतराए के सानिध्य और राष्ट्रीय कार्य-क्षेत्र का आकर्षण

भी था। चाचा जी की अनुमति से आप उस वर्ष लाहौर चली गईं और 1935 में चाचा जी के निधन के पश्चात्, उन के जीवन-कार्य को सम्भालने के लिए पुनः विद्यालय में आईं। लाहौर में रहने के समय भी संस्था के साथ आप का जीवन्त सम्पर्क रहा। 1929 के, लाहौर में हुए, कांग्रेस-अधिवेशन में, आप स्त्री-स्वयं-सेविकाओं की कमांडर नियुक्त हुईं तो आपने अपने उस कार्य के लिए लगभग 150 लड़कियां विद्यालय की छात्राओं में से लीं। 1932 में विद्यालय में कृष्णा-भवन की आधार-शिला रखने के लिए आप को बुलाया गया।

लाहौर के आप के निवास-काल का एक महान्-कार्य सरदार भगत सिंह और उनके साथियों पर सरकार द्वारा चलाए गए केस में 'डिफ़ैंस' का काम था। इस कार्य के लिए जो समिति बनी उस की ज़िम्मेवारी आप पर थी। इस कार्य की एक अलग लम्बी कहानी है। इस कार्य में आपने महात्मा गांधी, पं० मोती लाल नेहरू, पं० जवाहर लाल नेहरू तक से सहायता प्राप्त करने में पूरी शक्ति लगाई और प्रीवी कौंसिल तक केस को ले जाने का प्रबन्ध किया।

1935 में आप विद्यालय के संचालन के लिए जालन्धर आईं तो आपने देखा कि पिछले दस वर्षों में ज़माना बदल चुका था। स्थान-स्थान पर स्कूलों की और शहरों में कालिजों की स्थापना हो चुकी थी। विद्यालय के पाठ्य-क्रम की शिक्षा के लिए आकर्षण नहीं रहा था। लोग नए ढंग की, सरकारी पाठ्य-क्रम की शिक्षा चाहते थे। पाठ्य-क्रम में परिवर्तन अपेक्षित था। संस्थापक महानुभाव के जीवन-काल से यह प्रश्न विचाराधीन था। वह परिवर्तन अनिवार्य मालूम हो रहा था। उस पुराने पाठ्य-क्रम के लिए छात्राओं के अभाव में संस्था के बन्द हो जाने तक की नौबत आ गई थी। ऐसी परिस्थितियों में वह परिवर्तन कर दिया गया। पुराने पाठ्य-क्रम को भी जारी रखा गया, परन्तु उस के साथ छात्राओं को प्राइवेट रूप में मैट्रीकूलेशन और कालिज की परीक्षाओं के लिए तैयार करने का क्रम भी आरम्भ कर दिया गया। पुराने पाठ्य-क्रम के लिए आने वाली लड़कियों की संख्या कम होते जाना स्वाभाविक था। परन्तु विश्व-विद्यालय के साथ सम्बंधित एक कालिज के रूप में संस्था की पहली श्रेणी ने अपनी परीक्षा स्वतन्त्रता-प्राप्ति के वर्ष में ही दी।

1935 से लेकर लगभग तीस वर्ष तक आप कन्या महाविद्यालय की आचार्या और प्रिंसिपल रहीं। यद्यपि इस काल में संस्था में नया सरकारी, विश्व-विद्यालय का, कार्य-क्रम आ रहा था, तो भी आपने संस्था की पुरानी राष्ट्रीयता और भारतीयता की परम्पराओं को बनाए रखने का पूरा प्रयत्न किया। सदा की तरह संस्था अपने अनुशासन और नैतिक वातावरण के लिए प्रख्यात रही। विद्यालय के छात्रावास में अपनी लड़की को दाखिल करके माता-पिता अपने को निश्चिन्त मानते थे। इस का सब से बड़ा कारण यह था कि आपके जीवन का केन्द्र विद्यालय ही था। स्कूल, कालिज और छात्रावास की प्रायः सभी प्रवृत्तियों की तरफ आप की नज़र रहती थी। छात्राओं

की संख्या बहुत बढ़ जाने तक आप प्राय: सभी लड़कियों को व्यक्ति-गत रूप में जानने-पहचानने की कोशिश करती थीं। संस्था की प्राय: हर एक प्रवृत्ति में आप का योग-दान रहता था। संस्था में होने वाले समारोहों की तैयारी में आप व्यक्ति-गत रुचि लेती थीं। आप की सदा यह इच्छा और कोशिश रही कि संस्था की छात्राओं का एक विशेष तथा शिष्ट, सभ्य और अनुशासित, व्यक्तित्व स्पष्ट नज़र आता रहे। यद्यपि किसी की त्रुटि आप की दृष्टि से बचना आसान न थी, तो भी आपने कभी किसी को, किसी छात्रा या चतुर्थ श्रेणी के कार्य-कर्त्ता तक को, जुर्माना नहीं किया था। बहुत देर तक संस्था में छात्राओं की अनुपस्थिति का जुर्माना भी नहीं था। बहुत वर्षों तक संस्था के अध्यापक-अध्यापिकाओं के लिए रजिस्टर में अपनी उपस्थिति लगाने की परम्परा भी नहीं थी।

संस्था के वातावरण को राष्ट्रीय बनाए रखने के प्रति आपका सर्वस्व-चिंतन रहा। सफेद खादी के वेश में, छात्राओं द्वारा संस्था के विशाल मैदान के बीच में एक ऊंचे स्तम्भ पर प्रति-सप्ताह राष्ट्रीय-ध्वजा लहराने और राष्ट्र-गान गाने की परम्परा आरम्भ करने का ज़िक्र पहले आ चुका है। उसी के साथ आपने स्टाफ के सदस्यों द्वारा छोटे-छोटे प्रेरणा-प्रद प्रवचनों का भी आरम्भ किया। ग्रामोफोन के रीकार्डों द्वारा भजन और राष्ट्रीय-गान भी आरम्भ किए गए।

सरस्वती-वन्दना, अमर-ज्योति और वन-महोत्सव के वार्षिक उत्सवों का कार्य-क्रम आपके चिंतन की उपज हैं। इन उत्सवों को एक आकर्षक और प्रभावी रूप देने के लिए आप का प्रयत्न जारी रहा। इन उत्सवों की तैयारी में आप की व्यक्ति-गत रुचि रहती थी। इन की पूर्व तैयारी में आप समय देती थीं, इन की 'रीहर्सल' को स्वयं देखती थीं।

जिस प्रकार संस्था के आरम्भ-काल से देश के महापुरुष संस्था में पधार कर प्रेरणा देते रहे उसी तरह आपके आचार्यत्व के उत्तर-काल में भी यह सिलसला जारी रहा। आप का सम्पर्क देश के विशाल राष्ट्रीय-क्षेत्र के साथ रहा ही था, इसलिए स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् ऊंचे से ऊंचे पदों पर आसीन राष्ट्र-पुरुष संस्था में पधारे; देश के प्राय: सभी राष्ट्र-पति संस्था में आए, देश के प्राय: सभी प्रधान मंत्री संस्था में पधारे।

आचार्या जी प्रिंसिपल के पद से मुक्त होकर प्रबन्ध-कर्तृ-सभा की उप-प्रधान के रूप में कार्य करती आ रही हैं। गुलाब देवी स्मारक हस्पताल तथा कई अन्य संस्थाओं के संचालन में भी आपने बहुत योग-दान दिया है। इस समय आप एक लम्बी बीमारी के बाद स्वास्थ्य-लाभ कर रही हैं।

—×—

: 30 :

आचार्या जी—

व्यक्तित्व तथा प्रतिभा

आप का पितृ-परिवार तथा मातृ-परिवार दोनों पश्चिमी पंजाब के 'साहीवाल' कस्बे से पेशावर में जा बसे थे। आप के नाना सीमा-प्रदेश में तहसीलदार थे। वह ज़माना स्वामी दयानन्द सरस्वती के पंजाब का भ्रमण करने का तथा आर्य-समाज की स्थापना का था। हो सकता है कि आपके नाना, लाला हाकिमराय ने स्वामी जी को देखा भी हो और उन के व्याख्यान भी सुने हों। कुछ भी हो लाला हाकिमराय पक्के आर्य समाजी थे और वे अपनी सन्तान को भी वैदिक शिक्षा-दीक्षा देना चाहते थे। उनकी दूसरी सन्तान पार्वती ने अपने को उस शिक्षा-दीक्षा की अधिकारी सिद्ध किया। आर्य समाज की शिक्षा-दीक्षा से सम्पन्न पार्वती ने अपनी प्रथम सन्तान के रूप में आप को जन्म दिया। अपने पिता के समान पार्वती जी की प्रबल इच्छा थी कि वे अपनी प्रथम सन्तान को आदर्श आर्य-सन्तान बनाएं। इस के लिए उन्होंने सब सम्भव उपाय किए। लगभग पांच वर्ष की आयु में आप को सन्ध्या-मंत्र, हवन-मंत्र और स्वस्ति-वाचन मंत्र ऐसे शुद्ध उच्चारण के साथ कंठस्थ थे कि पेशावर की काबुली दरवाज़ा आर्य समाज के एक समारोह में, स्टेज पर से आप के उच्चारण किए गए मंत्रों को सुन कर श्रोता आश्चर्य-चकित हो गए थे। आप की माता के साथ आप के नाना भी आप की शिक्षा-दीक्षा में रुचि लेते थे।

जैसे कि कहा जा चुका हैं आप की छः वर्ष की आयु में आप की माता ने आप को कन्या महाविद्यालय में पढ़ने भेज दिया और 1910 तक आप ने विद्यालय की उस समय की पढाई समाप्त कर ली। जैसे कि कहा जा चुका है चाचा जी की प्रेरणा और स्वामी सत्यानंद जैसे महापुरुषों के आशीर्वाद से आप स्त्री-शक्ति-जागरण के कार्य में रत हो गईं। आप का सब से स्पष्ट और प्रभावशाली गुण आप की वक्तृत्व-शक्ति था। आर्य-समाज के क्षेत्र में तो आप की वक्तृताओं की धूम थी ही, राष्ट्रीय आन्दोलन के दिनों में आप की इस शक्ति को और अधिक विशाल क्षेत्र मिल गया। हिन्दी में न बोल सकने वाले, देश-बन्धु चित्तरंजन दास जैसे, जो कांग्रेसी नेता जालन्धर में

अंग्रेज़ी में व्याख्यान देते थे, उन के व्याख्यानों को, वाक्य के बाद वाक्य, उसी, बल्कि उस से कुछ बढ़ कर, जोश के साथ, ओजस्वी हिन्दी भाषा में अनुवाद करते जाने की आप की कला से जालन्धर और पंजाब के लोग मंत्र-मुग्ध हो जाते थे।

1926 से अपने लाहौर के निवास-काल में आपने लाला लाजपतराय से प्रेरणा पाकर विशाल अध्ययन किया। राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के लिए और सत्याग्रह करके जेल जाने के लिए भी आपने तैयारी कर ली थी, परन्तु लाला लाजपतराय ने आप को यह कदम उठाने की इजाज़त नहीं दी थी। 1934 तक आप अपने भाई-बहनों की शिक्षा-दीक्षा की ज़िम्मेवारी से मुक्त हो गईं तो आप ने गांधी जी के रचनात्मक कार्य-क्रम को देखने के लिए वर्धा और सेवा-ग्राम की यात्रा की। परन्तु, जैसे कि कहा गया है, 1935 में चाचा जी की मृत्यु के पश्चात् विद्यालय की प्रबन्ध-कर्तृ-सभा ने आपसे अनुरोध किया कि आप अपनी मातृ-संस्था की बाग-डोर संभालें और आपने उस अनुरोध को स्वीकृत कर लिया।

अब आप एक ऐसी संस्था की आचार्या थीं जो कालिज की श्रेणियों की पढाई को अपना रही थी। इस के लिए आपने आवश्यक समझा कि आप को भी कालिज में पढ़ाए जाने वाले विषयों का अच्छा ज्ञान होना ही चाहिए। इस दृष्टि से आपने अपने अध्ययन का कार्य-क्रम बनाया और कुछ ही वर्षों में अपनी योग्यता इतनी बढा ली कि विज्ञान और गणित आदि कुछ विषयों को छोड़ कर, आप प्राय: किसी भी विषय पर, उस विषय के प्राध्यापक-प्राध्यापिका के साथ बात कर सकती थीं।

कन्या महाविद्यालय के आप के आचार्यत्व-काल में आपकी प्रतिभा का सब से अधिक स्पष्ट दर्शन आप की समय-समय की संक्षिप्त परन्तु प्रभाव-शाली और ओजस्वी वक्तृताओं में होता था। अपनी वक्तृत्व-शक्ति और कार्य-दक्षता से आप सदा स्टाफ तथा छात्राओं को पूरे नियन्त्रण में रख सकीं। आप के कार्य-काल में कभी ऐसा वातावरण नहीं बना कि स्टाफ या छात्राओं में ज़रा निरकुंशता की भावना दिखाई दी हो। जैसे कि पहले कहा जा चुका है, आप ने किसी छात्रा या छोटे कहे जाने वाले किसी अधिकारी को भी, निकालना तो एक तरफ रहा, कभी जुर्माना तक नहीं किया। यदि आपको कभी किसी छात्रा या अधिकारी को डांटने की ज़रूरत महसूस हुई तो बाद में जल्दी ही, कोई अवसर ढूंढ कर भी, आपने उस डांट से पैदा हुए मनो-मालिन्य को ऐसे दूर कर दिया जैसे कि एक माता बच्चों के प्रति या एक बड़ी बहन छोटे भाई-बहनों के प्रति करती है।

आप की स्मृति, विशेषत: संस्था की पुरानी छात्राओं के प्रति, अद्भुत है। संस्था की कोई बहुत पुरानी छात्रा भी, आप से मिल कर और अपने सम्बन्ध में आप की स्मृति को देख कर, अपनत्व का अनुभव करती है।

संस्था के किसी, सामान्य से सामान्य, कार्यकर्ता की, बीमारी आदि की विपत्ति में उस की पूरी मदद करना और अपने विशाल सामाजिक सम्पर्क के आधार पर उस को समुचित मदद दिलाना आपके स्वभाव में रहा है।

आप ने संस्था को अपनी माता भी समझा है और सन्तान भी। माता समझ कर आप ने संस्था की परम्पराओं का आदर किया है और सन्तान समझ कर इस के रूप और चरित्र को उज्ज्वल से उज्ज्वलतर देखने की आकांक्षा की है।

—×—

: 31 :

आचार्या जी से कुछ प्रश्नोत्तर

संस्था के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है उस की काफी जानकारी आचार्या जी से मिली है। तो भी आप की भावनाओं के स्पष्ट चित्रण के लिए कुछ तथ्य आप के साथ हुए तत्सम्बन्धी प्रश्नोत्तर के रूप में देना भी समुचित जान पड़ता है। लेखक के प्रश्नों के उत्तर में जो कुछ आपने कहा उस का सार लेखक के अपने शब्दों में दिया गया है।

प्रश्न—आचार्या जी ! आप के हृदय में, संस्था के संस्थापक चाचा जी के लिए ऐसी अगाध श्रद्धा है। तो भी क्या आप बता सकती हैं कि उनके कौन से गुण का आप पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा ?

उत्तर—चाचा जी के व्यक्तित्व का स्मरण करती हूं तो मुझे उनके अन्दर किसी दोष की तो छाया भी नज़र नहीं आती, सब गुण ही गुण नज़र आते हैं। और यह कहना भी मुश्किल है कि उनका कौन सा गुण किसी दूसरे गुण से कम मालूम होता था। हम तो उन्हें अपने पिता और अपनी माता ही मानती थीं। माता-पिता के गुणों का विश्लेषण करने की ओर ध्यान ही नहीं जाता।

प्रश्न—आचार्या जी ! क्या आप ने कभी चाचा जी को क्रोध में देखा ?

उत्तर—मुझे याद नहीं पड़ता कि कभी मैं ने उन्हें क्रोध की मुद्रा में देखा हो। यदि वे सभी लड़कियों से रूठते भी थे तो उसी तरह जिस तरह माता अपने बच्चे से रूठ कर थोड़ी देर चुप रहती है या खाना छोड़ देती है।

प्रश्न—चाचा जी के अतिरिक्त संस्था के किन-किन स्त्री-पुरुषों का आप पर कैसा-कैसा प्रभाव पड़ा ?

उत्तर—चाचा जी के स्त्री-शिक्षा के कार्य के आरम्भ ही में उन के साथ लगने वाले पं० श्रीपति पुराने ढंग के एक नेक और चरित्रवान् पंडित थे जिन की सौम्य और ऋषियों जैसी आकृति का प्रभाव पड़ता था।

संस्था के धर्म-शिक्षा के अध्यापक भक्त रैमलदास बहुत ही कट्टर और आदर्श-वादी आर्य समाजी थे। उनके स्वभाव में क्रोध होते हुए भी अपने ऊंचे चरित्र और शिक्षण के नैपुण्य के कारण वे सब के श्रद्धा-पात्र थे।

आचार्या सावित्री देवी पुराने ढंग की लज्जाशील और श्रद्धावान् देवी थीं जो चाचा जी के हर शब्द को अपने लिए एक आज्ञा मानती थीं और उस का पालन करती थीं।

आश्रम की अधिष्ठात्री सभद्राबाई अनशासन-प्रिय और ज़रा कड़े स्वभाव की थीं परन्तु छात्राओं की सेवा में माता के समान थीं।

प्रबन्धक-वर्ग में से मझे रायबहादर बदरीदास से प्रबन्ध-कुशलता, वैज्ञानिक चिंतन और विशाल अध्ययन की प्रेरणा मिली।

प्रश्न—आचार्या जी ! उस ज़माने में. ऐसी छोटी आयु में आप को सेवा-कार्य में लगाने और लगाए रखने वाली अन्तःकरण की कौन सी शक्ति थी ?

उत्तर—चाचा जी ने छात्राओं के अन्दर समाज-क्रांति की एक ज्योति जला दी थी। अन्तःकरण में प्रज्ज्वलित वही ज्योति वह शक्ति थी जिस के आधार पर मन उस कार्य में रमा रहता था।

प्रश्न—आचार्या जी. एक नाज़ुक प्रश्न पूछना चाहता हूं। उस ज़माने में, जब लड़कियों का विवाह, और छोटी आयु का विवाह, आवश्यक माना जाता था, आप ने कौमार्य का जीवन अपनाया। यह कठिन व्रत आपने कैसे लिया ?

उत्तर—मैं ने कभी कुमारी रहने का व्रत नहीं लिया। कुछ तो स्वभाव ही में विवाहित जीवन के प्रति बहुत आकर्षण नहीं था और कुछ स्त्री-शक्ति-जागरण के आन्दोलन में रमे रहने के कारण इधर ध्यान नहीं जाता था। इस विषय में माता-पिता पुराने विचार के थे परन्तु उन्होंने मेरी रुचि को सहन कर लिया। 1916 में, जब मैं केवल उन्नीस वर्ष की थी, परमात्मा ने मेरे ज़िम्मे अपने भाई-बहनों के पालन का और उनकी शिक्षा-दीक्षा का कार्य लगा दिया। इस तरह यह सब भगवान् की पूर्व-निश्चित योजना के अनुसार ही हुआ मालूम होता है। इस में मेरा कोई विशेष व्रत या प्रयत्न नहीं है।

प्रश्न—क्षमा करें, क्या कभी आप को अपने जीवन में निराशा या 'फ्रस्ट्रेशन' का अनुभव भी हुआ है ?

उत्तर—इस दृष्टि से मैं सौभाग्यशाली रही हूं कि मुझे कभी ऐसी अनुभूति नहीं हुई। आरम्भ में समाज-सेवा के आदर्शवाद का सहारा और चाचा जी जैसे पितृ-मातृ-तुल्य महापुरुष का स्नेह मिला। बाद में इस के साथ भाई-बहनों की सेवा का कार्य

आ मिला। तत्पश्चात् लाला लाजपतराय का स्नेह और सम्पर्क मिला तथा भगत सिंह जैसे युवकों को बचा लेने की धुन रही। जब दोबारा विद्यालय में आई तो संस्था के नए निर्माण की धुन लग गई। अच्छी पुस्तकों से प्रेम जीवन का एक सम्बल रहा।

जितने महापुरुषों का सम्पर्क और सानिध्य मुझे मिला उतना कम लोगों को मिला होगा। सरोजिनी नायडू, पं० मोतीलाल नेहरू, देशबंधु दास, लाला लाजपतराय, पं० जवाहरलाल नेहरू जैसे महापुरुषों के साथ स्नेह-सम्पर्क रहा। अपने छोटे भाई-बहनों के प्रति स्नेह की अनुभूति ने सन्तान के प्रति स्वाभाविक स्नेह की पूर्ति कर दी।

इस के अतिरिक्त संस्था की प्रबन्ध-कर्तृ-सभा की ओर से मुझे सदा विश्वास और आदर प्राप्त रहा। राय बहादुर बदरी दास जैसे महान् व्यक्तित्व के साथ सम्पर्क रहना भी एक सौभाग्य था।

इन हालात में मैं उस निराशा और 'फ्रस्ट्रेशन' की अनुभूति से बची रही जिस के शिकार बहुत से समाज-सेवक हो जाते हैं!

—×—

: 32 :

नए युग में पुरानी भावनाओं की रक्षा

जैसे कि कहा जा चुका है 1935 में लाला देवराज जी के दिवंगत हो जाने के साथ संस्था का पुराना युग, उत्कट आदर्श-वाद का युग, समाप्त हो गया और उसकी जगह एक नए युग का, बदलते हुए समय के अनुरूप बदलने के युग का, आरम्भ हुआ। परन्तु पुरानी परम्पराओं के कारण तथा संस्थापक के व्यक्तित्व के कारण, संस्था के वातावरण में जो रंगत थी, जो सुगन्ध थी, उस का अस्तित्व जल्दी जाने वाला नहीं था। इसके अतिरिक्त लाला जी के छोड़े कार्य की बाग-डोर संभालने वाली आचार्या कु० लज्जावती संस्था की तथा संस्थापक की भावनाओं और प्रेरणाओं ही के वातावरण में पली थीं और स्वयं भी आदर्शवादी और राष्ट्रीय दृष्टि-कोण रखती थीं। अतः उनके मार्ग-दर्शन में, नए परिवर्तन और विकास के ज़माने में भी, उन पुरानी भावनाओं और प्रेरणाओं को यथासंभव सुरक्षित रखने के प्रति पूरा प्रयत्न रहा। प्रबंध-कर्तृ-सभा के अध्यक्ष राय बहादुर बदरी दास और उनके साथी भी इस प्रयत्न में आचार्या जी के सहायक रहे।

अब विद्यालय, अपने नए रूप में आगे से आगे विकास करता जा रहा था। आगे से आगे, नए-नए विषयों में कालिज की श्रेणियां आरम्भ होती जा रही थीं। शिक्षा पर वैज्ञानिक युग का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। देश की राष्ट्रीय भावनाएं भी ऊंची उठ रही थीं। गांधी जी के आदर्शवाद का प्रभाव भी वातावरण में था। संस्था के वातावरण को इन सब प्रभावों के अनुरूप एक स्वस्थ रूप में ढालने का प्रश्न था। इसके लिए एक तरफ संस्था ने राष्ट्र के महापुरुषों को संस्था में बुला-बुला कर या उनके सम्बन्ध में समारोह करके तथा दूसरे संगीत और साहित्य के माध्यम से उस आदर्शवाद को बनाए रखा और इन भावनाओं का विकास किया।

जैसे कि पहले कहा जा चुका है इस संस्था ने इस शताब्दी के आरम्भ ही के वर्षों में, संगीत को और वह भी भारतीय संगीत को, अपने कार्य-क्रम में स्थान दिया था। अब कालिज की ऊंची श्रेणियां आरम्भ होने के साथ संस्था में संगीत की शिक्षा का स्तर और अधिक बढ़ता गया। पंजाब के शिक्षा-पाठ्य-क्रम में, कन्या-स्कूलों और

कालिजों में संगीत को जो विशेष स्थान मिला है उसका मुख्य श्रेय कदाचित् इसी संस्था के संगीत की शिक्षा के प्रति आदर और सम्मान को है। सांस्कृतिक और राष्ट्रीय भावनाओं के संचार के लिए संगीत एक प्रभाव-शाली माध्यम बन सकता है और इस संस्था में वह विशेष रूप में ऐसा बना भी। संगीत के साथ साहित्य का, विशेषत: कविता का, संयोग हो जाए तो इस दिशा में संगीत की शक्ति बहुत बढ़ जाती है और इस संस्था में यह संयोग भी हुआ और यह शक्ति भी बढ़ी।

संगीत और कविता के आधार पर संस्था में ऐसे कुछ वार्षिक समारोहों का विकास हुआ जिन के माध्यम से छात्राओं पर इन आदर्श-वादी और राष्ट्रीय भावनाओं की छाप पड़ना स्वाभाविक था, जो भावनाएं संस्था के वातावरण में इस के पुराने युग से बीज-रूप में चली आई थीं और जिन के प्रति संस्था की नई संचालिका कु० लज्जावती को विशेष आकर्षण और आग्रह था। वे ऐसे अवसरों की तलाश में रहती थीं जिन्हें ऐसे काव्य-संगीत-प्रधान, प्रभाव-शाली समारोहों के साथ सम्बन्धित किया जाए। संगीत और काव्य के सम्बन्ध में उन की अपनी रुचि भी परिष्कृत है। संगीत का तो उन्होंने स्वयं भी अभ्यास किया है और वे इस की अच्छी जानकारी रखती हैं। उन्हें अच्छी कविता की श्रोताओं और पाठकों के हृदयों तक पहुंच सकने वाली कविता की भी पहचान है। इन सब बातों के मिलने से संस्था में ऐसे संगीत-मय और काव्य-मय समारोहों के आयोजन का वातावरण बन गया जो छात्राओं के हृदयों में मातृ-संस्था के लिए, उसके संस्थापक के लिए, देश-भूमि के लिए, राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए और भारतीय संस्कृति के लिए प्रेरणा के स्रोत बन सकें।

यह तो मानी हुई बात है कि कन्याओं के हृदय, लड़कों के हृदयों की अपेक्षा, अधिक भावना-प्रधान और द्रवण-शील होते हैं। एक अच्छी सजीव संगीतमय कविता को गान करते हुए वे उस में अपना हृदय उंडेल सकती हैं। अच्छा संगीत जानने वाली और ऐसी कृतियों को ठीक से गा सकने वाली छात्राएं संस्था में थीं ही।

इन सब शक्तियों को प्रयोग में लाकर आचार्या जी ने संस्था में 'अमर-ज्योति' 'सरस्वती-पूजन', 'वन-महोत्सव', 'शहीदों की स्मृति', 'रक्षा-बन्धन' आदि कई समारोहों का वार्षिक आयोजन आरम्भ किया। इन समारोहों में से पहले दो समारोह, 'अमर-ज्योति' और 'सरस्वती-पूजन' तो आज तक चलते हैं। इन में से पहला समारोह, 'अमर-ज्योति' समारोह एक तरह से सत्र के अंत का दीक्षान्त-समारोह है और दूसरा समारोह 'सरस्वती-पूजन' नए सत्र के आरम्भ का दीक्षा-समारोह है।

'वन-महोत्सव का समारोह वर्षा-काल में वृक्षा रोपण का समारोह है जो कुछ वर्षों तक मनाया जाता रहा और जिस की अन्तर्निहित भावना आज के हमारे देश, बल्कि सारी दुनिया के लिए एक आवश्यक मानवी भावना है। हमारे देश में, और शेष देशों में भी, जंगलों के निरन्तर कटते जाने से और नए वृक्षों के आरोपण की अवहेलना

करने से पर्यावरण भी दूषित हो रहा है, वर्षाओं का संतुलन भी बिगड़ता है, भू-स्खलन भी होता है और बाढ़ों के प्रकोप का भी सामना करना पड़ता है। भारतीय संस्कृति तो वनों और जंगलों की संस्कृति हैं। हमारे वैदिक ऋषियों के आश्रम वन्य-प्रदेशों ही में होते थे। यह महोत्सव तो एक तरह से हमारा महत्त्व-पूर्ण राष्ट्रीय-समारोह होना चाहिए, जिस से नए वृक्षों के आरोपण तथा संवर्धन की और पुराने वृक्षों के संरक्षण की प्रेरणा मिले।

30 जनवरी का दिन हमारे देश में ज्ञात और अज्ञात राष्ट्रीय शहीदों को श्रद्धांजलि देने और स्मरण करने का दिवस है। देशों और कौमों का जीवन बलिदानों ही पर पनपता है। यह समारोह भी हमारा एक मुख्य राष्ट्रीय समारोह होना चाहिए। इस का आयोजन और अधिक परिष्कृत रूप में किया जा सकता है।

'रक्षा-बन्धन' का पर्व हमारे देश का एक राष्ट्रीय पर्व है। इस के पीछे एक गहरी सांस्कृतिक भावना है। इस का सम्बन्ध ऋषियों के प्राचीन वेद-गान के साथ भी है और मध्य-युग की भ्रातृ-भावना के साथ भी है। इस पर्व को भी और अधिक परिष्कृत रूप में मनाने से देश का जीवन सांस्कृतिक रूप में अधिक समृद्ध होगा।

—X—

: 33 :

सरस्वती-वन्दना-समारोह

प्राचीन-काल से हमारे देश में वर्षा-काल अध्ययन-अध्यापन और चिंतन-मनन का समय माना गया है। प्राचीन वैदिक आश्रमों में वर्षा-काल में वेदाध्ययन और वेद-गायन के सत्र चलते थे। बौद्ध और जैन-परम्परा में और अन्य साधु-परम्पराओं में भी, चौमासा, वर्षा-काल के चार मास, एक स्थान पर टिक कर, भ्रमण छोड़ कर, अध्ययन-अध्यापन, चिंतन-मनन और प्रवचन के मास, माने गए हैं। गुरु-पूर्णिमा, गुरु-पूजन, का पर्व इसी मौसम में पड़ता है जो गुरु-शिष्य परम्परा का एक प्रतीक है।

इसी वर्षा-ऋतु में आज के महाविद्यालयों के, विश्व-विद्यालयों के, नए सत्र आरम्भ होने का समय होता है। महाविद्यालयों और विश्व-विद्यालयों में नए छात्र-छात्राएं प्रवेश करते हैं। बहुत से स्थानों पर, विशेषतः लड़कों के शिक्षण-संस्थानों में, नए विद्यार्थियों को, उपहास रूप ही में सही, तंग करने का रिवाज भी प्रचलित है। परन्तु कन्या महाविद्यालय में इस अवसर को, सरस्वती-वन्दना नाम के एक सुसंस्कृत और प्रभाव-शाली ढंग से, एक सुन्दर पर्व का रूप दिया गया। पुरानी छात्राएं नई छात्राओं का स्वागत करती हैं, जिस में देश-भूमि तथा मातृ-संस्था के प्रति अपने उद्‌गार व्यक्त करती हैं ओर नई छात्राएं ऐसे ही उद्‌गारों, ऐसी ही भावनाओं, के रूप में इस स्वागत का उत्तर देती हैं। इन उद्‌गारों और भावनाओं को कविताओं का रूप दिया गया है जिन्हें वे अपनी-अपनी बारी से मिल कर गाती हैं।

इस मिलन-गान के पश्चात् सभी नई पुरानी छात्राएं मिल कर, ज्ञान और विद्या की अधिष्ठात्री देवी, सरस्वती, को सम्बोधित करके एक गान गाती हैं, जिस में देश की प्राचीन गौरव-गाथा के संकेत हैं, देश के भावी गौरव के सपनों की कल्पनाएं हैं और जीवन को ज्ञान और विद्याओं से अलंकृत करने की आशाएं हैं। सभी छात्राएं संस्था में अपने शिक्षण-काल के तेजस्वी और उपयोगी होने के लिए वर मांगती हैं।

इस समारोह के अवसर पर गाए जाने वाले गान यहां दिए जा रहे हैं—

नवागत छात्राओं के स्वागत में

स्वागत है स्वागत है स्वागत आने वाली बहिनों का।
स्वागत करती है सरस्वती के इस मन्दिर की प्रतिमा॥

देश-प्रेम है इस मन्दिर की नीवों की आधार-शिला।
इस प्रदेश की नारी को यां से भारत का प्यार मिला॥

इस मन्दिर के निर्माता का जीवन उन्नत जीवन था।
देश-प्रेम-मय भक्ति-भाव-मय औ', सेवा-रत जीवन था॥

यही भावनाएं अंकित हैं इस मन्दिर के कण-कण में।
इन्हीं भावनाओं को दोहराना है पूजन-अर्चन में॥

बोल-चाल व्यवहार सभी का शिष्ट नम्र माधुर्य-भरा,
आदि-काल से इस मन्दिर में प्रचलित है यह परम्परा॥

यही भावनाएँ प्रसाद में इस मन्दिर से मिलती हैं।
इस जलवायु के प्रभाव से ये कलिकाएँ खिलती हैं॥

पूजन-अर्चन इस मन्दिर में सब को मिल कर करना है।
वरदानों के पुष्पों से जीवन-आंचल को भरना है॥

सरस्वती-पूजन-अर्चन से हम सब को वरदान मिले।
देश-प्रेम, ऊँचा चरित्र, सद्विद्याओं का ज्ञान मिले॥

—×—

नवागत छात्राओं का उत्तर

धन्यवाद है धन्यवाद है धन्यवाद तुम बहिनों का।
इस मन्दिर में पूजा-अर्चा का हम को सौभाग्य मिला ॥

इस मन्दिर का यशोगान सुन-सुन कर हम यां आई हैं।
प्रेम और श्रद्धा के सुमनों से आंचल भर लाई हैं ॥

हमें ज्ञात है हमें देश की मिल कर सेवा करना है।
सब ऐश्वर्यों और गुणों से भारत का घर भरना है ॥

हमें ज्ञात है भारत की रक्षा का भार हमीं पर है।
दुनिया में भारत के गौरव का आधार हमीं पर है ॥

हमें ज्ञात है भारत को सुदृढ़ औ' सबल बनाना है।
इन्हीं भावनाओं को हम ने यां आकर पनपाना है ॥

यां की परम्पराओं को हम अच्छी तरह निभाएँगी ।
यां पर मिलने वाले वरदानों को हम अपनाएँगी ॥

स्मरण रहेगा निर्माता का उच्च भावना-मय जीवन।
सच्चरित्र के लिए हमारा होगा पूजन औ' अर्चन ॥

आई हैं हम इस मन्दिर में ऊँची आशाएँ लेकर।
जाएंगी हम उच्च भावनाएँ औ' विद्याएँ लेकर ॥

—×—

सरस्वती–प्रार्थना

जय जय जय सरस्वती माता,
जय जय जय वरदा माता ।
भारत का अतीत जीवन था
पूर्ण तेरे वरदानों से ।
गूंज रहा था अखिल विश्व
तेरी वीणा की तानों से ।
सुनते थे सब देश जगत् के
कौतूहल के कानों से ।
उन देशों के जीवन में
अंकित है अब तक वह आभा ।
जय जय.....

तेरी आभा से भारत का
जीवन पुनः अलंकृत हो ।
तेरे सुप्रकाश को पा कर
नव भारत आलोकित हो ।
तेरी वीणा की झँकारों
से नव जीवन झँकृत हो ।
दिग् दिगन्त में फिर से फैले,
भारत के यश की गाथा ।
जय जय.....

विद्या ज्ञान सम्पदाएँ
मानव ने तुझ से पाई हैं ।

हम नव भारत-सन्तानें
तेरे चरणों में आई हैं ।
श्रद्धा और प्रेम के सुमनों
से आँचल भर लाई हैं ।
तेरे वरदानों के जल से
प्लावित हो जीवन सरिता ।
जय जय.....

इस तेरे मन्दिर में पूजा
अर्चा सफल हमारी हो ।
ज्ञान और विज्ञान-अलंकृत
नव भारत की नारी हो ।
माता के यश की गाथा
हम को प्राणों से प्यारी हो ।
प्रखर तेज के साथ प्रकाशित
हो नव-भारत की प्रतिभा ।
जय जय.....

—×—

: 34 :

अमर-ज्योति-समारोह

जैसे कि अभी कहा गया है, संस्था की परम्पराओं में एक प्रभाव-शाली परम्परा कन्याओं का वार्षिक 'अमर-ज्योति' समारोह है। इस समारोह के वर्तमान रूप का क्रमशः विकास हुआ है।

शिक्षा-संस्थाओं में जब बड़ी श्रेणियों के छात्र-छात्राएं अपनी पढ़ाई समाप्त करके जाते हैं तो छोटी श्रेणियों के छात्र-छात्राएं उन्हें विदाई देते हुए, अपने किन्हीं प्रतिनिधियों के द्वारा, उनके प्रति आदर और स्नेह के भाव प्रकट करते हैं, जिनके उत्तर में विदा होने वाले छात्र-छात्राएं भी, अपने प्रतिनिधियों के मुख से, वैसे ही भाव प्रकट करते हैं। सामान्यतः ऐसे समारोहों में, विशेषतः लड़कों के समारोहों में, कोई गहरी हार्दिक भावना नहीं होती, एक शिष्टाचार-मात्र होता है। अध्यापक-अध्यापिकाएं भी सामान्यतः शिष्टाचार के रूप में जाने वाले छात्र-छात्राओं को उपदेश और आशीर्वाद देते हैं।

परन्तु इस संस्था के ऐसे समारोह निष्प्राण नहीं होते थे। एक तो लड़कियां लड़कों की अपेक्षा बहुत भावना-प्रधान होती हैं और दूसरे संस्था की पारिवारिक और हार्दिक पृष्ठ-भूमि का प्रभाव भी इन समारोहों में झलकता था। भावना-शील अध्यापक-अध्यापिकाओं के विदा के शब्दों से और विदा करने वाली अपनी बहनों के स्नेह-सिक्त भावों से छात्राएं; विशेषतः विदा होने वाली छात्राएं, बहुत प्रभावित होती थीं, उनके फूट-फूट कर रोने की आवाज़ भी आती थी, उनके आंसू तो गिरते ही थे। कई लड़कियां तो भावातिरेक से बेहोश हो कर गिर भी जाती थीं और उन्हें उठा कर बाहिर ले जाना पड़ता था। समारोह के बाद घंटों तक छात्रावास में छात्राओं का ऊंचे-ऊंचे रोना जारी रहता था।

इस समारोह को छात्राओं के हृदयों में देश-प्रेम और मातृ-संस्था-प्रेम के विकास के लिए और स्त्री-हृदय की द्रवण-शीलता को एक अधिक स्वस्थ रूप में परिवर्तित करने के लिए, विदा होने वाली छात्राओं के द्वारा एक प्रज्ज्वलित दीपक, संस्था की

उज्ज्वल परम्पराओं का एक प्रतीक, विदा करने वाली छात्राओं के हाथों में सौंपने की प्रक्रिया अपनाई गई। उस प्रज्ज्वलित प्रदीप के कारण इस समारोह को 'अमर-ज्योति' नाम मिल गया। इस प्रक्रिया के रूप में पुरानी, विदा होने वाली छात्राएं, अपने से पहली छात्राओं से प्राप्त, मातृ-संस्था की परम्पराओं की ज्योति को आगे की छात्राओं को सौंप कर कहती हैं—"इस ज्योति को हम ने अपने से पहले की बहनों से प्राप्त किया है और इस के प्रकाश को सुरक्षित रखा है। अब हम यह ज्योति तुम्हें सौंपती हैं और आशा करती हैं कि तुम भी इस के प्रकाश को कायम रखोगी और बढ़ाओगी।" ज्योति ग्रहण करने वाली छात्राएं कहती हैं—"यह ज्योति हमें हमारे प्राणों के समान है और हम इसके प्रकाश को सुरक्षित रखेंगी। 'चाचा जी' की प्रज्ज्वलित की गई ज्योति की आभा धीमी नहीं होगी।"

इस समारोह की भावनाओं के अनुरूप कविताओं की रचना हो गई, जिन्हें छात्राएं मिल कर गाती हैं। इन कविताओं में देश-प्रेम की भावनाएं, मातृ-संस्था के स्नेह की भावनाएं, मातृ-भूमि के प्राचीन उत्कर्ष की स्मृतियां और संस्था के संस्थापक के प्रति आदर के उद्‌गार गुम्फित हैं।

इस प्रक्रिया से छात्राओं के द्रवण-शील हृदयों को एक स्थूल आधार मिल गया और मातृ-हृदय की वह विरह-भावना एक ठोस रूप में प्रवाहित हो गई। तो भी मातृ-संस्था को छोड़ने की भावना, माता से अलग होने की भावना, तो हृदयों में रहती ही थी। और दीपक प्रज्ज्वलित करने की प्रक्रिया के कारण यह समारोह सायं-काल, अंधेरा आरम्भ होने के समय होता था, जो समय मानव-हृदय में सुरक्षित, विरह की, मानव के अपने स्रोत भगवान् के विछोह की, अनुभूति का समय है। इस आधार पर वह रोदन, विशेषत: कुछ अधिक भावना-शील छात्राओं में, फूट ही पड़ता था। इसके लिए समारोह का समय बदल दिया गया और समारोह दिन में होने लगा।

'अमर-ज्योति' समारोह एक तरह से संस्था का दीक्षान्त समारोह बन गया। बहुत दिनों तक इस की तैयारी होती रहती और इस समारोह के बाद ही छात्राओं कों परीक्षाओं की तैयारी की छुट्टियां होने की बात निश्चित हो गई।

इस समारोह के अवसर पर, सम्मिलित रूप में गाई जाने वाली कविताएं यहां दी जा रही हैं—

मातृ-वन्दना

नमो देश-भूमि, नमस्ते नमस्ते, नमो मातृ-भूमि, नमस्ते नमस्ते।

तेरी कोख से जन्म हमने लिया है,
तेरा अन्न खाया तेरा जल पिया है,
हमें ज्ञान विज्ञान तूने दिया है,
हमारे लिये तूने सब कुछ किया है,

बनी हम हैं जो कुछ बनी हैं तुझी से, नमो मातृ-भूमि, नमस्ते नमस्ते।

तेरी बेटियां तेरे चरणों में आकर,
मुहब्बत से औ' प्यार से सिर झुका कर,
तेरे प्रेम से द्रवित आंसू बहा कर,
तेरे चरण-कमलों में तन-मन चढ़ा कर,

उपस्थित हैं आसीस पाने को तुझ से, नमो मातृ-भूमि, नमस्ते नमस्ते।

तेरी आन को शान को हम बढ़ायें,
बढ़ायें सभी सुख सभी सम्पदायें,
बढ़ायें सभी ज्ञान औ' सब कलायें,
तेरे प्रेम के प्यार के गान गायें,

तेरा यश जगत् भर के देशों में फैले, नमो मातृ-भूमि, नमस्ते नमस्ते।

सभी के उदय का है आह्वान तेरा,
सभी के भले का है वरदान तेरा,
जगत् के लिये शुभ हो उत्थान तेरा,
जगत् में हो फिर से यशो-गान तेरा,

रहें लोग सब प्रेम से एकता से, नमो मातृ-भूमि, नमस्ते नमस्ते।

—×—

अमर-ज्योति-गान

(1)

जय जय जननी, जय जय माता,
जय जय जय विद्यालय माता ।

तूने हम को गोद लिया है,
ज्ञान दिया विज्ञान दिया हैं,
मन को मालामाल किया है,
हम ने निर्मल दूध पिया है
देश-प्रेम का औ' विद्या का ।
जय जय जननी.....।

(2)

तेरी गोदी में पल पल हम,
सेवा-व्रत ले निकल निकल हम,
धारण कर अति उज्ज्वल बल हम,
करके जीवन को निर्मल हम,
फैलायें जग में यश-गाथा ।
जय जय जननी.....।

(3)

तेरी पुण्यमयी आभा से,
देश-प्रेम की सरस सुधा से,
भारत-माता की सेवा से,
स्वतन्त्रता-सरिता धारा से
जीवन हो भरपूर हमारा ।
जय जय जननी.....।

(4)

विस्तृत आंगन याद रहेगा,
रज का कण कण याद रहेगा,
यह 'जन-गण-मन' याद रहेगा,
हम को यह प्रण याद रहेगा,
राष्ट्र-ध्वजा के अभिवादन का ।
जय जय जननी.....।

(5)

इस सुन्दर क्रीड़ा-कानन से,
पुष्पित औ' सुरभित उपवन से,
नव वसन्त के जीवन-धन से,
पात-पात से सुमन सुमन से,
चिमट रहा है मन भौंरा सा ।
जय जय जननी.....।

(6)

तेरे श्वेत भवन की शोभा,
निर्मल विशद वसन की शोभा,
तेरे उजले मन की शोभा,
इस सुन्दर यौवन की शोभा,
याद रहेगी जीवन सारा ।
जय जय जननी.....।

(7)

उज्ज्वल जीवन लेकर जायें,
देश-प्रेम का पथ अपनायें,
राम-राज्य भारत में लायें,
जग में प्रेम-प्यार फैलायें,
दूर करें संकट दुनिया का ।
जय जय जननी.....।

(9)

देश का जागे निद्रित जीवन,
बढ़ें देश में सुख वैभव धन,
जुड़ें एकता से जन-गण-मन,

उजला हो भारत का आनन,
है यह जीवन-लक्ष्य हमारा ।
जय जय जननी.....।

(9)

"चाचा जी ने ज्योति जलाई,
'अमर-ज्योति' यह जलती आई,
हम ने थी औरों से पाई,
लो, सम्भालो, तुम्हें बधाई,
धीमी न हो इसकी ज्वाला ।"
जय जय जननी.....।

"अमर-ज्योति है जान हमारी,
लाज हमारी शान हमारी,
तन-मन-धन जीवन से प्यारी,
सदा रहेगी यह उजियारी,
प्रखर रहेगी इसकी ज्वाला ।
जय जय जननी.....।"

—×—

: 35 :

वन–महोत्सव–समारोह

एक बार विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने ठीक ही कहा था कि भारतीय संस्कृति को न तो नागरिक संस्कृति कह सकते हैं और न ही ग्राम्य संस्कृति ; वास्तव में यह 'वन्य संस्कृति' है। प्राचीन-काल से भारत की संस्कृति में वनों का महान गौरव है, वन को तपस्या और साधना का स्थान माना गया है, 'तपोवन' भारतीय संस्कृति का एक पवित्र शब्द है। संस्कृत के महाकाव्य के लिए एक सर्ग तपोवन के वर्णन के लिए नियत ही कर दिया गया है। संस्कृत के नाटकों में भी तपोवन का दृश्य प्रायः पाया ही जाता है। वैदिक काल के ऋषि-आश्रमों से लेकर आज के साधु-महात्माओं के डेरों तक का स्थान वन ही माना गया है।

प्राचीन-काल ही से भारत ने जंगल-वन की महिमा को समझ लिया था और राजा तथा प्रजा वृक्षों के आरोपण को एक कर्तव्य मानते थे। आजकल तो विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि प्रकृति के संतुलन को ठीक रखने के लिए, जलवायु और वर्षा के स्वाभाविक क्रम की रक्षा के लिए, यह आवश्यक है कि भूमि का एक निश्चित प्रतिशत भाग वन्य प्रदेश रहे, वृक्षों से ढका हुआ प्रदेश रहे। परन्तु गत एक दो शताब्दियों में हमारे देश के जंगल-वनों का बहुत विनाश हुआ है, वनों को काटने पर बहुत ज़ोर रहा है और नए वृक्षों के आरोपण को नज़र-अन्दाज़ कर दिया गया है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत की सरकार का ध्यान इस तरफ जाना स्वाभाविक था। देश के कृषि तथा वन्य विभागों की ओर से वनों की सुरक्षा और संवृद्धि का आह्वान किया गया। प्राचीन-काल के वन-महोत्सव को पुनः जीवित किया गया। वर्षा-काल में नए वृक्ष लगाने की परम्परा को आरम्भ किया गया।

आज के विश्व ने वनों के महत्त्व को समझना शुरू कर दिया है। भिन्न-भिन्न देशों में नए वृक्ष लगाने के लिए कई तरह के सामाजिक तथा राजकीय प्रोत्साहन दिए जाते है। हमारे सामाजिक कर्तव्यों में भी नए वृक्ष लगाने का महत्त्व होना चाहिए। शिक्षण-संस्थाओं में इस कर्तव्य की ओर ध्यान दिलाया जा सकता है। इस दृष्टि से संस्था में वन-महोत्सव-समारोह आरम्भ किया गया था। कन्याएं प्रतीक-रूप में वृक्ष लगाती थीं और उन्हें पानी देती थीं। उस अवसर पर एक सम्मिलित गान गाया जाता था जो यहां दिया जा रहा है —

वन–महोत्सव–समारोह का गान

वनों-जंगलों ने भारत को कितने ही वरदान दिए,
वाल्मीकि, भरद्वाज, कण्व को जीवन के सामान दिए,
सीता, अनसूया, शकुन्तला को भूषण-परिधान दिए,
आतप से रक्षा करने को ऊंचे तम्बू तान दिए,
वनों-जंगलों में भारत की संस्कृति ने है जन्म लिया,
वनों-जंगलों ने वेदों का उपनिषदों का ज्ञान दिया।

ऋषि-आश्रम थे सदा सुशोभित वृक्षों और लताओं से,
नव-वसन्त में कोमल पत्तों, फूलों औ' कलिकाओं से,
ग्रीष्म-काल में घने-घने पत्तों की शीतल छाओं से,
सदा मौसमी मधुर फलों से, फूलों की मालाओं से,
आदि काल से वनों-जंगलों ने सेवा का व्रत पाला,
सरदी, गरमी, वर्षा सह कर जो कुछ पाया दे डाला।

वर्षाओं के सदा सहायक रहे सघन वन भारत के,
नदियों को आप्लावित करते आए कानन भारत के,
वनों-जंगलों से उपकृत हैं रहे सदा जन भारत के,
तीर्थ-भूमि हैं रहे देश की सदा तपोवन भारत के,
पराधीनता की सदियों में रहे उपेक्षित ये वन भी,
अन्य धनों के साथ रहा लुटता भारत का यह धन भी।

वनों-जंगलों की महिमा को भारत जन-गण भूल गए,
वर्षा और वसंत-काल में वृक्षारोपण भूल गए,
वृक्ष काटना याद रहा, वृक्षों का रक्षण भूल गए,
तपो-वनों की बातें रह गईं और तपो-वन भूल गए,
पराधीनता की सदियों में लुट गया भारत का जीवन,
गांव-नगर तो लुटे लुटे, लुट गए भारत के जंगल-वन।

अब स्वतन्त्र भारत अपनी खोई प्रतिभा को पाएगा,
अपने वनों-जंगलों की उस महिमा को लौटाएगा,
वर्षा औ' वसंत ऋतुओं में हर कोई वृक्ष लगाएगा,
एक वृक्ष को जो काटेगा, दो परवान चढ़ाएगा,

कुछ ही वर्षों में भारत में वही ज़माना आएगा,
जब भारत सुख-सम्पत् से, धन-दौलत से भर जाएगा ।

—×—

: 36 :

राखी

(रक्षा-बन्धन (राखी) का पर्व संस्था में एक विशेष महत्त्व का पर्व रहा है। इस सम्बन्ध में पहले ज़िक्र आ चुका है।)

भारत के अतीत जीवन की एक निशानी है राखी,
विस्तृत भारत-जीवन की संक्षिप्त कहानी है राखी।

भारत की बहनों का निर्मल प्यार छिपा हैं राखी में,
भाइयों से स्वीकृत रक्षा-संभार छिपा है राखी में।

वीरों का है रक्त सन रहा इन राखी के धागों में,
गुंथे हुए हैं वीर-गान इन प्रेम-प्यार के रागों में।

प्यार की महिमा झलक रही है इन राखी के फूलों में,
झूल रही हैं सुन्दर स्मृतियां इन सावन के झूलों में।

कितने ही स्वर गूंज रहे हैं वीणा की इन तारों में,
जाग रहे हैं राग अतीत के नई-नई झंकारों में।

यह राखी है एक निशानी ऋषि-मुनियों के तर्पण की,
चौमासे में चलने वाले साम-वेद के गायन की।

भारत की संस्कृति के बहु-रंगों से रंजित है राखी,
कितनी ही तहज़ीबों के फूलों से शोभित है राखी।

शत-सहस्र चौमासों से ये फूल भीगते आए हैं,
युगों-युगों की स्मृतियों के सौरभ साथ अपने लाए हैं।

भारत-सन्तानों का भारत-रक्षा-प्रण राखी में है,
आज़ादी की देवी का पूजन-अर्चन राखी में है।

भारत के उज्ज्वल भविष्य का मंगल-धागा है राखी,
जन-गण-मन का एक चिन्ह यह उज्ज्वल धागा है राखी।

—×—

: 37 :

शहीदों की याद

30 जनवरी का दिन गांधी जी का बलिदान-दिवस है। इस दिन को गांधी जी तथा देश के अन्य ज्ञात-अज्ञात शहीदों को श्रद्धांजलि देने का दिन माना गया है। इस दिन उन शहीदों को मौन-रूप में श्रद्धांजलि देने के लिए कुछ मिंटों का सार्वजनिक मौन रखा जाता है। कन्या महाविद्यालय में इस अवसर पर लड़कियां राष्ट्र-ध्वजा के सानिध्य में खड़े होकर श्रद्धांजलि देती आ रही हैं। इस मौन श्रद्धांजलि से पहले कुछ मिंटों का संक्षिप्त प्रवचन भी होता था। इसी अवसर के लिए नीचे लिखी कविता अपनाई गई थी—

शहीदों की याद

रह रह कर आती है याद उन वीरों के बलिदानों की,
आजादी की दीप-शिखा पर दग्ध हुए परवानों की,
सिर पर कफन बांध कर घर से निकल पड़े दीवानों की,
फांसी के तख्तों से गाए देश-प्रेम के गानों की,
राखी लिए खड़ी बहनों की इंतज़ार याद आती है,
अश्रु-कणों की औ' आहों की बार-बार याद आती है।

याद आती है उन अनाथ बालों अनाथ बालाओं की,
मुरझाई कलियां जिन की नन्ही-नन्ही आशाओं की,
याद आती है वृद्ध-पिताओं की वृद्धा माताओं की,
विना डंगोरी जीवन-पथ पर लड़खड़ा रहे पाओं की,
नव-वधुओं के पुंछे हुए सिंदूर आज याद आते हैं,
हृदयों में रिसने वाले नासूर आज याद आते हैं।

याद आती है सत्याग्रह के नए युद्ध के बानी की,
मानवता को जीवित करने वाले जीवन-दानी की,
याद आती है उस दधीचि की अस्थियों की कुर्बानी की,
खून से लथ-पथ वक्ष-स्थल की, औ' हंसती पेशानी की,
याद आती है राज-घाट पर जलती अग्नि-शिखाओं की,
जन-जन की आंखों से बहने वाली जल-धाराओं की।

देशों का, क़ौमों का जीवन बलिदानों पर निर्भर है,
बलिदानों का स्रोत देश के जीवन-जल का निर्झर है,
राष्ट्र-भवन बनने में कुर्बानी बुनियादी पत्थर है,
क़ौमों के उद्धार का सिहरा बलिदानों के सिर पर है,
देशों का निर्माण किया है वीरों के बलिदानों ने,
क़ौमों का उत्थान किया है इन क़ौमी परवानों ने।

देश वही जीते हैं जो बलिदान निरन्तर करते हैं,
देश वही जीते हैं जो अपनी इज़्ज़त पर मरते हैं,
खाद लहू की पड़ती है, तब ये उद्यान संवरते हैं,
बलिदानों से घुल घुल कर देशों के भाग्य निखरते हैं,
नमस्कार है, नमस्कार है, ज्ञात अज्ञात शहीदों को,
भारत की नव-संतानों का है प्रणिपात शहीदों को।

भारत को हम सबल, सुखी औ' सुन्दर देश बनाएंगे,
भारत के स्वर्णिम अतीत की आभा को लौटाएंगे,
इस की उन्नति के कलसों को नभ के साथ मिलाएंगे,
नव-युग की वैज्ञानिक प्रतिभा को यां पर पनपाएंगे,
वीर शहीदों के बलिदानों को हम नहीं भुलाएंगे,
उच्च स्वरों में 'भारत की जय' भारत की जय' गाएंगे।

: 38 :

स्वतंत्रता-दिवस

आओ, भारत-जन-गण, आज़ादी का दिवस मनाएं हम,
आज़ादी की देवी के चरणों में फूल चढ़ाएं हम,
आज़ादी की देवी से आज़ादी के वर पाएं हम,
आज़ादी के इस विस्तृत आंगन में नाचें गाएं हम,

सभी देश-वासी आज़ादी के उत्सव में शामिल हों,
सब के आशा-पूर्ण हृदय हों, सब के जोश-भरे दिल हों।

शत-शत वर्षों की जंजीरों से भारत आज़ाद हुआ,
शत-शत वर्षों से उजड़ा भारत का घर आबाद हुआ,
दिग्दिगन्त में भारत-माता का जय जय जय नाद हुआ,
भारत के कोने कोने में एक नया आह्लाद हुआ,

सदियों से अवरुद्ध कंठ से आशा के स्वर निकले हैं,
नूतन और पुरातन के भावों को ले कर निकले हैं।

उठो उठो, देखो, भारत में एक नया युग आया है,
अपने साथ पुरातन की सुन्दर स्मृतियों को लाया है,
इस नव-युग ने पश्चिम की प्रतिभा को भी अपनाया है,
नए स्वरों में भारत ने फिर गान पुराना गाया है,

नए रूप में भारत की संस्कृति का है अवतार हुआ,
नए रूप में भारत का है पुरा-काल साकार हुआ।

उदित हुई है भारत के जीवन में एक नई आशा,
उदित हुई है भारत के जन-गण में एक नई आशा,
उदित हुई है इस नव-परिवर्तन में एक नई आशा,
परिस्पन्दित है भारत के कण-कण में एक नई आशा,

नव-भावों से ओत-प्रोत भारत का जीवन जागा है,
आशाओं से ओत-प्रोत भारत-जन-गण-मन जागा है।

इस आज़ादी की रखवाली तन-मन-धन से करना है,
वक्त पड़े पर प्राणों को मातृ-चरणों में धरना है,
आज़ादी में जीना है, आज़ादी के हित मरना है,
राष्ट्र-भवन की बुनियादों को बलिदानों से भरना है,

आज़ादी का दिवस हमें शुभ हो औ' मंगलकारी हो,
यह आज़ादी सब भारतियों को प्राणों से प्यारी हो।

—×—

: 39 :

गण–राज्य–दिवस

भारत का गण-राज्य-दिवस है सब के लिए उदय का दिन;
भारत के लम्बे जीवन में है यह एक विजय का दिन।

शत-शत वर्षों की निद्रा से भारत-जीवन जागा है;
पराधीनता की ज़ंजीरों को भारत ने त्यागा है।

स्मरण किया है भारत ने उज्ज्वल अतीत गाथाओं को,
अपनाया है नव साहस को, औ' नव नव आशाओं को।

प्राची दिशा हुई है स्वर्णिम जन-जागृति की किरणों से,
नव-धाराएं बह निकली हैं जन-जीवन के झरणों से।

भारत का गण-राज्य-दिवस है एक नए युग की आशा,
विश्व-प्रेम की भाषा है दुनिया के लिए नई भाषा।

आओ, आओ, भारत-जन-गण, आओ, जशन मनाएं हम,
भारत-माता की महिमा के मीठे गाने गाएं हम।

—×—

: 40 :

नए स्वरूप का विकास

जैसे कि पहले कहा जा चुका है, देश और समाज की नई परिस्थितियों के कारण छात्राओं की संख्या घटते जाने के बावजूद संस्था के संस्थापक, ला० देवराज अपने जीवन के अंत तक संस्था को इस के उसी आदर्शवादी रूप में चलाने के पक्ष में रहे। आप के त्याग और तपस्या के जीवन तथा विशाल सामाजिक परिचय के कारण, आपको आवश्यकता-अनुसार धन और साधन मिल जाते थे।

1935 में आप के निधन के पश्चात् संस्था के संचालकों तथा हितैषियों के सामने भविष्य के बारे में चिंतन चला। संस्था के रूप में परिवर्तन के प्रश्न पर विचार करने के लिए बुलाई गई आर्य-शिक्षा मंडल की बैठक में दोनों पहलू सामने आए। चले आ रहे आदर्शवादी रूप के पक्ष में युक्तियाँ तो थीं परन्तु ज़माने की बदलती हुई परिस्थितियों के कारण वे युक्तियां अधिकांश सदस्यों को कायल न कर सकीं। तो भी संस्था के पुराने चले आ रहे स्वतन्त्र पाठ्य-क्रम को यकदम छोड़ नहीं दिया गया। हां, उसके साथ-साथ, सरकारी परीक्षाओं के लिए छात्राओं को तैयार करने और प्राइवेट रूप में परीक्षाएं दिलाने का कार्य-क्रम भी आरम्भ कर लिया गया। चले आ रहे राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक वातावरण को भी बनाए रखने का पूरा प्रयत्न रहा।

परन्तु नई परिस्थितियां प्रबल थीं। पुराने स्नातिका-पाठ्य-क्रम की छात्राएं कम होती गईं और नए, सरकार द्वारा मान्य, पाठ्यक्रम की छात्राएं बढ़ती गईं। छात्राओं के लिए नियत पीले वस्त्रों का वेश भी नई पीढ़ी को खटकने लगा था।

गत शताब्दी के अंतिम दशक में, संस्था के आरम्भ-काल में, लड़कियों के लिए पाठशालाएं बहुत ही कम और कहीं कहीं थीं। परिस्थितियां बदलने के साथ एक बड़े रूप में, संस्था से पढ़कर निकली लड़कियों के स्त्री-शिक्षण-सम्बन्धी पुरुषार्थ के कारण, स्थान-स्थान पर, विशेषतः आर्य-समाजों के साथ, स्थानीय कन्या पाठशालाएं खुलने लगीं। अन्य सामाजिक संगठनों तथा सरकार द्वारा भी कन्याओं के लिए पाठशालाएं और स्कूल खुलते जा रहे थे। इस से बाहिर से, दूर के स्थानों के, छोटी श्रेणियों की

पढ़ाई के लिए, छात्रावास में रह कर पढ़ने वाली छात्राओं की संख्या तो बहुत ही कम होने लगी थी। मुख्य संस्था के, नगर के बाहिर अपने वर्तमान स्थान पर आ जाने के बाद भी, संस्था का आदि-काल का विद्यालय तो 'देवराज नगर विद्यालय' के नाम से चल ही रहा था। इस से बड़े विद्यालय में स्कूल की श्रेणियां आहिस्ता-आहिस्ता बन्द कर दी जाने लगीं। छात्रावास में रहने वाली जो थोड़ी छोटी श्रेणियों की छात्राएं थीं, वे अपनी पढ़ाई के लिए नगर विद्यालय में जाने लगीं। इस प्रकार समय के साथ कन्या महाविद्यालय में छोटी श्रेणियां बंद होती गईं और बड़ी, कालिज की श्रेणियां खुलने और बढ़ने लगीं।

अब छात्राओं को स्कूल के मैट्रीकूलेशन के तथा कालिज के इंटर और बी० ए० के इम्तहानों के लिए तैयार करके प्राइवेट रूप में परीक्षाएं दिलाई जाती थीं। 1941 में संस्था की प्रबन्ध-कर्तृ-सभा, आर्य शिक्षा-मंडल ने, 'दोआबा कालिज' की स्थापना कर दी तो विद्यालय की कालिज की श्रेणियों को उस कालिज का 'गर्ल्ज-सैक्शन' मान्य करवा लिया गया और छात्राएं बाकायदा रूप में विश्व-विद्यालय की परीक्षाएं देने लगीं। 1945 में कन्या महाविद्यालय एक कालिज के रूप में पंजाब यूनिवर्सिटी के साथ सम्बंधित हो गया और 1947 में इस की पहली कालिज श्रेणियां विश्व-विद्यालय की परीक्षाओं में बैठीं। तब से यह एक बाकायदा कालिज के रूप में आगे से आगे विकसित होने लगा।

आरम्भ में श्रेणियों में छात्राओं की संख्या, अंग्रेज़ी जैसे सब के लिए अनिवार्य विषयों को छोड़कर, थोड़ी ही होती थी। इस लिए काफी समय तक दोआबा कालिज के आध्यापक ही उन श्रेणियों को पढ़ाने के लिए आते रहे। परन्तु जिस जिस विषय में छात्राओं की संख्या काफी बढ़ती गई उस उस विषय का अपना स्वतन्त्र स्टाफ नियुक्त किया जाता रहा। पहले-पहले तो उन्हीं चंद विषयों का प्रबन्ध था जो कन्याओं के लिए उपयोगी माने जाते थे, परन्तु कन्याओं की संख्या बढ़ते जाने के साथ नए विषय आरम्भ किए जाते रहे।

जब विज्ञान की शिक्षा का आरम्भ किया गया तो संस्था की अपनी प्रयोग-शालाओं के अभाव में कुछ वर्षों तक विज्ञान की श्रेणियां दोआबा कालिज की श्रेणियाँ मान्य रहीं। उनका अध्ययन-अध्यापन, विशेष रूप में प्रैक्टीकल-प्रशिक्षण, वहीं चलता रहा। परन्तु कुछ ही वर्षों में प्रयोग-शालाएं बन-बन कर तैयार होने लगीं और 1952 से विज्ञान के विषयों का पूरा प्रशिक्षण भी यहीं आरम्भ हो गया। तो भी कुछ वर्षों तक, विज्ञान की श्रेणियों और छात्राओं के काफी बढ़ने तक, दोआबा कालिज के स्टाफ की मदद लेना जारी रहा।

संस्था के पुराने चले आ रहे यश के कारण, कन्याओं के लिए शिक्षा-दीक्षा के अच्छे प्रबन्ध के कारण, विशेषतः संस्था के प्रसिद्ध सुरक्षित तथा अनुशासित छात्रावास

के कारण, छात्राओं की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी । परिवर्तन से पहले संस्था के कई मकान, विशेषत: छात्रावास के कमरे, जो खाली होते जा रहे थे, दोबारा भरने और आवश्यकता से कम मालूम होने लगे। इस प्रगति के साथ भवन-निर्माण का कार्य लगातार जारी रहा। संस्था के पुराने मिस्तरी स०सरदारा सिंह, जो देश के विभाजन के के समय, पाकिस्तान से आकर, अपने जीवन के युवा-काल में, संस्था के भवन-निर्माण का काम करने लगे थे, लगभग तीस वर्ष तक, प्राय: इसी काम में लगे रहे। प्रयोग-शालाएं बनीं, श्रेणियों के दोनों विंग अपनी पूरी लम्बाई तक बढ़े, दोनों विंगों की ऊपर की मंजिलें बनीं, लायब्रेरी का भवन बना, छात्रावास के ऊपर की मंज़िल बनी, 'स्टाफ के लिए एक शानदार निवास-स्थान बना, तरण-ताल का निर्माण हुआ तथा और कई बड़ी छोटी इमारतें बनीं। आश्रम की छात्राओं के लिए नए ढंग के 'टाइलट' और स्नानागारों का निर्माण हुआ, विशाल डाइनिंग हाल बना, प्रार्थना-भवन की तामीर हुई। नए ढंग के छोटे नए कमरों के अतिरिक्त छात्रवास के पुराने बड़े कमरों का 'पार्टीशन' करके उन्हें छोटे कमरों में बदला गया। शहर से पढ़ने आने वाली छात्राओं के उठने बैठने के लिए, 'टकशाप' के साथ एक विशाल हाल का निर्माण किया गया।

यद्यपि संस्था के पास अपना एक विशाल प्राङ्गण था तो भी एक कालिज के रूप में 'हाकी' आदि खेलों के लिए 'प्ले ग्रऊंड्ज़' की ज़रूरत थी। साइंस के लिए नई बड़ी प्रयोग-शालाओं तथा ऐन० सी० सी० के लिए खुली जगह की ज़रूरत थी। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए 'कैम्पस' के दोनों तरफ जितनी भी ज़मीन मिल सकी खरीद कर ली गई और यह नई खरीदी गई ज़मीन आठ दस एकड़ के करीब होगी। छात्राओं के लिए विश्व-विद्यालय द्वारा नियत प्राय: सभी खेलों का प्रबन्ध कर दिया गया और 'प्ले ग्राऊंडज़' बना दी गई।

क्रमश: विकास होते होते संस्था में बी० ए० तक के आर्ट्स के प्राय: सभी विषयों के साथ, बी० एस० सी० तक की विज्ञान की श्रेणियां और हिन्दी, संगीत, अंग्रेज़ी, पोलिटिकल साइंस तथा गणित में एम० ए० की श्रेणियां भी खुल गई। छात्राओं की संख्या भी डेढ़ हजार तक पहुंच गई। संस्था का छात्रावास संख्या की दृष्टि से देश के सब से बड़े चंद 'गर्ल्ज़ होस्टल्ज़' में होगा।

—×—

: 41 :

आज के कर्णधार

संस्था की वर्तमान प्रबन्ध-कतृ-सभा के अध्यक्ष गण्य-मान्य उद्योग-पति सेठ सत्यपाल अग्रवाल हैं। आपका वंश संस्था के प्राय: आरम्भ काल से संस्थापक, लाला देवराज जी का सहायक और सहयोगी रहा है। आपके वंश का कारोबार और निवास भी दीर्घ-काल से संस्था के आस-पास टांडा रोड पर या उसके थोड़े अन्तर पर रहा है। आपका वंश आर्य-समाज अड्डा होशियारपुर के साथ दीर्घ-काल से सम्बन्धित है। आप भी अपने वंश से आर्य-समाज के विचार लेकर जीवन में प्रविष्ट हुए। दोआबा स्कूल से मैट्रिक पास करके आपने डी० ए० वी० कालिज जालन्धर से इंटर तथा बी० ए० पास किया। 1939 में अपनी बी० ए० की परीक्षा में आप 'मैथिमैटिक्स आनर्ज़' में पंजाब विश्वविद्यालय में सर्व-प्रथम रहे। आपने मैथिमैटिक्स में एम० ए० भी अच्छी पोज़ीशन लेकर पास किया। 1941 में दोआबा कालिज की स्थापना के समय आप के इस कालिज के स्टाफ पर आने की बात भी चली थी। परन्तु भगवान् की योजना आपको उद्योग के क्षेत्र में ले जाने की थी, जिस क्षेत्र में खूब सफल होकर आपने नाम पैदा किया।

बहुत वर्षों से आप स्वर्गीय राए बहादुर बदरी दास जी के साथ प्रबन्ध-कर्तृ-सभा के उपाध्यक्ष रहे और उन की मृत्यु के पश्चात् अध्यक्ष चुने गए।

आप की रुचि अध्ययन-काल से साहित्यिक थी। डी० ए० वी० कालिज में इंटर में पढ़ते समय आपने संस्कृत विषय लिया था और इस लेखक को वहां आपके अध्यापक होने का सौभाग्य भी मिला। आप एक आदर्श विद्यार्थी थे, योग्य, अनुशासन प्रिय और नम्र। ये गुण जीवन में आपके साथ रहे हैं। भाग्य के साथ-साथ अपनी योग्यता से आप उद्योग के क्षेत्र में सफल हुए, अनुशासन-प्रियता और नम्रता आपके काम-काज और व्यवहार से स्पष्ट झलकती है। लेखक का प्रत्यक्ष अनुभव है कि किसी बात के लिए किसी से क्षमा-याचना करने में भी आपको संकोच नहीं है। एक दफा आप ने अपने एक महमान मित्र से कहा था, "आज भी यदि आवश्यकता पड़े तो मैं निस्संकोच एक ढाबे पर खाना खा सकता हूं।" एक बड़े उद्योग-पति के लिए, जो

कई बार विदेशों में घूम आया हो और जिसके लाखों, शायद करोड़ों, के कारोबार चल रहे हों, यह बात एक सामान्य गुण नहीं है।

आप के अध्ययन-काल में शिक्षा का माध्यम, स्कूलों में, उर्दू भाषा थी। आप की इस भाषा के साहित्य में रुचि का अनुमान इस बात से लग सकता है कि आप ने अपने, जालन्धर के, निवास-स्थान का नाम फारसी के काव्यमय ढंग पर 'शहना' रखा।

शैक्षणिक क्षेत्र में अपनी रुचि के फल-स्वरूप आपने फरीदाबाद जालन्धर और दिल्ली में, 'ए० पे० जे०' नाम से बच्चों के पब्लिक स्कूल स्थापित किये हैं जो बड़ा नाम पा रहे हैं। 'ए० पे० जे०' नाम 'अमीचंद, प्यारेलाल, जालन्धर' का संक्षिप्त रूप है। इस प्रकार आपने अपने दादा, लाला अमीचंद, अपने पिता, लाला प्यारे लाल और अपने शहर, जालन्धर के नामों का सम्मान किया है। जालन्धर में आप द्वारा स्थापित 'राजेश्वरी कला-संगम' भी, आप की पत्नी के नाम पर, आप की ललित-कला-प्रियता का प्रतीक हैं।

कन्या महाविद्यालय तथा दोआबा-कालिज की प्रबंध-कर्तृ-सभा के अतिरिक्त आप स्थानीय 'गुलाब देवी स्मारक हस्पताल' की प्रबन्ध-कर्तृ-सभा के भी अध्यक्ष हैं। उद्योग के इतने व्यस्त जीवन में आप विद्यालय की सर्वांगीण उन्नति का भी सदा ध्यान रखते हैं।

विद्यालय की प्रबन्ध-कर्तृ-सभा के उपाध्यक्ष-पद पर आचार्या कु० लज्जावती और प्रसिद्ध पत्रकार तथा आर्य-समाजी नेता श्री वीरेन्द्र जी हैं। आचार्या जी के सम्बन्ध में पीछे लिखा जा चुका है। वीरेन्द्र जी पत्र-कारिता तथा आर्य-समाज, इन दोनों क्षेत्रों में, अपने विख्यात-नामा पिता, महाशय कृष्ण के उत्तराधिकारी हैं। देश-भक्ति, आर्य-समाज-भक्ति और पत्रकारिता आप को विरासत में मिली हैं। लाला लाजपतराए के उर्दू दैनिक पत्र 'बन्दे मातरम्' के साथ उर्दू पत्र 'प्रताप' और 'मिलाप' ही इस प्रदेश के राष्ट्रीय आन्दोलन-काल में प्रदेश के मुख्य राष्ट्रीय दैनिक पत्र थे। गांधी-युग आरम्भ होने से पहले इस प्रदेश में भारतीय संस्कृति तथा राष्ट्रीयता की भावनाओं की प्रतिनिधि संस्था मुख्य रूप में आर्य-समाज ही थी। आर्य समाज के गुरुकुल विभाग के अग्रणी नेताओं में महाशय कृष्ण भी थे। गांधी-युग आरम्भ होने पर भी, आर्य-समाज, विशेषतः गुरुकुल विभाग, ने राष्ट्रीय आन्दोलन में खूब योग-दान दिया। महाशय कृष्ण उस योग-दान के एक प्रतिनिधि पुरुष थे। वीरेन्द्र जी को अपने विद्यार्थी-काल से अपनी राष्ट्रीय भावनाएं प्रकट करने का अवसर मिला।

देश के विभाजन के पश्चात् इस प्रदेश में आर्य-समाज के मुख्य केन्द्र जालन्धर ही में स्थापित हुए। 'प्रताप' और 'मिलाप' पत्रों के मुख्य कार्यालय भी यहीं स्थापित हुए। कुछ वर्षों तक आपने अपना स्वतन्त्र पत्र 'जय हिन्द' भी निकाला, परन्तु अन्ततः

अपने खानदानी पत्र 'प्रताप' की ज़िम्मेवारी को आपने संभाला। स्वतन्त्र भारत में, समय की अनुकूलता के साथ, आपने हिन्दी दैनिक पत्र 'वीर-प्रताप' भी निकाला। आप के संचालन में ये पत्र चल रहे हैं।

अपने प्रसिद्ध पत्रकार पिता की तरह आप भी बेधड़क लेखक हैं। आप ने पत्र-कारिता में एक आदर्श-वाद को, सच्ची बात कहने के साहस को, कायम रखा है। खतरा मूल लेकर भी आपने बहुधा अपने दृष्टि-कोण को स्पष्ट रूप में पेश किया है। परन्तु अपने पिता की तरह आप भी एक कुशल और सावधान लेखक हैं जो अपनी बात स्पष्ट रूप में कहते हुए भी कानून के चौखटे से बाहिर नहीं जाते।

हमारे प्रदेश के, आज के, पत्र-कारिता-क्षेत्र में सस्ती और दिल-बहलावे की सामग्री प्रस्तुत करने की मनोवृत्ति से भी आप काफी बचते हैं। इस प्रदेश की पत्र-कारिता में अशोभनीय चित्रों की प्रगति को देखकर जब भी कुछ लोगों ने सम्पादक महोदयों का ध्यान इधर आकर्षित किया तो आपने सदा पूरा योग-दान दिया और यक-तरफा तौर पर भी सिनेमा आदि के चित्रों का प्रकाशन बंद करने की तैयारी बताई।

स्वतन्त्र देश के राजनैतिक क्षेत्र में आपने अपनी आदर्श-वादिता और खुददारी को बनाए रखा है और राजनैतिक पदों के प्रति उदासीनता दिखाई है। आपने अपनी सार्वजनिक कार्य-प्रतिभा को आर्य-समाज के क्षेत्र में प्रयुक्त किया है। इस समय आप आर्य-प्रतिनिधि-सभा के अध्यक्ष हैं।

आपको 'अखिल-भारतीय-पत्र-सम्पादक समिति' ने अपना अध्यक्ष चुनकर आप की पत्र-कारिता की योग्यता का सन्मान किया है। एक लम्बे समय से 'आर्य शिक्षा-मण्डल' की शिक्षा संस्थाओं को आप का बहुमूल्य मार्ग-प्रदर्शन प्राप्त है।

संस्था की प्रबन्ध-कर्तृ-सभा के मन्त्री श्री रामचन्द्र 'जावेद' अपने जीवन के प्रायः आरम्भ-काल से आर्य-समाज को समर्पित हैं। पश्चिमी पंजाब के, सीमा-स्थित ज़िला डेरागाज़ीखां के एक कस्बे में आरम्भिक शिक्षा प्राप्त करके आप लाहौर में, गुरुदत्त भवन में, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के मार्ग-दर्शन में चल रहे, 'दयानन्द उपदेशक विद्यालय' में दाखिल हो गए। उस विद्यालय के पाठ्य-क्रम के विषयों में हिन्दी, संस्कृत, और वेद के अतिरिक्त इसलाम धर्म के अरबी आदि विषय भी थे।

उन्नीस वर्ष की आयु में उपदेशक विद्यालय लाहौर का स्नातक होने पर आपने सरकारी पाठ्य-क्रम के फारसी, उर्दू और हिन्दी के आनर्ज़ इम्तहान पास कर लिये और शिक्षा को अपने जीवन का कार्य-क्षेत्र बनाया। कुछ देर तक सियालकोट के के. सी. आर्य-स्कूल में शिक्षा-कार्य करके आप मिंटमुगरी के डी० ए० वी० स्कूल में आ गए।

देश के विभाजन के समय आप पश्चिमी पंजाब के सीमान्त पर अपने कस्बे में गए

हुए थे। उस कस्बे में हज़ारों हिन्दुओं के भारत पहुंचने की विकट समस्या थी। आप की सामाजिक चेतना और सेवा-भावना के बल पर वहाँ के हिन्दू आप के मार्ग-दर्शन में भारत पहुंचे। आर्य-समाज के साथ अपने सम्पर्क के कारण आप जालन्धर कैंट के 'विक्टर हाई स्कूल' में नियुक्त हो गए। उस उखाड़-पछाड़ के दिनों में आपने अपने क्षेत्र के शरणार्थियों को बसाने के कार्य में बहुत योग-दान दिया और अनेक युवक-युवतियों को अध्यापक-प्रशिक्षण-कोर्स पास करा के रोज़गार दिलाया।

शिक्षण के क्षेत्र को चुनने के बाद आप ने स्वयं भी इस क्षेत्र के अनुरूप सरकारी परीक्षाएं पास करने का क्रम जारी रखा। मैट्रिक से आरम्भ करके आप बी० ए० बी०, टी० और एम० ए० तक पहुंचे और पी० एच० डी० की तैयारी में लगने वाले थे कि सन् 1952 में आपको आपके वर्तमान एन०डी० विक्टर हायर सैकण्डरी स्कूल जालन्धर का प्रिंसीपल बना दिया गया। तब से ही आपका विद्यालय से निकट सम्बन्ध है।

स्कूल के प्रिंसीपल के अपने उत्तरदायित्व को पूरी लगन से निभाते हुए और स्कूल के शिक्षण-स्तर को ऊंचा बनाए रखते हुए, आप आर्य समाज के क्षेत्र की अन्य कई सेवाओं को भी समय देते हैं। इस समय आप 'दोआबा कालिज' तथा 'कन्या महा-विद्यालय' की प्रबन्ध-कर्तृ-सभा के मन्त्री-पद के अतिरिक्त जालन्धर कैंट आर्य-समाज द्वारा संचालित एक गर्ल्ज हाई स्कूल तथा एक गर्ल्ज कालिज के भी मंत्री हैं। आप 'आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब तथा 'आर्य-विद्या-परिषद्' और 'आर्य-विद्या-सभा' के भी मंत्री हैं और इस नाते पंजाब के गुरुकुल विभाग की आर्य समाजी संस्थाओं के संचालकों में आपका मुख्य नाम हैं। धर्म-प्रचार की दृष्टि से आप अपने दो व्यक्तिगत पत्र, उर्दू 'वैदिक धर्म,' साप्ताहिक और हिन्दी 'वैदिक धर्म' पाक्षिक भी निकाल रहे हैं। आपने कई पुस्तकें भी लिखी हैं जिन में 'पंजाब का आर्य समाज' 'आर्य' समाज के महापुरुष' तथा 'आर्य-समाज-दर्शन' मुख्य हैं।

साठ तक पहुंच रही अपनी आयु में आपके इतने कार्यों में सफल रहने का एक कारण तो आपकी समाज-सेवा की लगन है। इसके अतिरिक्त आप की प्रकृति में नम्रता-पूर्वक कार्य करते रहने और कार्य के साथियों से निभाने और उनको एक-दूसरे के समीप लाने का महान् गुण है।

अपने स्वनिर्मित जीवन के आरम्भिक काल में आपको कभी उर्दू कविता लिखने का भी शौक रहा है। इसी नाते आपने अपना उपनाम 'जावेद' रखा था, जो अब जाति-वाचक सा बन गया है। इस उर्दू शब्द का अर्थ 'अमर' है। आप हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं के अच्छे लेखक समझे जाते हैं। शिक्षा के अतिरिक्त आर्य समाज की सेवा आपका कार्य-क्षेत्र है।

—×—

खण्ड–IV

वट-वृक्ष
के
बिखरे बीज

उस विकट पथ पर अकेला ही चला था तू, मगर
पथिक साथ आते गए औ' कारवां बनता गया ।

कन्या महाविद्यालय, जालन्धर नगर

: 1 :

वट-वृक्ष के बिखरे बीज

लाला देवराज जी ने गत शताब्दी के अन्तिम-दशक में स्त्री-शक्ति जागरण का नन्हा पौधा आरोपित किया और उसे अपने प्रेम-प्यार और परिश्रम से सींचा। देखते ही देखते उस पौधे में अंकुर फूटे, शाखाएं-उपशाखाएं उत्पन्न हुईं और शताब्दी के अन्त होते-होते नन्हे पौधे ने एक वृक्ष का रूप धारण कर लिया। और कुछ वर्ष गुज़रने पर वह छोटा वृक्ष एक महान् वट-वृक्ष बन गया. जिसकी घनी और शीतल छाया में बैठने का सौभाग्य भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों को तो क्या, भारत से बाहिर ब्रह्मा, अफ्रीका और मारीशस प्रदेशों में रहने वाले भारत-वासियों की कन्याओं को भी प्राप्त हुआ।

संस्था के संस्थापक के सामने केवल एक सामान्य विद्यालय चलाने का उद्देश्य नहीं था, बल्कि आप संस्था में आने वाली छात्राओं को स्त्री-शक्ति जागरण का अग्र-दूत बनाना चाहते थे। संस्था में आने वाली छात्राओं पर आप मातृ-स्नेह की वर्षा करके उनके हृदयों को जीतते थे और उन हृदयों में अपने हृदय की ज्वाला प्रज्वलित करते थे, जिस छात्रा में आपको सेवा-भावना की विशेष चिंगारी नज़र आ जाती थी, उस की उस भावना का विकास करते थे। आपके सम्पर्क में आने वाली प्राय: सभी छात्राएं आपके मिशन की वाहक बन जाती थीं।

संस्था की शिक्षा-दीक्षा समाप्त करके जाने वाली छात्राएं कुछ समय तक संस्था में अवैतनिक रूप में, दक्षिणा के रूप में, शिक्षण-कार्य करती थीं। यह कार्य एक तरह से भावी कार्य के लिए एक ट्रेनिंग होता था। संस्था से निकलने वाली सैंकड़ों कन्याओं ने अपने-अपने स्थानों पर पाठ-शालाएं चलाईं। बहुतों ने समाज-सेवा के दूसरे कार्य उठाए और कुछ ने राष्ट्रीय और क्रान्तिकारी आन्दोलनों में भी भाग लिया।

संस्था से निकली ऐसी छात्राएं इस सेवा-साधना के वट-वृक्ष के बीज थे जिन्होंने दूसरे स्थानों पर ऐसे ही छायादार वृक्ष पैदा किए। यहां ऐसी कुछ छात्राओं के सेवा-कार्यों का संक्षिप्त वर्णन करके, उन के संस्था-संम्बन्धी कुछ संस्मरण दिए जा रहे हैं।

: 2 :

आजीवन सेवा-साधिका

माता गौरां देवी

माता गौरां देवी आजकल, अपनी अस्सी से ऊपर आयु में भी हिमाचल प्रदेश, विशेषत: शिमला की, स्त्रियों और बच्चों की, सेवा-संस्थाओं में एक-प्रेरणा-दायिनी शक्ति के रूप में कार्य कर रही हैं। 1910 के आसपास के पांच सात वर्षों में आप ने कन्या महाविद्यालय में अध्ययन करते हुए, संस्था के संस्थापक लाला देवराज जी से समाज-सेवा की जो चिंगारी पाई थी, वह आपके जीवन में लगभग पौन शताब्दी होने तक, अभी प्रज्वलित है और नई पीढ़ी को प्रेरणा-प्रकाश दिखा रही है।

1912-13 के आस-पास संस्था से निकल कर और विवाहित जीवन में प्रवेश करके आप ने अपने ससुराल में पर्दे आदि की रूढ़ियों को तोड़ा। 1919 के आस-पास अपने डाक्टर पति के साथ सियालकोट शहर में निवास ग्रहण करने पर आप ने वहां के आर्य-समाजी क्षेत्र में स्त्री-शक्ति जागरण का काम आरम्भ किया। गांधी जी का आन्दोलन आरम्भ होने पर आप ने उस क्षेत्र में सेवा-कार्य आरम्भ किया। गांधी जी के ग्राम-सेवा-आन्दोलन से प्रभावित होकर आप ने सियालकोट के समीप चपराड़ नाम के गांव को अपनी सेवा का क्षेत्र बनाया। कस्तूरबा-स्मारक-निधि का सेवा-कार्य आरम्भ होने पर आप को उस संस्था की जिला-शाखा की प्रतिनिधि नियुक्त किया गया।

देश के विभाजन के पश्चात् आप के पति ने शिमला में डाक्टरी की प्रैक्टिस आरम्भ की तो आप की सेवा-साधना का केन्द्र शिमला और हिमाचल प्रदेश बन गए। शिमला में आपने गरीब भंगियों के बच्चों के लिए एक संस्कार-केन्द्र आरम्भ किया, जिसमें आप स्वयं उन बच्चों को नहलाती धुलाती तक रहीं। वह केन्द्र बढ़ते-बढ़ते आज के सर्वोदय-बाल-आश्रम के रूप में विकसित हो गया, जिसमें मुख्य रूप में लाहौल स्पीती आदि सीमा-प्रदेश के बच्चों की शिक्षा तथा रिहायश का प्रबन्ध है। इसी प्रकार शिमला से आठ-दस मील आगे, एक देहाती क्षेत्र में, दुर्गापुर नाम के एक सुन्दर स्थान पर, आपने 'कस्तूरबा-बालिका-आश्रम' की स्थापना की है। इस आश्रम में भी मुख्यत:

लाहौल स्पीती आदि सीमा-प्रदेशों की लड़कियों के लिए शिक्षण तथा निवास का सुन्दर प्रबन्ध है।

विनोबा जी का भूदान-ग्रामदान का आन्दोलन आरम्भ होने पर आप ने उस में पूरा योग दान दिया। विनोबा जी की हिमाचल-प्रदेश की पद-यात्रा में आप काफी समय तक यात्रा में रहीं।

लगभग 25 वर्षों से, गांधी-स्मारक-निधि की स्थापना के समय से, आप उस की पंजाब, हरियाणा और हिमाचल की शाखा के बोर्ड की सदस्या चली आई हैं। आप हिमाचल प्रदेश की कस्तूरबा-स्मारक-निधि-शाखा की अध्यक्ष भी हैं।

राजनीति से बिलकुल अलग रहते हुए आप शिमला और हिमाचल प्रदेश के सरकारी तथा गैर-सरकारी समाज-सुधार के कार्यों में सदा सम्मानित स्थान पर रही हैं और इन क्षेत्रों में सदा आप के प्रति श्रद्धा की भावना रही है।

संस्मरण

1905 में, अपनी सात वर्ष की आयु में, मैं अपने शहर रावलपिंडी से कन्या महाविद्यालय में पढ़ने के लिए आई। केवल दो वर्ष तक विद्यालय में रह कर मुझे अपनी माता के अस्वास्थ्य के कारण घर लौट जाना पड़ा। 1910 में मैं पुनः विद्यालय में आई और मैंने उस समय की आठवीं श्रेणी तक की पढ़ाई समाप्त की।

उस समय विद्यालय और छात्रावास दोनों शहर में थे। चाचा जी प्रायः प्रति-दिन छात्रावास में आते थे और छात्राओं के खेल-कूद के कार्य-क्रम में रुचि लेते थे। लड़कियों को तरह-तरह की खेलें खिलाई जाती थीं। रस्सा खींचने की खेल का बहुत महत्त्व था। मुझे खेलों में बहुत रुचि थी और मैं खेलों में आगे की लड़कियों में रहती थी। चाचा जी ने छोटे-छोटे नाटकों के रूप में कुछ खेलें निकाली थीं, जो खेल की खेल होती थीं और शिक्षा की शिक्षा। संस्कृत के एक श्लोक में उत्तम, मध्यम और निकृष्ट कोटि के मनुष्यों की बात कही गई है कि निकृष्ट मनुष्य तो असफलता के भय से किसी कार्य को आरम्भ ही नहीं करते, मध्यम कोटि के मनुष्य आरम्भ तो कर लेते है परन्तु विघ्न-बाधाओं के कारण बीच ही में छोड़ देते हैं और उत्तम कोटि के मनुष्य किसी काम को आरम्भ करके सफल करते हैं। इस विचार को चाचा जी ने एक खेल का रूप दिया था।

उस खेल में, फलों से लदे एक वृक्ष के पास से गुज़रता हुआ एक मनुष्य फलों का प्राप्ति की इच्छा तो करता है परन्तु कहता है,

"फल इतने ऊंचे हैं। वृक्ष पर चढ़ूंगा तो गिर जाऊंगा। फलों तक पहुंचना आसान नहीं है। यहीं बैठता हूं। कोई फल गिरेगा तो उठा लूंगा।"

इसी प्रकार एक दूसरा मनुष्य वृक्ष के फलों को देखकर वृक्ष पर चढ़ कर फलों को

प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, परन्तु रगड़ें आदि लग जाने से घबरा कर असफल लौट आता है ।

एक तीसरा मनुष्य हिम्मत के साथ वृक्ष पर चढ़ता है और फलों को प्राप्त करने में सफल होता है । वह दूसरे दोनों के लिए भी कुछ फल फैंक देता है ।

इस खेल का प्रदर्शन चाचा जी आर्य समाजों के उत्सवों पर भी करवाया करते थे । मैं वृक्षों पर चढ़ने में निपुण थी, इसलिए उस उत्तम पुरुष का पार्ट मुझे दिया जाता था । चाचा जी इस खेल के लिए मुझे कई स्थानों पर ले जाते थे । इस खेल के अतिरिक्त मुझे भजन गाने का शौक भी था । चाचा जी उन उत्सवों पर मुझे भजन गाने के लिए भी ले जाते थे । मुझे स्मरण है कि लड़कियों को बाहिर ले जाने के लिए चाचा जी छात्रावास की अधिष्ठाती सुभद्राबाई जी से अनुमति अवश्य लेते थे । यदि वे किसी कारण से अनुमति नहीं देती थीं तो चाचा जी लड़कियों को नहीं ले जाते थे ।

उस समय चाचा जी की माता तो बहुत वृद्ध थीं । परन्तु चाचा जी की धर्म-पत्नी, जिन्हें हम चाची जी कहती थीं, अक्सर छात्रावास में आती थीं और काम-काज करने के साथ साथ लड़कियों से एक माता के समान कुशल-क्षेम पूछती थीं । पुराने ढंग की लज्जाशील भारतीय महिला की तरह, सारे शरीर, सिर को भी ढके, उनकी सुन्दर आकृति अब तक मेरी आंखों के सामने है ।

धर्म-शिक्षा के अध्यापक भक्त रैमल दास जी से हम लड़कियां बहुत डरती थीं परन्तु उनके बहुत अच्छा पढ़ाने के कारण उनका आदर भी करती थीं । एक बार लड़कियों ने मुझ से कहा,

"तू अपने को बहुत साहसी समझती है । बात तब है जब तू भक्त जी से उनकी पत्नी का नाम पूछ आए ।"

मैं गई और पूछ आई । उन्होंने बिना हिचकिचाहट के अपनी पत्नी का नाम मुझे बता दिया और मैं विजयी होकर छलांगें मारती हुई आई ।

भक्त जी सख्त ज़रूर थे परन्तु बहुत चरित्रवान, परिश्रमी और आदर्श-वादी थे ।

मेरे विवाह के पश्चात् एक बार चाचा जी हमारे शहर स्यालकोट आए । उनका भतीजा वहां एक ऊंचे पद पर आसीन था । चाचा जी ने विद्यालय में पढ़ी, शहर की सभी लड़कियों को सहभोज दिया और विदा करते समय सब को शगुन के कुछ रुपये भी दिए ।

1931 की कराची कांग्रस पर जाते हुए चाचा जी मुझे लाहौर स्टेशन पर मिल गए । मैं भी कांग्रस-अधिवेशन पर जा रही थी । मेरे 'नमस्ते' कहते ही उन्होंने मुझे नाम लेकर अपने पास बुलाया और कहा,

"तुम गाड़ी में मेरे पास बैठना। मां बेटी रास्ते में बातें करते जाएंगे।" सचमुच उन्होंने अपने को छात्राओं की मां ही बना लिया था।

चाचा जी ने हमारे अन्दर समाज-क्रांति की जो भावना पैदा कर दी थी, वह जीवन भर साथ रही। मेरे विद्यालय में दाखिल होते ही मेरे उस समय के रिवाज के अनुसार पहने हुए नाक-कान के सब भूषण उतार दिए गए थे। फिर कभी ऐसे भूषण पहनने की मुझे रुचि ही नहीं हुई। ससुराल जाकर मैंने देवरानियों के भी घूंघट उठवाए।

आर्य-समाज के क्षेत्र में और बाद में कांग्रस तथा गांधी-सेवा-क्षेत्र में मैंने जो तुच्छ सेवा-कार्य किया उसके लिए ज्योति चाचा जी से और अपनी मातृ-संस्था कन्या महाविद्यालय ही से पाई थी।

: 3 :

श्रीमती दुर्गेश्वरी बुवेजा

अस्सी वर्ष के आस-पास की अपनी आयु में श्रीमती दुर्गेश्वरी बुवेजा दिल्ली में अपने सुपुत्र के पास रहती हुई अब तक समाज-सेवा के कार्यों के साथ सम्पर्क बनाए हुए हैं। आप कहती हैं—

"आयु की दुर्बलता के कारण अब मैं दौड़-भाग नहीं कर सकती। मेरे परिचय की समाज-सेवी संस्थाएं कभी गाड़ी भेज कर ले जाती हैं तो चली जाती हूं।"

आपका पितृ-गृह बहावलपुर था। आपके पिता भारत-सरकार में इंजिनीयर थे और शिमला में रहे। अपने शहर के अपने रईस खानदान के कारण और उनकी अपनी योग्यता के कारण, उनके सरकारी सेवा से कार्य-मुक्त होने पर बहावलपुर के नव्वाब ने उन को रियासत की वज़ारत पेश की, परन्तु उन्होंने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—

"अब तो मैं उस बड़े नव्वाब ही की नौकरी करना चाहता हूं।"

दुर्गेश्वरी जी की बड़ी बहन केवल दस वर्ष की आयु में विधवा हो गई तो पिता को बहुत आघात लगा। वे दुनिया से विरक्त से हो गए। उनके दिल में कन्याओं को सुशिक्षित करने की बात भी घर कर गई। 1910 में उन्होंने आपको विद्यालय में पढ़ने के लिए भेज दिया। 1919 तक संस्था में रह कर आपने उस समय का संस्था का पाठ्य-क्रम पूरा किया और संस्था की उस समय की परम्परा के अनुसार कुछ देर तक, दक्षिणा-रूप, अध्यापन-कार्य भी किया।

आपकी धार्मिक और सेवा-भावी वृत्ति के कारण लाला देवराज जी आपको अपनी विशेष बेटियों में गिनते थे। धर्म-शिक्षा और संस्कृत आदि भारतीय संस्कृति के विषयों में आपकी विशेष रुचि थी। आपको गान-विद्या का भी शौक था। चाचा जी ऐसी भावनाओं वाली लड़कियों को सेवा के जीवन की प्रेरणा देते रहते थे। वे चाहते थे कि दुर्गेश्वरी जैसी कुछ छात्राएं ऐसी निकलें जो अविवाहित रहकर स्त्री-शक्ति-जागरण का कार्य करें। आप की ऐसी रुचि थी भी। परन्तु हमारे भारतीय समाज में ऐसी रुचि

के रहते हुए भी एक लड़की के लिए ऐसा साहस करना आसान नहीं है। माता-पिता और सगे-सम्बन्धियों की अनुकूलता नहीं होती। हमारे समाज में स्त्री के लिए कौमार्य-जीवन अपनाना आज भी आसान नहीं है, आज से पच्चास साठ साल पहले की बात ही क्या थी ?

आपके पति पंजाब के कृषि विभाग में एक ऊंचे अधिकारी थे। विभाजन से पहले आप पति के साथ लायलपुर में रहीं। विद्यालय की शिक्षा-दीक्षा से प्राप्त समाज-सेवा की भावना से प्रेरित होकर आपने लायलपुर आर्य-समाज के तत्त्वावधान में स्त्री-शिक्षा और स्त्री-शक्ति-जागरण का कार्य किया। विभाजन के बाद आप के पति दिल्ली आ गए तो लगभग एक वर्ष तक आपने विस्थापित लोगों को बसाने का सेवा-कार्य किया।

1953 से लेकर लगभग चार वर्ष तक आपको हिन्दू विश्व-विद्यालय बनारस में लड़कियों के छात्रावास की सुपरिटैंडैंट का उत्तर-दायित्व-पूर्ण कार्य करने का अवसर मिला। छात्रावास के प्रबन्ध में बहुत न्यूनताएं हैं। आपकी योग्यता और सेवा-भावना के कारण विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने आग्रह-पूर्वक आपको इस ज़िम्मेवारी को संभालने के लिए तैयार किया। इस महान् उत्तर-दायित्व को ठीक से निभा सकने और छात्रावास को एक अच्छा रूप दे सकने का बखान करते हुए आप गर्व का अनुभव करती हैं। जिस प्रकार अपने विद्यालय के अध्ययन-काल में आपने तेजस्वी महाराष्ट्रीय महिला सुभद्राबाई को छात्रावास की कन्याओं की माता बनकर काम करते देखा था, उसी तरह आपने हिंदू विश्वविद्यालय के उस कन्या-छात्रावास में काम किया। चार वर्ष के अपने सेवा-काल में आपने छात्रावास के प्रबन्ध और वातावरण को अनुकरणीय रूप दे दिया।

दिल्ली के अपने जीवन के इस सायं-काल में आप रैड-क्रास आदि समाज-सेवी संस्थाओं के माध्यम से स्त्रियों में काम करती आई हैं। दिल्ली के आस-पास के गांवों में आप के नेतृत्व में स्त्री-शक्ति-जागरण के शिविर भी लगे हैं। ऐसे एक शिविर की अपनी सफलता की कहानी सुनाते हुए आप भाव-विभोर हो उठती हैं। आपके दिल में स्त्री-जाति के लिए गहरा दर्द है। इस दर्द के बीज तो कन्या महाविद्यालय की आप की शिक्षा-दीक्षा ही के काल से अंतःकरण में सुरक्षित चले आ रहे हैं।

आप महसूस कर रही हैं कि आज के समाज-सेवा के सरकारी कामों में प्राण कम होते हैं। आप की दृष्टि है कि जब तक गांवों की स्त्रियों के बीच में रहकर और उनसे एकाकार होकर काम न किया जाये तब तक काम का विशेष फल नहीं हो सकता। अपनी दृष्टि को आप समाज-सेवी संस्थाओं में व्यक्त भी करती हैं और संस्थाओं के अधिकारियों को अपने लिखित सुझाव भी भेजती हैं। अधिकारियों की ओर से प्राप्त कुछ उत्तरों को भी आप सुरक्षित रखे हुए हैं।

संस्मरण

धार्मिक वृत्ति वाले अपने घर से भी मैं अच्छे संस्कार लेकर विद्यालय में आई थी। अपने मुख्य विषयों में मैंने संस्कृत को चुना था। मैं धर्म-शिक्षा में पारितोषक पाती रही। मुझे भजन गाने का शौक भी था। मैं स्टेज पर बोल भी लेती थी। इन बातों के कारण चाचा जी मुझ से बहुत प्यार करते थे और मुझे सेवा का जीवन-कार्य अपनाने के लिए प्रेरणा देते रहते थे। गर्मियों में अपनी पहाड़ की यात्राओं में भी कभी-कभी वे अन्य कुछ छात्राओं के साथ मुझे भी ले जाते थे। बम्बई की तरफ की एक लम्बी यात्रा में भी वे मुझे साथ ले गए। उस यात्रा में चाची जी भी साथ थीं। मुझे याद है कि हम प्रसिद्ध गायनाचार्य पं० विष्णु दिगम्बर के संगीत-केन्द्र में गए थे। वहां मैंने एक गाना भी गाया था, जिसे सुनकर पंडित जी ने हमारे विद्यालय के संगीत-शिक्षण के स्तर की प्रशंसा की थी। चाचा जी हमें बम्बई के समीपस्थ एक द्वीप में स्थित 'ऐलीफैंटा' की प्रसिद्ध कन्दराएं दिखाने भी गए थे।

चाचा जी की इच्छा थी कि मैं अपने जीवन को स्त्री-शक्ति-जागरण के कार्य में लगाऊं। अपने एक पत्र में उन्होंने मुझे लिखा—

"एक तरफ मुझे दुनिया भर का राज्य मिलता हो और दूसरी तरफ तुम्हारे जैसी चरित्रवान् और सेवा-भावी छात्रा मिलती हो तो मैं उस राज्य को ठुकरा कर उस छात्रा को अपनाऊँगा।"

ऐसी थी हमारे पितृ-तुल्य चाचा जी की हम छात्राओं के प्रति आस्था! चाचा जी के उस पत्र को मैं अपनी स्वाध्याय-पुस्तक गीता के साथ सुरक्षित रखती आई हूं। यह पत्र मेरे जीवन में प्रेरणा का स्रोत रहा है।

मेरे हृदय में भी अविवाहित रह कर स्त्री-शक्ति-जागरण का कार्य करने की भावना थी। परन्तु उस जमाने में एक लड़की के लिए ऐसा कदम उठाना बहुत कठिन था। माता-पिता और सगे सम्बन्धियों की अनुकूलता प्राप्त होना आसान न था। मैंने अपनी पूज्य आचार्या पंडिता सावित्री देवी से मार्ग-दर्शन मांगा। उन्होंने मेरी भावना की प्रशंसा की, परन्तु साथ ही उस मार्ग की कठिनाइयों का भी ज़िक्र किया। मैं वह निर्णय न कर सकी और मैंने अपने गृहस्थ के जीवन के साथ-साथ कुछ सेवा-कार्य करते रहने ही में संतोष मान लिया।

उस समय संस्था में गुरु-पूजा का प्रभावशाली समारोह होता था। हर वर्ष गुरु-पूर्णिमा के दिन अपने गुरुजनों को, अध्यापक-अध्यापिकाओं को, आदर के आसनों पर बिठा कर हम उन का पूजन करती थीं, फल-फूल आदि से उन को सत्कृत करती थीं।

हमारे गुरु-जन थे भी हमारे इस आदर-सत्कार के पात्र। मैं अपने गुरु भक्त

रैमलदास को कभी नहीं भूल सकती। वे हमें धर्म-शिक्षा पढ़ाते थे। उनका अध्यापन बहुत तेजस्वी होता था। उनके सादा और तपस्यामय जीवन का हम पर बहुत प्रभाव पड़ता था। सामान्य अध्यापन के अतिरिक्त हमारे चरित्र-निर्माण में उनका बहुत योग-दान था। एक दफ़ा मैं दो-चार दिन श्रेणी में न गई तो जाने के पहले दिन उनके अनुपस्थिति का कारण पूछने पर मैंने बताया कि मुझे बुखार हो गया था। उन्होंने तत्क्षण कहा, "ब्रह्मचर्य और बुखार एक साथ कैसे रह सकते हैं?" इसी तरह सर्दियों में एक दिन मैं जुराबें पहन कर श्रेणी में चली गई तो उन्होंने जुराबें पहनने का कारण पूछा। मैंने कहा, "मैनेजर साहिब छात्रावास में आए थे। उन्होंने कहा था कि कड़ी सर्दी के दिनों में जुराबें पहन लिया करो।" मेरा उत्तर सुनकर उन्होंने तड़ाक से कहा,

"धर्म-शिक्षा मैं पढ़ाता हूं या मैनेजर साहिब?"

गुरु-जनों की ऐसी बातों से हम ने जीवन के लिए उपयोगी सबक सीखे।

विवाह के बाद के जीवन में मैं एक बार बच्चों को साथ लेकर विद्यालय में गई तो चाचा जी बच्चों के लिए गुल्ली डंडा बनवाकर लाए, कुछ और खिलौने भी लाए और घर का गुड़ तैयार करवा के लाए। उनके जीवन में मैं बहुत बार संस्था में आती रही। उनके निधन पर भी आई। राए बहादुर जी की बीमारी में भी उनको देखने आई।

अपने समाज-सेवा के कार्य के दौरान जब मैं सामान्य योग्यता के प्रसिद्ध व्यक्तियों को आदर-सत्कार मिलते देखती हूं तो सोचती हूँ—

"लोग चाचा जी जैसे देश-निर्माण-भवन के बुनियादी पत्थरों को भूल गए है, जिन्होंने आज के इन प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषों के लिए निर्माण के कार्य किया है। हम पृथ्वी पर उगे वृक्षों, फूलों और फलों को देखते हैं, परन्तु इन सब को पैदा करने वाली पृथ्वी-माता को भूल जाते हैं। चाचा जी का स्थान पृथ्वी माता का है जो किसी प्रकार के आदर-सम्मान की अपेक्षा न करके जीवन निर्माण का यह काम कर रही है।"

—×—

: 4 :

श्रीमती ठाकुर देवी

श्रीमती ठाकुर देवी पश्चिमी पंजाब के ज़िला डेरा गाज़ी खां के कस्बा जामपुर के एक सेवा-भावी, चरित्रवान् आर्य-समाजी पिता की संतान हैं। आप की चन्द मास की आयु ही में माता का देहान्त हो गया। पिता ने तथा शेष परिवार ने आपको पूरे स्नेह और लाड-प्यार से पाला। पिता स्थानीय आर्य समाज की पाँच श्रेणियों की पाठ शाला के मन्त्री थे। उस पाठशाला में आपकी आरम्भिक शिक्षा के बाद वे आप को कन्या महाविद्यालय में दाखिल कर गए। 1918-19 के वर्षों में आपने विद्यालय की शिक्षा-दीक्षा पूरी कर ली।

आपके साहसी स्वभाव की एक स्मरणीय घटना है। उस ज़माने में लड़के-लड़कियों की सगाई बहुत छोटी आयु में हो जाती थी और उसमें लड़के लड़कियों की राए नहीं लेते थे। परन्तु आप के आर्य समाजी पिता एक प्रबुद्ध व्यक्ति थे। आप भी विद्यालय की शिक्षा-दीक्षा से प्रबुद्ध थी। एक बहुत अच्छे घर के बहुत अच्छे लड़के के साथ आपकी सगाई की बात हो गई थी। विवाह के सम्बन्ध में बात चलने पर लड़के वालों ने लेन-देन और सोने आदि की बात की। आप के पिता ने इस सम्बन्ध में आपसे पूछा तो आप ने स्पष्ट कह दिया कि "उन लोगों से कह दीजिए कि वे कोई और रिश्ता देख लें।" और सचमुच उनको जवाब दे दिया गया। आपके लिए एक दूसरा धार्मिक वृत्ति का, परन्तु सामान्य घर का सुशिक्षित लड़का, जो संस्कृत का प्रोफैसर था, तै किया गया। बात हो चुकी थी कि किसी सम्बन्धी ने एक बहुत सम्पन्न घर का अन्य लड़का सुझाया। आप से पूछा गया तो आप ने कह दिया, "जो बात हो गई वह हो गई। मुझे धन-दौलत से विवाह नहीं करना है।"

आप के पति इन्द्र-प्रस्थ गर्ल्ज़ कालिज में संस्कृत के प्रोफैसर थे। जैसे कि कहा गया है वे धर्म-भावना वाले व्यक्ति थे। वे लेखक भी थे। दिल्ली के आर्य-समाजी क्षेत्र में उनका बहुत आदर सन्मान था। एक प्रकृति के, एक ही गुण-कर्म-स्वभाव के, पति-पत्नी ने एक आदर्श गृहस्थ जीवन की स्थापना की। पति आर्य समाजों के सत्संगों और उत्सवों में व्याख्यान देते थे और भजन-गान तथा सन्ध्या-प्रार्थना का कार्य-क्रम पत्नी

निभाती थीं। घर में सन्ध्या-प्रार्थना और हवन-यज्ञ का क्रम चलता था। सन्तान ने भी ये सब धार्मिक संस्कार ग्रहण किये।

विद्यालय में रहते हुए आप की संगीत में विशेष रुचि थी। पंजाब के मार्शल ला के बाद, जब कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में हुआ तो उस में राष्ट्र-गान गाने का कार्य-क्रम विद्यालय की छात्राओं ने निभाना था। आप भी उस गान-मंडली में थीं, जो उस अवसर के कार्यक्रम की तैयारी कर रही थी। अधिवेशन के कुछ दिन पहले आपको अपने विवाह के कारण घर चला जाना पड़ा। परन्तु विवाह के तत्क्षण बाद आप अधिवेशन के अवसर पर अमृतसर पहुँच गईं और अपनी गान-मण्डली में शामिल हुईं।

दिल्ली में तो आपका आर्य-समाज-सम्बन्धी कार्य-क्रम चलता ही है, जब कभी आपको बाहिर कानपुर, बम्बई आदि स्थानों में रहने का अवसर मिला, वहां भी आपने अपने इस कार्य को जारी रखा। कहीं आप ने आर्य-समाज की स्थापना की और कहीं पारिवारिक सत्संग की।

अस्सी वर्ष के करीब अपनी इस आयु में भी आप आर्य-समाज के अपने कार्य को निभा रही है। आप अपनी धार्मिक व चरित्रवान् सन्तान से सन्तुष्ट हैं। पति देव जा चुके हैं। उनके प्रति आपकी श्रद्धा व प्रेम-भक्ति आपके गार्हस्थ्य-जीवन की प्रसन्नता और सफलता का प्रमाण है।

अपने जीवन निर्माण के लिए आप कन्या महा विद्यालय और उसके महान् संचालकों तथा चरित्रवान् तेजस्वी अध्यापक-अध्यापिकाओं को श्रेय देती हैं। चाचा जी के लिए आपके हृदय में अगाध श्रद्धा और भक्ति है।

संस्मरण

9-10 वर्ष की आयु में मैं विद्यालय में आई। मेरे पिता जी मुझे छोड़ने के लिए आए। कुछ दिन रह कर जब वे जाने के लिए चाचा देवराज जी से विदा लेने लगे तो अपनी नन्ही और प्यारी बेटी के मोह-वश रोने लगे। उनको दिलासा देते हुए चाचा जी उन्हें हमारे छात्रावास में ले आए। मैं प्रसन्न-चित्त थी और खेल रही थी। चाचा जी ने पिता जी से कहा, 'देखिए, बेटी तो कितनी खुश है और खेल रही है और आप रो रहे हैं।' इस से पिता जी को तसल्ली हुई और वे विदा हुए।

उस समय इस प्रदेश में लड़कियों के लिए छात्रावास के साथ यही विद्यालय था। इसलिए यहाँ इस प्रदेश के अतिरिक्त ब्रह्मा, अफ्रीका और मारीशस जैसे दूरस्थ देशों में रह रहे भारतीयों तक की कन्याएं भी पढ़ती थीं। हम सब लड़कियाँ सगी बहनों की तरह प्रेम-प्यार से रहती थीं। प्रात: जागने, दांत साफ करने, नहाने-धोने और सन्ध्या-प्रार्थना का दिनभर का कार्य-क्रम नियमित रूप से चलता था। छात्रावास की संचालिका सुभद्राबाई जी एक स्नेह-मयी माता के समान हमारा ख्याल रखती थीं।

हमारे स्वास्थ्य का विशेष ख्याल रखा जाता था। भोजन बहुत पौष्टिक और सात्त्विक होता था। हर मास हमारा वज़न किया जाता था और वजन तथा स्वास्थ्य की जानकारी घर भेजी जाती थी। लड़कियों के चेहरों पर स्वास्थ्य की आभा झलकती थी जिसे देखकर संस्था में पधारने वाले अतिथि बहुत प्रभावित होते थे।

पूज्य चाचा जी और आचार्या सावित्री देवी और उनके बाद आचार्या लज्जावती हमारे शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास का बहुत ध्यान रखते थे। चाचा जी हमें भारतीय इतिहास के उज्ज्वल प्रसंगों की कहानियाँ सुनाया करते थे, जिन में प्राचीन काल की तेजस्वी देवियों की प्रतिभा तथा वीरता का वर्णन होता था। चाचा जी की उस समय की हमें सुनाई और याद करवाई, देश-प्रेम की, कविताएं अब तक हृदय पटल पर अंकित हैं और कानों में गूंजती हैं।

मुझे गाने का शौक था और चाचा जी बड़े प्यार से मेरे गाने सुना करते थे। छात्रावास में प्रवेश करके वे दूर ही से 'ठाकुर, ठाकुर' पुकारते आते और उनकी आवाज़ सुनकर जब मैं उनके पास जाती तो कहते, "पुत, तू मैंनू 'मत उदास हो भारत जननी' वाला भजन तां सुना दे।" जब मैं वह भजन सुना चुकती तो एक आध दूसरा भजन सुनाने के लिए कह देते। एक बार मेरे भजनों से खुश होकर उन्होंने अपनी माता जी की एक फोटो इनाम के तौर पर मुझे दी। इस प्रकार वे हमारे साथ खेलते रहते थे।

पूज्य चाचा बदरीदास जी भी आते रहते थे। वे बहुत विचार-शील और विद्वान् व्यक्ति थे। उनकी शांत प्रकृति और प्रबन्ध-कुशलता का सब पर गहरा प्रभाव पड़ता था।

हमारा विद्यालय एक घर जैसा था। वहां कोई चाचा था, कोई चाची थी, कोई बाई था, कोई बुआ थी और कोई बहन थी। उन सबसे हमें सगे-सम्बन्धियों का प्रेम-प्यार मिलता था और हमें घर की याद तक नहीं आती थी।

हमारे विद्यालय के अध्यापक-अध्यापिकाएं भी सब इसी रंग में रंगे थे। भक्त रैमलदास जी हमें गीता, उपनिषद्, वेद और सत्यार्थ-प्रकाश पढ़ाते थे। वे अपनी शिष्याओं की खूब परख रखते थे। जब मेरी सगाई हो गई और विवाह से पहले एक बार मेरे पति ने भक्त जी से मेरे सम्बन्ध में पूछा तो भक्त जी ने कहा, 'वह धर्म-भीरु है।' इस प्रकार उन्होंने मेरे चरित्र को एक ही विशेषण में चित्रित कर दिया।

विद्यालय के संस्मरण हमारे जीवन की एक निधि हैं। अपनी इस मातृ-संस्था के वातावरण से प्राप्त प्रेरणाओं ही से हमारे जीवनों में कुछ उन्नत भावनाएं पैदा हुईं जिन से हमारे जीवन सुखी और सार्थक हुए।

—X—

: 5 :

विद्यालय-माता की क्रांतिकारी बेटी

सुशीला दीदी

कन्या महाबिद्यालय की छात्राओं ने, संस्था में अपना शिक्षण समाप्त करके और अपने आप को राष्ट्रीय तथा समाज-क्रांति की भावनाओं से अलंकृत करके, स्त्री-शक्ति-जागरण के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में, शिक्षा के क्षेत्र में, समाज-सेवा के क्षेत्र में, तो काम किया ही, और कुछ छात्राओं ने सत्याग्रह-संग्राम में भी भाग लिया, परन्तु देश के गुप्त क्रांतिकारी आन्दोलन में, जिसमें चन्द्र शेखर आज़ाद तथा भक्त सिंह जैसे वीर युवकों ने, अपने सिर हथेलियों पर रखकर, अंग्रेज़ सरकार के विरुद्ध बम्ब और पिस्तौल से लड़ाई लड़ी, भाग लेने वाली विद्यालय-माता की बेटी सुशीला दीदी का अपना विशेष स्थान है।

सुशीला दीदी के नाम में 'दीदी' भाग क्रांतिकारी क्षेत्र की देन है। क्रांतिकारी-आन्दोलन में शामिल युवक आप को प्यार और आदर से 'दीदी' पुकारते थे और यह शब्द आप के नाम का हिस्सा ही बन गया।

आप का परिवार पंजाब के ज़िला गुजरात का रहने वाला था। पिता फौजी डाक्टर थे और 1914-18 के युद्ध में देश से बाहिर नियुक्त रहे। पांच भाई बहनों में आप सब से बड़ी थीं। 1915 में, आप की केवल दस वर्ष की आयु में, आपके पिता की अनुपस्थिति में, आप की माता का देहान्त हो गया और पिता के छुट्टी लेकर आने के समय तक आप अपने भाई बहनों सहित अपने ननिहाल में रह कर, अपने छोटे भाई बहनों की देख-भाल करती रहीं। पिता ने छुट्टी पर आकर अपनी बेटियों को कन्या-महाविद्यालय में और बेटों को डी० ए० वी० स्कूल में प्रविष्ट कर देने का प्रबन्ध कर दिया। बचपन के उस कोमल हृदय में, जो माता के वियोग से संतप्त था, संस्था के वातावरण ने आध्यात्मिक और साहित्यिक भावनाओं को जागृत कर दिया। आप के अन्दर एक लेखिका की प्रतिभा विकसित होने लगी। आप कविताएं और छोटे छोटे एकांकी लिखने लगीं। गांधी जी के आन्दोलन के आरम्भ के साथ आप की साहित्यिक प्रतिभा को एक नई राष्ट्रीय प्रेरणा मिलने लगी।

आप के जीवन में दूसरे के दु:ख से द्रवित हो जाने और उसके दु:ख को दूर करने के लिए कुछ करने की, अपने को संकट में डाल कर, अपना कुछ गँवा कर भी, सहायता करने की वृत्ति थी। विद्यालय के अपने अध्ययन-काल में एक बार आपने संस्था के अनाथालय में प्रविष्ट हुई एक लड़की को, जिसके पास कपड़े-लत्ते नहीं थे, अपने कपड़े, अपना सर्दियों का बिस्तर तक, दे दिया और घर से नया बिस्तर लाने तक अपनी छोटी बहन के बिस्तर के कपड़ों से गुज़ारा किया। इसी प्रकार अपने आगे के जीवन में, पढ़ाई के बाद कलकत्ता में काम करते हुए, आप ने एक चन्द दिनों के, परित्यक्त, बंगाली बच्चे को, जिसका कोई पालक और संरक्षक नहीं था और जो ईसाई मिशनरियों को दिया जा रहा था, अपना लेने का महान् साहस किया। एक कुँवारी लड़की के लिए यह एक अद्‌भुत साहस था। आपने उस बच्चे को पाला पोसा, अपने क्रांति-कारी, 'अन्डर ग्राऊंड' रहने के कई वर्षों तक, अपनी छोटी बहन के पास छोड़ा और बाद में उसे पढ़ा लिखाकर, उसका विवाह करके उसे जीवन में स्थिर किया।

जैसे कि कहा गया है, संवेदन-शीलता आप की प्रकृति का एक आधार-भूत गुण था। पिता की अनुपस्थिति में अपने चार, मातृ-हीन, छोटे बहन-भाइयों के प्रति स्नेह-प्रदर्शन से आप भी वह स्वाभाविक संवेदन-शीलता पुष्ट हो गई थी। संवेदन-शीलता ही साहित्य और कला की बुनियाद है। विद्यालय के आध्यात्मिक और राष्ट्रीय वातावरण में, सामान्म शिक्षण के साथ, साहित्य-रचना, संगीत और चित्र-कला में आप की रुचि विकसित होती गई। संस्था के संस्थापक लाला देवराज जी, अपनी गुजरात की यात्रा से छात्राओं के लिए वहां के प्रसिद्ध गर्वा नृत्य की सौग़ात लाए तो कवि-प्रतिभा से सम्पन्न सुशीला ने गर्वा-नृत्य के अनुरूप, हिन्दी और पंजाबी में, गीत लिखे। संस्था में पधारने वाले राष्ट्रीय नेताओं के स्वागत के लिए गान लिखना आप के ज़िम्मे था। आप के विद्यालय छोड़ने के लगभग बीस वर्ष बाद, श्रीमती सरोजिनी नायडू ने, जो स्वयं कवि थीं, दिल्ली में आप को देखते ही पहचान लिया था और विद्यालय में उनके स्वागत में गाए आप के गान की याद दिलाई थी। लाला लाजपत-राए की गम्भीर बीमारी के समय, उनके स्वास्थ्य लाभ के लिए प्रार्थना-रूप लिखी आपकी एक कविता की, जो उस समय जालन्धर की एक विशाल सभा में भी गाई गई, कुछ पंक्तियां तो शहर की जनता में देर तक प्रचलित रहीं। गांधी जी की गिरफ्तारी के समय लिखी आप की एक पंजाबी कविता भी उस समय बहुत प्रसिद्ध हुई।

विद्यालय के जीवन में आप के अन्दर वक्तृत्व-शक्ति का भी विकास हुआ। विद्यालय से देश-यात्रा के लिए निकली एक मंडली के साथ आप पटना में थीं कि वहाँ, राजेन्द्र बाबू की अध्यक्षता में, एक हिन्दी वक्तृत्व-प्रतियोगिता का आयोजन था। शर्त यह थी कि वक्तृता में कोई अंग्रेज़ी का शब्द न आए। उस प्रतियोगिता में भाग लेकर आप ने प्रथम स्थान प्राप्त किया।

विद्यालय का वातावरण आध्यात्मिक विकास के लिए भी बहुत अनुकूल था। संस्था संस्थापक अपनी छात्राओं को, अपने साथ, पर्वतों के प्राकृतिक सुन्दर स्थानों पर भी ले जाते थे। इन यात्राओं से आप की आध्यात्मिक प्रतिभा का विकास हुआ और प्रकृति के सौंदर्य में भगवत्-दर्शन की वृत्ति जागृत हुई। भक्ति-संगीत में भी आपकी रुचि थी। संस्था में आप छोटे-छोटे नाटकों के अभिनय का भी आयोजन करती थीं।

आप के विद्यालय के जीवन ही में आप का परिचय संस्था में पधारे लाहौर के प्रसिद्ध क्रांति-कारी युवक भगवतीचरण और उनकी पत्नी दुर्गा देवी से हो गया था। विचारों और आदर्शों की समानता के कारण यह परिचय मैत्री में बदल गया। शिक्षा के बाद संस्था में पढ़ाते हुए, छुट्टियों आदि में, लाहौर में, उस क्रांति-कारी परिवार से मिलते रहने से आप भारत-नौजवान-सभा के भगत सिंह जैसे अन्य क्रांति-कारी सदस्यों से भी परिचित हो गई थीं।

1924 में आप ने विद्यालय की स्नातिका की उपाधि प्राप्त की और, संस्था की परम्परा के अनुसार, कुछ वर्ष तक संस्था में अध्यापन-कार्य किया। 1928 में कलकत्ता के प्रसिद्ध हरियानवी व्यापारी, सर छाजूराम ने लाला देवराज जी से एक ऐसी अध्यापिका की मांग की, जो उनकी इकलौती बेटी की ट्यूटर और संरक्षिका के रूप में, उनके परिवार के सदस्य के रूप में रहे। लाला जी ने आप को इस ज़िम्मेवारी को उठाने के योग्य समझ कर आप को कलकत्ता भेज दिया।

1928-29 का ज़माना देश के इतिहास में एक विशेष राष्ट्रीय चेतना का ज़माना था। वहां आप को विद्यालय की एक और स्नातिका श्रीमती कौशल्या देवी तथा प्रसिद्ध लेखक और पत्रकार श्री सत्य देव विद्यालंकार की पत्नी सुभद्रा देवी का सहयोग मिल गया। तीनों पंजाबी महिलाओं ने आर्य समाज के क्षेत्र में समाज-सेवा-कार्य आरम्भ किया जो बढ़ते-बढ़ते राष्ट्रीय क्षेत्र तक और क्रांति-कारी क्षेत्र तक पहुंच गया। आप ने वहाँ 'भगिनी समाज' की स्थापना की जिस से महिलाओं में खूब राष्ट्रीय जागृति पैदा हुई। इस जागृति के फल-स्वरूप 1930 के राष्ट्रीय आन्दोलन में कई बहनें भी जेल गईं और 1932 के आन्दोलन में तो वहाँ की इतनी बहनें जेल गईं कि बंगाल-प्रांत की सरकार को महिलाओं के लिए एक पूरी अलग जेल की ज़रूरत पड़ गई।

1928 के नवम्बर मास में, लाहौर में, साइमन कमीशन के बायकाट के प्रदर्शन के समय की, पोलिस की लाठियों के प्रहार के कुछ दिन बाद, लाला लाजपतराए की मृत्यु हो गई तो इस से देश के क्रांति-कारी नौजवानों में प्रतिशोध की ज्वाला भड़क उठी और क्रांति-कारी गति-विधियां तेज़ हो गईं। लाला जी की मृत्यु के लगभग एक मास बाद लाहौर में, लाला जी पर लाठियां बरसाने वाली पुलिस के एक उच्चाधिकारी मिस्टर सांडर्स, क्रांति-कारी युवकों की गोलियों के निशाना बने और घटना के बाद उसी रात नवयुवक भगत सिंह, भगवती चरण की साहसी पत्नी दुर्गा देवी और उनके गोद के बच्चे को साथ लेकर, और अपने साथी राजगुरु को अपने नौकर का वेश पहना

कर, एक संभ्रांत, अंग्रेज़ी रहन-सहन वाले परिवार के रूप में, प्लैट-फार्म पर मौजूद पुलिस की भीड़ में से होकर, फस्ट क्लास के आरक्षित डिब्बे में लाहौर से निकल गए। वे कलकत्ता पहुंचे। रास्ते से कलकत्ता में आप को तार दे दी गई थी। स्टेशन से लेजाकर आप ने उन्हें अपने पास रखा। सेठ सर छाजूराम की पत्नी लक्ष्मी देवी ने वीरता-पूर्वक सहयोग दिया। कलकत्ता में कांग्रेस के अधिवेशन के दिन थे। भगवती चरण भी 'अंडर-ग्राऊंड' रूप में, पहले ही से कलकत्ता में थे। कई दिनों तक आप का निवास-स्थान क्रांति-कारियों की गति-विधियों का केन्द्र बना रहा। फिर सब क्रांति-कारी अपने अपने कामों के लिए बिखर गए और आप ने अपनी उंगली काट कर निकाले अपने खून से उनके माथों पर तिलक करके और बहिन का आशीर्वाद देकर उन्हें विदा किया।

कुछ देर बाद दिल्ली की सैंट्रल असैम्बली में बम्ब फैंक कर भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने अपने को गिरफ्तार करवा दिया और उन पर केस चलने लगा। सांडर्स की हत्या का केस भी चल पड़ा। 1929 में आप ने कलकत्ता में, द्विजेन्द्र लाल राए के प्रसिद्ध नाटक 'मेवाड़-पतन' के सुन्दर अभिनय का महान् आयोजन करके, उन केसों के 'डीफैंस' के लिए बारह हज़ार रुपये जमा कर लिए। दो केसों में आप के भी वारन्ट थे। 1930 में आप फरार होकर अपने क्रांति-कारी साथी भाई चन्द्र शेखर आज़ाद से जा मिलीं। 1930 से 1933 तक का ज़माना आप की ठेठ क्रांति-कारी गति-विधियों का ज़माना था। चन्द्र शेखर आज़ाद, भगवती चरण और अनेक अन्य क्रांति-कारियों के साथ आप उनकी 'दीदी' के रूप में रहीं। उन्हीं दिनों आप को 'दीदी' नाम मिला जो आप के नाम का एक हिस्सा ही बन गया।

भगत सिंह और उनके साथियों को सज़ा मिल चुकी थी। चन्द्र शेखर आज़ाद, भगवती चरण और दूसरे क्रांतिकारी साथियों ने उनको पुलिस के हाथों से निकाल ले जाने की योजना बनाई और इसके लिए लाहौर को अपनी गति-विधियों का केन्द्र बनाया। बहावलपुर रोड पर एक कोठी किराए पर ली गई और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए वहां बम्ब आदि बनाने का नाम शुरू किया गया। आप के और भगवती चरण की पत्नी दुर्गा देवी के वहीं रहने से वह कोठी आस-पास वालों को एक सामान्य परिवार का निवास-स्थान मालूम होता था और खुफिया पुलिस के सन्देह से बचाव था। दुर्भाग्य से एक दिन लाहौर के समीप रावी नदी के तट पर, जंगल में, अपने तैयार किए बम्बों की परीक्षा करते हुए, एक बम्ब के फटने से, वहीं भगवती चरण की मृत्यु हो गई। कुछ दिन बाद बहावलपुर रोड की उस कोठी में भी बम्ब फट गया और सभी को कोठी को छोड़ छाड़ कर इधर-उधर शरण लेनी पड़ी। इस प्रकार भगत सिंह और उनके साथियों को छुड़ाने की योजना असफल रही।

इसके बाद आप ने अपने उस 'अन्डर-ग्राऊंड' जीवन के दो तीन वर्ष दिल्ली में गुज़ारे। वह अंग्रेज़ सरकार के दमन-चक्र का ज़माना था। कांग्रस गैर-कानूनी घोषित की

जा चुकी थी। 1932 का कांग्रेस का 'सैशन' गैर-कानून रूप में दिल्ली में किया गया। उस के लिए आप ने बढ़कर कार्य किया और 'इंदुमती' नाम से आप दो बार जेल भी गईं। आप के विरुद्ध दो सरकारी वारंट तो थे ही और पुलिस आप की तलाश में थी। 1933 में आप गिरफ्तार हो गईं परन्तु पुलिस को आप से कोई जानकारी न मिल सकी। जिन केसों में आप के वारन्ट थे, वे केस भी तै हो चुके थे। इसलिए आप को दिल्ली से निकल जाने के लिए कह कर मुक्त कर दिया गया।

अब आप अपने घर गुजरात चली गईं। वहीं आप का विवाह, दिल्ली के एक सम्पन्न वकील श्याम जी मोहन के साथ हो गया, जो क्रांति-कारियों की गति-विधियों में उन को सहयोग देते आ रहे थे, और आप के भी सहायक रहे थे। भगतसिंह और उनके साथियों को छुड़ाने की योजना में, उन्हें छुड़ा कर सुरक्षित रखने के लिए स्थान ढूंढ़ने की ज़िम्मेवारी आप पर थी और श्याम जी मोहन ने, दिल्ली की एक गली में स्थित अपना एक विशाल मकान इस काम के लिए देने का तै कर दिया था।

1933 में विवाह के बाद आप दिल्ली पुलिस को सूचना देकर, अपने पति के साथ दिल्ली आ गईं। अब क्रांति-कारी गति-विधियों का युग समाप्त सा हो गया था। भगत सिंह और उनके साथियों को फांसी मिल चुकी थी। जैसे कि ऊपर कहा जा चुका है भगवती चरण लाहौर में बम्ब-विस्फोट से मर चुके थे। चन्द्र शेखर आज़ाद भी दिन के समय, प्रयाग में पुलिस के साथ लड़ते हुए, वीर-गति को प्राप्त हो चुके थे।

दिल्ली में आप कांग्रेस के काम में तथा अन्य रचनात्मक कामों में लग गईं। लम्बे समय तक आप ने दिल्ली की कांग्रस कमेटी की अध्यक्ष के रूप में कार्य किया। कांग्रेस के कार्य के साथ-साथ आप "मदनमोहन-महिला-शिल्प विद्यालय" की आचार्या भी थीं। इस विद्यालय का उद्देश्य लड़कियों और महिलाओं को भिन्न-भिन्न शिल्प-कलाओं की शिक्षा देकर उन्हें स्वतन्त्र जीवन बिताने के योग्य बनाना था।

1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का एक पहलू गुप्त क्रांति-कारी आन्दोलन जैसा भी था। उस आन्दोलन में, गुप्त रहकर, 'अंडर-ग्राऊंड' रहकर, साहित्य आदि बांटने की प्रकिया चलती थी। अपने क्रांति-कारी आन्दोलन के अनुभवों के कारण, आपने दिल्ली में आन्दोलन के इस पहलू को ऐसे सुचारू रूप से निभाया कि काफी काम भी हुआ और आप पुलिस की नज़र में भी नहीं आईं। वैसे उस आन्दोलन के खुले पहलू में आप और आप के पति भी जेल गए।

1947-48 के देश के विभाजन के वातावरण में, जहाँ एक तरफ आप ने दिल्ली के मुसलमानों की रक्षा के लिए काम किया, वहाँ दूसरी तरफ पाकिस्तान के आए शरणार्थियों के बसाने के काम में दिन-रात एक किया।

आप का दिल्ली का घर पुराने क्रांति-कारियों और अन्य देश-भक्तों के लिए अपने ही घर के समान था। देश-भक्तों तथा क्रांति-कारियों के सम्मेलनों को सम्पन्न करने में आपने बहुत कार्य किया। आप का सारा समय जन-सेवा ही के लिए था।

अपने जीवन के अन्तिम वर्ष में आप दिल्ली नगर निगम की वरिष्ट सदस्य चुनी गईं, परन्तु आप कुछ ही समय तक इस रूप में कार्य कर पाई थीं कि 1963 में, अचानक, हृदय की गति रुक जाने से आप का देहांत हो गया।

आप के निधन से दिल्ली के समाज-सेवा तथा कांग्रेस-कार्य के क्षेत्र में एक शून्यता पैदा हो गई। आप के समान तेजस्वी समाज-सेवा-दीक्षित, ईमानदार महिला मिलना मुश्किल था। आपके जीवन-कार्य की तेजस्विता के कारण राष्ट्रीय सरकार तथा जनता, दोनों में, आप का आदर था। आप के निधन के बाद आप की स्मृति में, आप के निवास के क्षेत्र की एक सड़क का नाम 'सुशीला मोहन मार्ग' रखा गया और उसी क्षेत्र में आप के नाम पर एक विद्यालय की स्थापना की गई। आप की छोटी बहिन शांता ने आप का एक संक्षिप्त जीवन-परिचय लिखा। प्रसिद्ध लेखक सत्यदेव विद्यालंकार ने 'दीदी (सुशीला मोहन)' नाम से आप की जीवनी भी लिखी है, जो देश की आने वाली पीढ़ियों को त्याग, साहस और वीरता का मार्ग दिखा सकती है।

हमारे देश के स्वतन्त्रता-संग्राम में क्रांति-कारी आन्दोलन का एक अपना स्थान है। उस आन्दोलन में देश के अनेक साहसी वीर युवक कार्य-क्षेत्र में आए और उन में से कई वीर-गति को भी प्राप्त हुए। उन वीरों की, भारत-माता के उन वीर पुत्रों की, वीर बहन के रूप में आप ने एक ऐतिहासिक भूमिका निभाई। वे वीर युवक अपने माता-पिता से, सगे सम्बन्धियों से, नाता तोड़ कर बलिदान के पथ पर चले थे। उन्हें वीर बहिन का प्रेम देने वाली, उनकी कलाइयों पर राखी बांधने वाली, उनके मस्तकों पर अपने रक्त का तिलक लगा कर आशीर्वाद देने वाली, उनके जीवन में पारिवारिक स्नेह का सौरभ पैदा करने वाली,उनकी दीदी, आप थीं। क्रांति-कारियों के उस परिवार में आप 'दीदी' थीं और शहीद भगवती चरण भी वीर पत्नी दुर्गा देवी भाभी थीं।

देश के इतिहास में इन युवकों और युवतियों के नाम जीवित रहेंगे और समय बीतने के साथ इन नामों के इर्द-गिर्द साहित्यिक कल्पनाओं के किरण-जाल की उत्पत्ति हो कर कविता, नाटक और कहानी आदि भिन्न-भिन्न साहित्य-विद्याओं की रचना होगी। उन रचनाओं की पृष्ट-भूमि में कन्या महाविद्यालय, इस के संस्थापक लाला देव राज तथा अन्य सम्बन्धित जनों का प्रकाश भी झिलमिलाएगा।

—×—

: 6 :

समाज-क्रांति के लिए आग्रही

श्रीमती सत्यवती स्नातिका

श्रीमती सत्यवती स्नातिका पूरी आधीशताब्दी तक, उत्तर-प्रदेश, विशेषत: ज़िला तथा शहर मेरठ की, एक प्रसिद्ध सेवा-साधिका महिला रही हैं। इस लेखक ने बहुत वर्षों से विद्यालय-माता की इस यशस्वी सन्तान की ख्याति सुन रखी थी, परन्तु इच्छा रहते हुए भी, वह आपके जीवन में आप से मिलकर आप के जीवन तथा कार्य के बारे में तथा विद्यालय-जीवन के आप के अनुभवों के बारे में जानकारी लेने न जा सका। आपके सम्बन्ध में जो कुछ यहां लिखा जा रहा है, उसका आधार आप के पति, चौधरी विजय पाल सिंह से, जो स्वयं आजीवन अपनी इस छियासी वर्ष की आयु तक, उत्तर-प्रदेश, विशेषत: मेरठ के इलाके में, प्रसिद्ध राष्ट्रीय तथा राजनीतिक कार्य-कर्त्ता तथा नेता रहे हैं, मिली जानकारी है। चौधरी साहिब के शब्दों में अपनी दिवंगत पत्नी के प्रति गहरी श्रद्धा तथा आदर-भावना भरी है।

अपनी मातृ-संस्था के लिए आप की श्रद्धा तथा स्नेह-भावना का अनुमान इसी बात से हो सकता है कि आपने संस्था से प्राप्त की गई 'स्नातिका' उपाधि को अपने नाम का एक हिस्सा ही बना लिया था। जात-पात के प्रति आर्य-समाज के अवहेलना-भाव के कारण, विद्यालय में प्रवेश पाने वाली छात्राएं अपने नामों के साथ अपनी जाति नहीं लगाती थीं। एक ही नाम की एक से अधिक छात्राएं होने की सूरत में छात्राओं के नामों के साथ उनके निवास के स्थान का नाम लगा दिया जाता था। विद्यालय में आप सत्यवती 'डलहौज़ी' कहलाती थीं और विवाहित होकर, आपने अपनी उपाधि-'स्नातिका' को अपने नाम का एक अंग बना लिया।

आपके पिता एक श्रद्धावान् आर्य-समाजी थे। ब्राह्मण होते हुए, अपने वंश की सिक्ख परम्परा के कारण, उनके घर में दान लेने की परिपाटी नहीं थी। कुछ देर तक, सरकारी नौकरी करने के बाद उन्होंने, उस नौकरी में प्रचलित रिशवत के कारण उस नौकरी को छोड़कर अपना स्वतन्त्र कार्य आरम्भ करके उस में सफलता प्राप्त की। उनके वंश के दान-दक्षिणा विरोधी ईमानदारी के जीवन के संस्कार उनकी प्रथम संतान

सत्यवती में विशेष रूप से प्रकट हुए। अपनी छः वर्ष की आयु में सत्यवती को अपने ननिहाल जाने का अवसर मिला तो उसने देखा कि उसके, पुरोहित का कार्य करने वाले, नाना के घर में दान-दक्षिणा का अन्न आता था। अपने पितृ-घर के उग्र संस्कारों के कारण छः वर्ष की बच्ची ने वहां का अन्न ग्रहण नहीं किया। जब बहुत समझाने पर भी उस ने तीन दिन तक कुछ न खाया तो उसके पिता को बुलाया गया। बेटी की ज़िद को देख कर पिता ने कहा, "बेटी, तुम्हारा स्थान तो गुरुकुल में है। क्या तुम्हें वहां छोड़ आएं ?" बेटी के 'हां' कहने पर पिता उसे कन्या महा विद्यालय जालन्धर में दाखिल कर गए।

आप के जीवन की यह ज़िद की, आग्रह की, अपनी बात पर दृढ़ रहने की वृत्ति सदा आप के साथ रही और स्वयं चाचा जी, लाला देवराज जी ने, अपनी इस आदर्श-वादी शिष्या की इस वृत्ति का संकेत करते हुए अपनी डायरी में कहीं लिखा है, "सत्य वती में बहुत गुण है परन्तु वह कुछ अधिक ही आग्रही है।" आप की यह वृत्ति आप के जीवन के आदर्शवादी दृष्टि-कोण के कारण थी और उसने आप के जीवन को तेजस्वी बनाया। निस्सन्देह यह वृत्ति जीवन और अनुभव के बढ़ने के साथ सौम्य होती चली गई।

1922 में आपने विद्यालय की अपनी लगभग बारह वर्ष की पढ़ाई समाप्त करके स्नातिका की उपाधि प्राप्त कर ली। 1922 से 1928 तक आपने अपनी मातृ-संस्था में अध्यापन-कार्य किया। दीन-दुखियों की सेवा की दृष्टि से आप की आकांक्षा डाक्टर बनने की थी और अपने स्वभाव के अनुसार इसके लिए आपका आग्रह भी था। परन्तु उस ज़माने के आर्य-समाजी नेताओं के सामने समाज-क्रांति का आदर्श था। आपकी प्रतिभा, विशेषतः वक्तृत्व-शक्ति को देखते हुए वे नेता आप को समाज-क्रांति के कार्य में लगाना चाहते थे। आर्य समाज के प्रसिद्ध तेजस्वी संन्यासी नेता स्वामी सत्यानन्द जी ने आपको समझाया, "बेटी, देश को शारीरिक डाक्टरों की इतनी ज़रूरत नहीं है, जितनी मानसिक और नैतिक डाक्टरों की ज़रूरत है।" ऐसे महापुरुष के इन शब्दों के प्रभाव से आप ने डाक्टर बनने के अपने आग्रह को छोड़कर, अध्यापिका बनना मान्य कर लिया।

कुछ तो अपने स्वभाव के कारण और कुछ चाचा जी की प्रेरणा से, आप की विवाह के प्रति अरुचि थी और आप, अविवाहित रह कर, अपने जीवन को समाज-सेवा में लगाना चाहती थीं। परन्तु आपका परिवार, विशेषतः आप की माता, आपका विवाह करने के लिए चिंतित थे। माता के बहुत कहने पर आप ने स्पष्ट कह दिया, "मैं नहीं चाहती कि अपने जीवन को चौके चूल्हे के साथ बांध दूँ"। इस पर आप से पूछा गया, "यदि कोई ऐसा वर मिले जिसके साथ तुम समाज-सेवा के काम में लगी रहो, तब तो तुम्हें विवाह करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए"। इसके उत्तर में आप के मौन को आप की स्वीकृति मान लिया गया।

आप के पिता 'जात-पात-तोड़क-मंडल के भी सदस्य थे। उस मंडल की सहायता से मेरठ के युवक ऐडवोकेट, चौ. विजयपाल सिंह, जो जाति से जाट थे और 1921 के सत्याग्रह-संग्राम के दिनों ही में, अपनी ऐल. ऐल. बी. की शिक्षा छोड़ कर, आन्दोलन में शामिल हो कर, उस प्रदेश से जेल जाने वाले पहले-पहले लोगों में थे और बाद में एक ऐडवोकेट के रूप में मेरठ में अपनी प्रैक्टिस के साथ-2 कांग्रेस का काम करते थे, आप के जीवन-साथी चुने गए। 1928 में आपका विवाह हो गया और पति-गृह, मेरठ, में आते ही आप भी राष्ट्रीय तथा सामाजिक कार्यों में, पति के साथ शामिल हो गईं।

विद्यालय में आध्यापन-कार्य करने के जीवन की कुछ घटनाएं आप की प्रतिभा तथा समाज-क्रांति की लगन पर प्रकाश डालती हैं। एक दफा आप लाला देवराज जी के नेतृत्व में, धन-संग्रह के लिए बनाए गए डैपूटेशन के साथ गईं तो वहां आप की वक्तृत्व-शक्ति का बहुत प्रभाव पड़ा। वहां पर हुई एक वक्तृता-प्रतियोगिता में आप भी शामिल हो गईं और उस में सर्व-प्रथम रह कर आप ने स्वर्ण-पदक प्राप्त किया। मथुरा में हुए शताब्दी-समारोह में भी आप की वक्तृता-शक्ति की प्रशंसा हुई। लाहौर आर्य समाज के वार्षिक-उत्सवों पर भी आप के व्याख्यान होते थे।

मथुरा के शताब्दी-समारोह से लौटते हुए आप की ट्रेन लक्सर स्टेशन पर काफी रूकी और अन्य लड़कियों के साथ आप भी चाय पीने के लिए गाड़ी से उतरीं। उस ज़माने में हिन्दू-चाय और मुसलमान,-चाय की अलग-अलग दुकानें होती थीं। हिन्दू दुकान बहुत गन्दी थी और उस पर अण्डे भी पड़े थे, जब की मुसलमान-दुकान बहुत साफ-सुथरी थी। एक वयो-वृद्ध अध्यापक साथी के मना करते हुए भी आप ने, कुछ अन्य लड़कियों के साथ, उसी मुसलमान दुकान से चाय पी ली। विद्यालय पहुँच कर आपने चाचा जी को सारी बात सुना दी तो उन्होंने कहा, "बेटा, फिर क्या हुआ। क्या हम मुसलमानों से दूध, गन्ने का रस आदि पीने की चीज़ें लेकर नहीं पीते ?" उस ज़माने में आप का ऐसा साहस करना और लाला देवराज जी का ऐसे शब्द कह कर आप का समर्थन करना समाज-क्रांति की वृत्ति ही का प्रतीक था।

ऐसे ही एक बार आप विद्यालय की ओर से गई एक मंडली के साथ बिहार में रेल-यात्रा कर रही थीं तो वहाँ स्त्रियों के डिब्बे को परदे से ढंका देखकर, आप ने उस परदे को उतार दिया। इससे स्टेशन पर शोर मच गया। स्टेशन-मास्टर आया तो आप ने कड़ाई से कह दिया "हम परदे में नहीं बैठ सकती हैं"। झगड़े को बढ़ने से रोकने के लिए स्टेशन-मास्टर ने आप की मंडली को फस्ट क्लास के डिब्बे में बिठा दिया।

समाज-क्रांति और स्त्री-शक्ति-जागरण के लिए ऐसी उग्र भावनाएं लेकर आप 1928 में अपने समान ही विचारों वाले पति के कार्य-क्षेत्र मेरठ में आईं तो आते ही शहर के सामाजिक कार्य-क्षेत्र पर छा गईं। आपके मेरठ पहुंचने के कुछ ही समय बाद, लाला लाजपतराय की मृत्यु पर, शहर में शोक-सभा हुई तो आप से भी बोलने के लिए आग्रह किया गया। अपने उस पहले ही भाषण से आप शहर में सर्व-परिचित और

सर्व-सन्मानित हो गईं। कुछ ही देर बाद मेरठ की नगर-पालिका के चुनावों में आप एक सदस्य चुनी गईं तो आप ने एक राष्ट्रीय पर्व के दिन नगर-पालिका के भवन पर तिरंगा झंडा लहरवा दिया, जो अंग्रेज़ डिप्टी कमिश्नर को बहुत अखरा।

कांग्रेस के आन्दोलन में आप अपने पति के साथ उत्तर-प्रदेश के गांवों में भी जाती थीं। उस प्रदेश में स्त्रियों में परदे का भयानक रिवाज था। कई जगह तो पुरुष आप को नंगे-मुंह देख कर, अपना विरोध प्रकट करने के लिए, स्वयं परदा कर लेते थे। एक स्थान पर तो गाँव की एक स्त्री ने स्टेज पर आकर आप के नंगे मुंह पर स्वयं परदा डाल कर अपना विरोध प्रकट किया। ऐसे विरोधी वातावरण में आप ने उस इलाके में राष्ट्रीय तथा सामाजिक क्रांति का कार्य किया। परन्तु आहिस्ता-आहिस्ता गांवों के लोग भी आपके गुणों की और आप की प्रतिभा की प्रशंसा करने लगे। 1942 के आन्दोलन में, जब आपके पति जेल में थे और घर में तीन गौएं थीं तो आप को उन गौओं के लिए स्वयं चारा काटते और उन का गोबर तक उठाते और थापते देखकर, आपके पति के गांव से आए, गांवके एक प्रमुख चौधरी ने प्रशंसा करते हुए कहा, "हम तो समझते थे कि कन्या महाविद्यालय की पढ़ी लड़कियां केवल सजावट की गुड़ियाएं होंगी। मेरा तो भ्रम दूर हो गया।"

1934-35 में, जब गांधी जी ने हरिजन-सेवक-संघ की स्थापना की तो आप, आरम्भ ही से उस की ज़िला-शाखा की अध्यक्ष नियुक्त हुईं और आपने हरिजन-सेवा को अपने जीवन का सर्व-प्रथम सेवा-कार्य बना लिया। शहर में हरिजन विद्यार्थियों के लिए छात्रावास बना तो आप आरम्भ से उस की प्रबन्ध-समिति की अध्यक्ष रहीं। किसी दीन-दुःखी को देखकर आप उसकी सहायता के लिए व्याकुल हो उठती थीं।

1937 में हुए, उत्तर-प्रदेश-असैम्बली के चुनावों में आप और आपके पति, दोनों, अलग-अलग क्षेत्रों से चुने गए। आप ने एक धनी मानी जागीरदार को एक बहुत बड़े बहुमत से हराया। असैम्बली में जाते ही आपने चतुर्थ वर्ग के सेवकों, सरकारी दफ्तरों के चपड़ासियों आदि के आर्थिक प्रश्न को उठाया और उनके लिए बहुत सी सुविधाओं की योजना बनवाई। असैम्बली की पन्द्रह बीस स्त्री-सदस्याओं में से बोलने वाली प्रायः आप ही थीं। आप के पति उस ज़माने के सोशलिस्ट ग्रुप में होने के कारण बहुत जोशीले रूप में बोलते थे और अक्सर सत्ता-धारी ग्रुप के लिए कटुता के कारण भी बन जाते थे। ऐसी स्थिति में, असैम्बली के प्रसिद्ध स्पीकर श्री पुरुषोत्तम दास टंडन, असैम्बली में हुए उनके भाषण के बाद अक्सर आप को बोलने के लिए कहते थे। अपने गांधीवादी दृष्टि-कोण और अपनी वक्तृत्व-प्रतिभा के कारण आप का भाषण आपके पति के भाषण से पैदा हुई कटुता को दूर कर देता था।

कांग्रेस में आप सदा दाएं पक्ष में, गांधीवादी पक्ष में, रहीं जबकि आपके पति, जैसे कि कहा गया है, समाजवादी यानी बाएं पक्ष में थे। एक दफा आप समाज-वादी पक्ष के समान्य नेता, आचार्य नरेन्द्र देव के साथ कार में कहीं जा रही थीं तो, एक

चौक में, ड्राइवर को रास्ते का संकेत करने के लिए आपने कहा "बाएं मुड़ना है"। ये शब्द सुनकर आचार्य नरेन्द्र देव ने कहा, "शुक्र है, एक बार तो इसी बहाने से आपके मुंह से बाएं मुड़ने की बात निकली।"

असैम्बली की सदस्या के रूप में आपने अनुभव किया कि किसी ईमानदार, जायज-नाजायज तौर पर अपने समर्थकों को खुश न रख सकने वाले, व्यक्ति के लिए चुनावों की राजनीति में स्थान नहीं है। इसलिए आपने आगे के लिए किसी चुनाव में खड़े न होने का निश्चय कर लिया। आगे के हर चुनाव के अवसर पर आप को खड़े होने के लिए कहा गया, परन्तु आप ने सदा इन्कार कर दिया।

1960 में आप को मेरठ के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का अध्यक्ष नामांकित कर दिया गया तो आपने देर से चली आ रही बोर्ड की धांधली को दूर करने के लिए बहुत से कदम उठा कर अपनी प्राशासनिक प्रतिभा का परिचय दिया। बहुत देर से ज़िला के स्कूलों के अध्यापकों के वेतन समय पर नहीं दिये जाते थे, तो आपने यह परम्परा डाल दी कि अध्यापकों के वेतन भेजने के बाद ही ज़िला कार्यालय के स्टाफ को वेतन दिए जाए। स्कूलों के लिए नए अध्यापक नियुक्त करने में काफी धांधली होती थी। आप ने नए भर्ती किए जाने वाले अध्यापकों की परीक्षा का काम अपने हाथ में लेकर केवल योग्यता के आधार पर नियुक्तियां कीं। गढ़ मुक्तेश्वर का प्रसिद्ध वार्षिक मेला भी धांधली का एक बड़ा आयोजन था। इसके लिए नियुक्त समिति को तोड़ कर आप ने मेले के प्रबन्ध को अपने हाथ में लिया। जिस मेले में चालीस हज़ार रुपये का घाटा आता था उसमें पन्द्रह हज़ार का लाभ आया। उस मेले के अवसर पर आप स्वयं पूरे दिन उस स्थल पर रहीं। वहां से विदा होते समय जब आप ने दूध वाले को बुलाकर, अपने लिए आते रहे दूध के पैसे चुकाए तो उस दूध वाले ने कहा, "बहन जी, आप से पहले तो कभी किसी अधिकारी ने अपने दूध के पैसे नहीं चुकाए थे।"

आप मेरठ विश्वविद्यालय के सैनेट और सिंडीकेट की सदस्य भी रहीं। वहां भी आप ने चर्तुथ वर्ग के सेवकों, विशेषत: भंगियों, की सुविधाओं के लिए नियम बनवाए।

अपने इकलौते लड़के की, जर्मनी में हुई, मृत्यु के समय, आप ने न केवल स्वयं उस आघात को साहस और हिम्मत से सहन किया, बल्कि अपने पति को भी धैर्य बंधाया। 1978 में अपनी अन्तिम बीमारी के समय भी आप ने अद्भुत आशा और सहन-शीलता का परिचय दिया। परन्तु बीमारी असाध्य सिद्ध हुई। उसी वर्ष आप, अपनी लगभग पचहत्तर वर्ष की आयु में दिवंगत हो गईं।

आप ने अपने जीवन और सेवा-क्षेत्र में बहुत यश प्राप्त किया। आप अक्सर कहा करती थीं, "मुझ से कोई ऐसा काम न हो जाए, जिससे मेरे परिवार तथा मेरे शिक्षण-

स्थान, कन्या महाविद्यालय पर कोई धब्बा आए।" अपने राजनीतिक जीवन में भी आप ने एक भारतीय महिला की शालीनता को पूरी तरह बनाए रखा। जब भी कभी आप कहीं बाहिर क्षेत्र में गईं तो अपने पति के साथ ही गईं। आप की सच्चारित्रता, प्रतिभा तथा समाज-सेवा के कारण आप के जाने के बाद भी, आप का नाम सर्वत्र आदर और श्रद्धा से लिया जाता है। आप के साथ वर्षों तक हरिजन-सेवा का कार्य करते रहने वाले, श्री महावीर त्यागी, जब 'माता जी' 'माता जी' कह कर आपके कार्यों और गुणों का उल्लेख करते हैं तो गद-गद हो जाते हैं।

—X—

: 7 :

आजीवन सेवा-दीक्षित

कु० शान्ता बहन

आचार्या जी की तरफ से लिखे गए एक पत्र के उत्तर में कु० शान्ता बहन ने गत जुलाई मास में, अपने निवास-स्थान रांची से लिखे गए अपने पत्र के साथ, मातृ-संस्था के संस्मरणों और अपने जीवन-कार्य की जानकारी देने वाला 'मेरी मातृ-संस्था' नाम का जो लेख भेजा था, उसे एक सुन्दर साहित्यिक कृति मान कर, थोड़े से संक्षेप के साथ, लगभग वैसे का वैसा दिया जा रहा है। इस लेख से स्पष्ट हो जाता था कि संस्था की छात्राएं अपनी संस्था के लिए क्या भावनाएं रखती थीं और किस प्रकार वे ला० देवराज जी के स्त्री-शक्ति जागरण के मिशन के लिए अपने जीवनों को लगा देती थीं। आचार्या जी से मालूम हुआ है कि कुछ ही समय पहले शान्ता बहन का देहान्त हो गया है। इस प्रकार यह लेख संस्था की एक सेवी-भावी पुरानी छात्रा की, अपनी संस्था के प्रति, अंतिम बहुमूल्य श्रद्धांजलि है—

मेरी मातृ-संस्था

बच्चा प्रारम्भिक अवस्था में अपने माता-पिता और अपने बड़े भाई-बहिन के जीवन और व्यवहार से सीखता है। 6-7 साल तक अपने माता-पिता की ओर से उसे जो संस्कार-सम्पत्ति प्राप्त होती है उसी का विकास विद्यार्थी-जीवन में होता है। अच्छे बुरे संस्कार ही उसकी भावी उन्नति-अवनति के मूल होते हैं। अध्ययन के समय उसके जीवन पर गुरु-जनों तथा अन्य कार्यकर्त्ताओं के सदाचार, सादा वेशभूषा और रहन-सहन का प्रभाव भी पड़ता है।

मैंने 11 साल तक आश्रम में रहकर कन्या महाविद्यालय में अध्ययन किया है। आश्रम जीवन से मैं कभी तंग नहीं आयी। कभी छुट्टियां संस्था में बितानी पड़तीं तो वहां रहना अखरता नहीं था, अपितु आनन्द ही आता था। संस्था के

संस्थापक और संचालक पुण्यश्लोक लाला देवराज जी (जिन्हें हम चाचा जी के प्यार भरे नाम से बुलाती थीं) सदाचारी, परम ईश्वरनिष्ठ, नम्र और सन्तानवत् स्नेह करने वाले थे। 'मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्' के वे साक्षात् प्रतीक थे। उनका जीवन ही उपदेश था। देश-प्रेम, सेवा-भावना, सादगी, कर्त्तव्य-परायणता और स्वदेशी वस्तुओं के प्रति अनुराग की भावना संस्था में ही अंकुरित हुई और बढ़ी। सच पूछा जाय तो स्नातिका बनने के बाद भी संस्था छोड़ने की मेरी इच्छा नहीं थी। मैं वहीं कार्य करके अपनी ज्ञान-वृद्धि की पिपासा को तृप्त करना चाहती थी, पर किसी कारणवश ऐसा न हो सका।

हमारे समय में संस्था की आचार्या पूज्य कुमारी लज्जावती जी के लिए भी मुझे विशेष आकर्षण था। वे हमें गीता और अर्थ-शास्त्र पढ़ाती थीं। उनकी पढ़ाने की पद्धति और विद्वत्ता ने ही मुझे आकर्षित किया था। मेरे स्नातिका बनने के दो तीन साल पहले पिताजी को भारी आर्थिक नुकसान सहन करना पड़ा। वे हमारी फीस तक देने में असमर्थ होने के कारण हमारी (मेरी, मेरी छोटी बहिन की और भतीजी की) पढ़ाई रोकना चाहते थे। उस समय संस्था ने हमारी फीस आधी करके शिक्षण के प्रति हमारे उत्साह को बढ़ाया। पूज्य आचार्या जी मुझे अपनी छोटी बहिन मानकर छुट्टियों में लाहौर अपने घर बुला लेतीं और संस्था में वापिस जाते समय आवश्यक वस्तुओं से मेरे अभाव की पूर्ति कर देती थीं। उन्होंने जब से मुझे अपनाया है तब से लेकर अभी तक वे बड़ी बहिन का कर्त्तव्य निभाये चली जा रही हैं। समय-समय पर वे मेरे मार्ग-दर्शन का काम भी करती रहती थीं। जब बड़ौदा में अध्यापन का कार्य करते समय मैं बीमार होकर जलवायु परिवर्तन के लिए जालन्धर आयी थी तब उन्होंने ही मुझे प्रभाकर की परीक्षा देने की सलाह दी थी और मैंने उसमें सफलता भी पाई थी।

हमारा अध्यापक-वर्ग और आश्रम की कार्यकर्त्रियां भी प्रेम से ओत-प्रोत थीं, जिससे संस्था और घर के आकर्षण में कोई भेद नहीं रहा। जिस संस्था में पिता का प्यार, बड़ी बहिन का निर्व्याज स्नेह और अध्यापक-वर्ग तथा आश्रम-स्टाफ का सगे सम्बन्धियों सा मधुर व्यवहार अनुभव किया हो उस संस्था को कैसे भुलाया जा सकता है ?

1929 में हमने (मेरी छोटी बहन सावित्री और भतीजी लक्ष्मी ने) इटोला की संस्था में अध्यापन-कार्य शुरू किया। उस कन्या विद्यालय का प्रारम्भ कुछ समय पहिले ही हुआ था। छोटी-छोटी कन्याएं थीं। कभी बिजली की मशीन बिगड़ जाती तो हम में से एक कुँए से पानी भरती और दूसरी लड़कियों को जल्दी जल्दी नहला देती। एक थक जाती तो दूसरी पानी खींचने का काम शुरू कर देती। इस काम में भी हमें आनन्द ही आनन्द था। हाथ से कैसा भी काम करना पड़े उसमें कभी हीनता

प्रतीत नहीं हुई। जब कभी वहाँ की पुरानी छात्राएं मिलती हैं तो यही कहती हैं कि आधुनिक समय में शौक से काम करने की वैसी भावना अदृश्य हो गयी हैं।

इटोला की संस्था एक गांव में थी। फिर उसी की दूसरी शाखा बड़ौदा में 'आर्य कन्या महाविद्यालय' के नाम से खोली गयी। प्रारम्भिक चार श्रेणियों की पढ़ाई इटोला में थी। उसके बाद उन्हें बड़ौदा आना पड़ता था। इन दोनों संस्थाओं का संचालन मान्य आनन्दप्रिय जी पंडित करते थे। वे संस्था के मंत्री थे और दान एकत्र करके संस्था के आर्थिक अभाव की पूर्ति करते रहते थे। वे इतने उत्साही थे कि कभी भी थकते नहीं थे। मैं इटोला से बड़ोदा आ गई थी।

जब मैं बड़ौदा में अध्यापन कार्य करती थी तब अफ्रीका के प्रसिद्ध गुजराती व्यापारी सेठ श्री नानजी भाई की दो पुत्रियाँ सविता बहिन और निर्मला बहिन वहां पढ़ती थीं। उनके माता-पिता अपनी पुत्रियों से मिलने आया करते थे। हम सब भी उन्हें बा-बापू जी कहती थीं। सेठ नानजी भाई कन्या-शिक्षण के प्रेमी थे और पोरबन्दर में लड़कियों के लिए संस्था खोलना चाहते थे। उन्होंने मुझ से पूछा कि "पोरबन्दर में संस्था खुलने पर तुम वहाँ काम करोगी?" मुझे तो कहीं भी पढ़ाने का कार्य करना था और मैंने उन्हें स्वीकृति-सूचक उत्तर दे दिया। 1937 में इस आदर्श दम्पती की प्रभूत धन-राशि के दान से मकान बन कर तैयार हो गये और धूमधाम से संस्था का उद्घाटन किया गया। तभी से मैंने उस संस्था की व्यवस्था और उसके अध्यापन का कार्य शुरू कर दिया। प्रारम्भ में लड़कियों की संख्या सीमित रही क्योंकि काठियावाड़ के लोग स्त्री-शिक्षा के प्रति लापरवाह थे। वहाँ का जलवायु मेरे अनुकूल नहीं था, अतः बीच बीच में कुछ समय के लिए संस्था छोड़ करके मुझे अन्यत्र जाना पड़ता था। अब तो वह संस्था एक वट-वृक्ष के समान बढ़ती चली जा रही है। स्कूल में 600 लड़कियाँ पढ़ती हैं। कई प्रार्थना-पत्रों को स्थानाभाव के कारण अस्वीकृत करना पड़ता है। कुछ वर्षों से कालेज विभाग भी शुरू कर दिया गया है। सेठ नानजी भाई की पुत्री, सविता बहन अब संस्था की आचार्या हैं।

पोरबन्दर में 'श्रीराम विकास-गृह' नाम की एक छोटी सी संस्था भी थी जिसकी देखरेख मैं ही किया करती थी। उसमें गरीब लड़कियाँ कपड़ा काटना और सीना सीखती थीं जिससे उनका सिलाई का खर्च बच जाता था और भविष्य में वे किसी गाँव में जाकर इससे अपनी आजीविका भी चला सकती थीं। राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समिति वर्धा की हिन्दी परीक्षाओं की भी वहाँ व्यवस्था थी। उस संस्था ने भी अब पर्याप्त उन्नति कर ली है।

बाद में घर में रहने पर भी मैंने अध्यापन-कार्य छोड़ा नहीं। जिन लड़कियों को हिन्दी भाषा कठिन लगती थी वे पढ़ने के लिए मेरे पास आ जाती थीं। एक सिख लड़की की मासी दिल्ली से आयी। वह अपनी बहिन से कहने लगी कि "आपकी बेटी की हिन्दी तो बहुत अच्छी है।' उन्होंने मेरा नाम लेकर कहा कि वह उनसे पढ़ती है। उन

के बच्चे भी जो हिन्दी में कमज़ोर थे, छुटिट्यों में उनके साथ यहाँ आये हुए थे। वे सब भी हिन्दी सीखने आने लगे। एक क्लास शुरु हो गई। पढ़ाते समय मुझे खाने-पीने की सुध नहीं रहती थी। बीच-बीच में मेरी माता जी आकर कह जातीं कि 'देर हो गई है तूने खाना नहीं खाया'। मैं उन्हें खुश करने के लिए कह देती, 'अल्पाहार कर लिया था, अतः अभी भूख नहीं लगी'। सम्पन्न लड़कियाँ भी पढ़ने आ जातीं और उनके माता-पिता के आग्रह करने पर भी मैंने कभी पढ़ाने की कोई रकम किसी से नहीं ली। केवल आत्म-सन्तोष के लिए ही मैं यह काम करती थी। समय का सदुपयोग इससे अच्छा और क्या हो सकता है ? एक गरीब लड़की को भी अक्षर-ज्ञान से लेकर तीसरी श्रेणी तक पढ़ा दिया। अब भी कोई पढ़ने आ जाय तो मुझे किसी तरह की आपत्ति नहीं है। यह जो छोटा-छोटा काम मैं कर पायी हूँ इसका श्रेय कन्या महा विद्यालय जालन्धर को ही है। ऐसी मातृ-संस्था को पाकर मैं अपने को भाग्यशालिनी मानती हूँ और सभी के प्रति कृतज्ञता मानती हुई उन्हें नतमस्तक होकर वंदन करती हूँ।

—×—

: 8 :

सेवा-साधक पति की सेवा-साधिका पत्नी

श्रीमती सत्यवती

आप ने 1924 में कन्या महाविद्यालय से स्नातिका की उपाधि प्राप्त की। वर्ष डेढ़ वर्ष तक संस्था में, दक्षिणा-रूप, अध्यापन-कार्य करने के बाद 1925 में, आप का विवाह लोक-सेवक मंडल के सदस्य ला० अचित राम जी के साथ हो गया। ला० अचित राम ने गांधी जी के आह्वान पर अपनी मैडीकल कालिज की पढ़ाई छोड़ी थी। ला० लाजपतराए ने लोक-सेवक-मंडल की स्थापना की तो ला० अचितराम मंडल के सर्व-प्रथम दो तीन सदस्यों में थे। इस विवाह-सम्बन्ध के सम्पन्न होने में भी आचार्या कुमारी लज्जावती और लाला लाजपतराए का हाथ था।

अपने विवाहित जीवन में आप को विद्यालय में प्राप्त की गई देश-भक्ति और सेवा की भावनाओं को सार्थक करने का पूरा अवसर मिला। लाला अचित राम देश-भक्ति के रंग में पूरे रंगे, आध्यात्मिक वृत्ति के, एक आदर्शवादी युवक थे, जिनके जीवन का अन्दाज़ फ़कीराना था। कांग्रस-आन्दोलन के सेवा-क्षेत्र के उनके विशाल परिचय के कारण घर में मेहमानों की भीड़ रहती थी। सर्दियों के मौसम के दस बिस्तर मेहमानों के लिए तैयार रखे रहते थे। यदि मेहमानों की संख्या दस से भी बढ़ जाए तो घर के लोग कम्बलों आदि में गुज़ारा करके अपने बिस्तर भी मेहमानों को दे देते थे। आप, आप की दोनों लड़कियां और लड़का कृष्ण कान्त, मेहमानों की सेवा-शुश्रूषा में लगते थे।

यद्यपि वह सस्ता ज़माना था तो भी मंडल से मिलने वाली निर्वाह-वृत्ति के इलावा घर की ज़मीन से आने वाला अनाज भी घर के इस खर्च में लग जाता था। कई दफा घर में सामान और पैसा भी नहीं होता था। मेहमानों के आने पर लाला अचित राम आप से कह देते थे—"श्रीमती जी, इतने मेहमान हैं। अब इन्हें दाल-रोटी तो देना ही है।" आगे का सारा प्रबन्ध आपका और आपके परिवार का होता था। कई दफा इधर-उधर से मांग कर भी लाना पड़ता था। परन्तु अपनी विद्यालय की शिक्षा-दीक्षा और

अपनी स्वाभाविक वृत्ति के कारण आपने पूरी तन्मयता से अपने सुगृहिणी के कर्त्तव्यों को निभाया।

लाला अचित राम जी की शिक्षा-दीक्षा, उस ज़माने के अनुरूप, उर्दू फार्सी की थी, परन्तु अपनी आध्यात्मिक रुचि के कारण उन्हें सन्तों की हिन्दी पुस्तकों, राम-चरित-मानस आदि सुनने का भी शौक था। किसी कठिन पद को सुनकर वे आप से कहते थे—"श्रीमती जी, अब आप इसके अर्थ तो समझाएं"। और अपनी हिन्दी संस्कृत की शिक्षा के आधार पर आप अर्थ समझाती थीं। पति-पत्नी दोनों को संध्या-प्रार्थना और सत्संग में रुचि थी। आपकी शिक्षा-दीक्षा विद्यालय के आर्य-समाजी वातावरण में हुई थी, जबकि आप के श्वसुर पुराने सनातनी विचार के पूजा-पाठ करने वाले बज़ुर्ग थे। लाला अचित राम प्रगति-शील और समाज-क्रांति के विचार रखते थे। कभी वे घर में कोई उग्र समाज-क्रांति का कृत्य करने का प्रस्ताव करते थे तो आप अपने पितृ-तुल्य श्वसुर की भावनाओं को ध्यान में रखकर उसमें समुचित परिवर्तन कर लेती थीं। इस प्रकार आपने घर के वातावरण को माधुर्य-पूर्ण बनाए रखा।

देश के विभाजन के बाद जब आपका परिवार लाहौर से दिल्ली आया तो आप का घर ही लोक-सेवक-मंडल का कार्यालय था। लाला अचित राम पाकिस्तान के विस्थापित लोगों को वहां से निकालने और भारत में बसाने के काम में लगे थे। इस काम के कारण आप के घर में आने जाने वालों और मेहमानों के रूप में रहने वालों की संख्या का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। आप का घर मानो एक धर्म-शाला ही बन गया। परन्तु लाहौर के अपने मेहमां-नवाज़ी के अपने अनुभव के आधार पर आपने अपने इस नए भार को भी खिले माथे वहन किया।

लाला अचित राम के विशाल परिचय-क्षेत्र और हमदर्दी की भावना के कारण कभी-कभी कोई सामान्य बीमार ग्रामीण जन अपने इलाज के लिए भी दिल्ली आ जाता और आप के घर पर टिकता। कभी-कभी कुछ रुपये पैसे से भी उस की मदद करनी होती थी। अपने सेवा-समर्पित पति की इस सेवा-साधना का काफी बोझ आप पर पड़ता ही था, परन्तु आपने उसे अपने जीवन का एक अंग मान लिया था।

लाला अचित राम जी ने बहुत से युवकों को देश-सेवा के कार्य में खींचा। उनकी इस सफलता का एक कारण उनके घर में, उन युवकों को आप से मिलने वाला मातृ-स्नेह भी था।

1961 में लाला जी की असामयिक मृत्यु के बाद भी आप अपने पति के छोड़े

सेवा-कार्यों में योग-दान देती आ रही हैं। ज़िला अमृतसर में अपने गांव में भी आपने सेवा-कार्य का केन्द्र स्थापित कर रखा है। इस प्रदेश की खादी संस्थाओं, गांधी-स्मारक निधि और सर्वोदय-मंडल आदि संस्थाओं के साथ भी आप का सजीव सम्पर्क है। लोक-सेवक-मंडल के कार्यों के साथ भी आप का सम्पर्क रहता है। इस क्षेत्र के पुराने वयो-वृद्ध गांधी-सेवा-साधकों को आप से बहन का स्नेह और सहयोग मिलता रहता है और इस सेवा-क्षेत्र के युवकों के लिए आप उनपर अपना मातृ-स्नेह बरसाती रहती हैं।

अपनी इस पचहत्तर वर्ष की आयु में भी आप की सेवा-भावना में कोई अन्तर नहीं आया है, भले ही अब शरीर वृद्धावास्था की दुर्बलताओं के कारण इस भावना का साथ नहीं दे सकता।

संस्मरण

1911-12 में, अपनी छः सात वर्ष की आयु में, मैं अपने ननिहाल में रहती थी। मेरी भूआ, देवकी देवी उस समय, एक विधवा के रूप में, कन्या महा विद्यालय के विधवा-आश्रम में रहकर अध्ययन कर रही थीं। एक दिन मेरे पिता जी मेरे ननिहाल आए और मुझे वहां से ले जाकर कन्या महाविद्यालय में प्रविष्ट कर आए। मुझे बाद में मालूम हुआ कि उन्होंने आर्य समाज के प्रसिद्ध नेता महाशय कृष्ण का स्त्री-शिक्षा और कन्या महाविद्यालय के सम्बन्ध में एक व्याख्यान सुना था, जिससे प्रभावित होकर उन्होंने ऐसा करने का निश्चय किया था। अपनी बहन, देवकी देवी, के कारण वे विद्यालय से परिचित तो थे ही। इस प्रकार अपनी भूआ, देवकी देवी, और अपने पिता की कृपा से मैं विद्यालय पहुंची। बड़ा होने पर एक बार मैंने किसी पुस्तक में पढ़ा कि संध्या-प्रार्थना के समय अपने श्रद्धेय-जनों को मन ही मन नमस्कार करना चाहिए तो मैंने अपने ऐसे श्रद्धेय-जनों की जो सूचि बनाई उसमें पहला नाम माता-पिता का और दूसरा भूआ देवकी देवी का था। तीसरा नाम कन्या महाविद्यालय के संस्थापक चाचा देव राज जी का था। उनके बाद संस्था के दो अध्यापकों, भक्त रैमल दास और पं० रला राम के नाम थे।

भक्त रैमल दास के जीवन का हम लड़कियों पर बहुत प्रभाव पड़ता था। वे हमें धर्म-शिक्षा, भूगोल और इतिहास पढ़ाते थे। अपने प्रभाव-शाली अध्यापन के साथ-साथ उनका सादा और तपस्यामय जीवन बहुत प्रभावी था। उस ज़माने में न तो खादी की धोतियां थीं और न बड़े अर्ज़ का खादी का कपड़ा-भक्त जी छोटे अर्ज़ के खद्दर से, बीच में सी कर बनाई, मोटी धोती पहन कर नंगे पांव शहर से पढ़ाने आते थे। वे गांधी जी के खादी आन्दोलन से पहले से खादी पहनते थे। गांधी जी के आन्दोलन में जब खादी का प्रचार हुआ तो भक्त जी कहा करते थे,

"जब मैं खद्दर पहनने के लिए कहता था तब तो तुमने नहीं माना था"।

गांधी जी का आन्दोलन आरम्भ होने पर तो हम लड़कियां भी उसी प्रकार बीच में सीकर मोटे खद्दर की धोतियां पहन कर नंगे पांव जलसे जलूसों में जाती थीं।

लोक-मान्य तिलक की मृत्यु के बाद जब गांधी जी ने तिलक-स्वराज्य फंड के लिए अपील की तो भक्त रैमलदास ने एक मास का अपना पूरा वेतन इस फंड में दे दिया। उस बात का हम सब पर बहुत प्रभाव पड़ा।

चाचा जी तो हमारे पिता ही के समान थे। जब कोई नई लड़की संस्था में प्रविष्ट होती तो चाचा जी उससे मिलते थे और प्यार से बातें करते थे। कभी-कभी किसी लड़की से वे उसकी उंगली से अपने गंजे सिर पर उसका नाम लिखवाते। ऐसे प्यार के चोंचलों से वे हमारे साथ खेलते थे।

चाचा बद्री दास जी का संस्था में बहुत रौब था। उनके संस्था में निरीक्षण के लिए आने की तैयारी में सब तरफ खूब सफाई की जाती थी। वे हमरी अलमारियों के कोनों तक को देखते थे, हमारे नाखुनों की सफाई भी देखते थे।

आचार्या कुमारी लज्जावती हम से दैनिक डायरी लिखवाती थीं।

1924 में हम पाँच लड़कियों ने स्नातिका की उपाधि प्राप्त की। उनमें शीला दीदी भी थीं, जिन्होंने बाद में सरदार भक्त सिंह की क्रांति-कारी मंडली में भी काम किया। उनको कविता लिखने का भी शौक था। उनके जीवन का मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा।

मेरा विवाह मेरे गाँव में सम्पन्न हुआ था। चाचा जी भी उस विवाह में शामिल हुए थे। उन्होंने एक मेज़ और कुछ अन्य सामान भी उपहार के रूप में दिया था।

मेरे विवाह के बाद जब चाचा जी लाहौर आते तो अक्सर मुझे मिलने भी आते थे और अपने प्यार के चिन्ह-रूप एक दो रुपये भी देकर जाते थे। विवाह के बाद एक बार मैं जालन्धर गई तो चाचा जी ने मुझे अपने घर पर बुलाकर खाना खिलाया।

उस समय विद्यालय में सब ओर देश-भक्ति का वातावरण था। लड़कियों के सामने एक आदर्शवाद था। उसके लिए हमें अपने अध्यापक-अध्यापिकाओं से प्रेरणा मिलती थी। ऐसे वातावरण में बरसों तक रहकर जब लड़किया बाहिर जाती थीं तो उन्हें यह ख्याल रहता था कि उनके किसी कार्य से उनकी संस्था का नाम नीचा न हो। जहाँ तक मैं जानती हूँ संस्था से निकली लड़कियों ने कभी अपनी मातृ-संस्था का नाम बदनाम नहीं किया।

: 9 :

आजीवन सेवा-रत

कुमारी शकुन्तला देवी

आज के कन्या महा विद्यालय में, ला० देव राज जी के समय से, सेवा-कार्य करती आ रही, कुमारी शकुन्तला देवी, आज भी लगभग छः सौ छात्राओं के छात्रावास में, भोजनालय के प्रबन्ध-कार्य में पूरी लगन के साथ लगी हैं। इस लेखक के संस्था में आने के समय, 1943-44 में, विद्यालय और छात्रावास में छात्राएं कम थीं। इमारतें और सामान भी आज से कम थे। तब एक दो अन्य, संस्था की पुरानी छात्राओं के साथ, शकुन्तला जी, न केवल छात्रावास का, बल्कि बाहिर का भी पूरा ध्यान रखती थीं। एक बार विद्यालय के कुछ कांच और चीनी के वर्तन नहीं मिल रहे थे। शकुन्तला जी कह रही थीं कि आपने विद्यालय-भवन के एक विशेष कमरे की एक विशेष अलमारी में वे बर्तन देखे थे, परन्तु आपकी बताई उस अलमारी में बर्तन नहीं थे। इस लेखक ने उस से कुछ दिन पहले, पास के किसी वैसे ही कमरे की एक वैसी ही अलमारी में. अचानक कुछ शीशे के बर्तन देखे थे। उसके संकेत पर दूसरे कुछ कमरों की अलमारियां देखी गईं तो वैसे ही एक दूसरे कमरे की, वैसी ही एक अलमारी में, वे सब बर्तन मिल गए। विद्यालय के मामूली सामान की देख-रेख के बारे में भी, जो देख-रेख आप के ज़िम्मे नहीं थी, आप की ऐसी जागरूकता थी। बाद में भी इस लेखक ने बहुत दफा देखा कि संस्था की किसी मामूली चीज़ के नुक्सान को देखकर आप बेचैन हो जाती थीं। भोजनालय में काम करने वाले लोग भी, आप की लगन के कारण, अपने कामों में खूब सावधान रहते हैं।

आप 1920 के बाद के, गांधी जी के आन्दोलन के दिनों में संस्था में पढ़ने के लिए आईं। आप के पिता कस्बा राहों के एक सम्पन्न परिवार से थे और सुदूर मध्य-प्रदेश में इंजिनीयर थे। वे आर्य समाज के अनन्य भक्त थे। उन्होंने अपनी प्रथम संतान आप को संस्था में पढ़ने भेजा। आप बताती हैं कि उन दिनों संस्था की बहनें, देवकी देवी जी तथा नारायण देवी जी, आप के पिता के कार्य-स्थान पर संस्था के लिए धन-संग्रह के लिए जाया करती थीं और आप के पिता स्वयं भी दिल खोलकर धन

देते थे और अन्य लोगों से भी दिलाते थे। ट्यूबवैल लगने से पहले तक, काम में आने वाला एक कुआं और रहट, जो बाद में भी बहुत वर्षों तक सुरक्षित रहा, आप के पिता के दान से बना था। आप की माता की आकस्मिक मृत्यु के बाद आप के पिता ने उन की स्मृति में छात्रावास में एक कमरा भी बनवाया।

आप की माता के देहांत पर आप के पिता ने अपनी अन्य दो लड़कियों को भी संस्था में पढ़ने भेज दिया। कुछ ही वर्ष बाद आप के पिता का भी देहांत हो गया। इस से दोनों छोटी बहनों का शिक्षण आदि कार्य भी आप पर आ गया। अपना अध्ययन समाप्त करके, आप अपने पिता के जीवन ही में, संस्था की अवैतनिक सेवा में लग गई थीं। तो भी आप के पिता दूसरी छोटी लड़कियों के शिक्षण-व्यय के साथ ही आप का व्यय भी भेजते रहे। पिता की मृत्यु के पश्चात् आप ने अपने बहन-भाइयों के पालन-पोषण और शिक्षण के साथ, संस्था की सेवा ही को अपना लक्ष्य बना लिया। आप ने अपनी दोनों बहनों के विवाहों को सम्पन्न किया और उन को अपनी संतान की तरह समझा।

संस्था की अन्य बहुत सी छात्राओं के समान आप को भी यह गिला रहता है कि समाज ने चाचा देवराज जी को भुला दिया है और उनकी स्मृति को उतना सन्मान नहीं दिया जितना देना चाहिए था। आप अक्सर अपने बचपन के विद्यालय के तथा चाचा जी के संस्मरण सुना कर अपने को धन्य मानती हैं।

संस्मरण

कई दफा चाचा जी हम को साथ लेकर पास के गांव 'रेरू' में जाते थे। गांव के ज़मींदर हम को देखकर, आदर-पूर्वक, मौसम के अनुसार गन्ने, गाजर मूली आदि लाते थे। कभी-कभी वे हम को गड्डे के साथ आदमपुर, होशियारपुर और हरियाना भुंगा भी ले जाते थे। सामान गड्डे पर होता था और लड़कियां कभी साथ-साथ चलती और कभी गड्डे पर बैठ जाती थीं।

जब मेरे पिता जी की आकस्मिक मृत्यु हो गई तो मैं बहुत उदास थी। तब मैं अध्यापन-कार्य कर रही थी। गर्मियों में चाचा जी छात्रावास की कुछ लड़कियों को साथ लेकर, बैजनाथ जाने का कार्य-क्रम बना रहे थे। वहां उन के और उनके परिवार के चाए के बाग थे। मुझे उदास और खिन्न देखकर उन्होंने मुझे भी साथ चलने का आग्रह किया, ताकि मेरा मन दूसरी तरफ पड़े।

जब मैं संस्था में अध्यापन-कार्य तथा छात्रावास का कुछ अन्य कार्य करने लगी तो चाचा जी मुझे साथ लेकर संस्था में घूमते थे और बताते जाते थे कि मुझे क्या काम कैसे करना है।

एक बार चाचा जी हमें लेकर अजमेर में शताब्दी समारोह में गए। वहां से वे

हमें महाराणा प्रताप की प्रसिद्ध ऐतिहासिक युद्ध-स्थली 'हल्दी घाटी' की यात्रा के लिए ले गए। भारत के वीरों के रक्त से पवित्र हुई उस घाटी की कुछ मिट्टी को भी हम साथ लाए। कुछ देर बाद बनी, संस्था की 'कृष्णा-भवन' नाम की इमारत की नीवों में उस मिट्टी को डाला गया, ताकि छात्राओं को अपने देश के वीरों का स्मरण रहे।

मेरे अध्ययन के दिनों में पिता जी अक्सर, विशेषत: वार्षिक उत्सव पर विद्यालय में आते रहते थे। चाचा जी उनको साथ लेकर विद्यालय दिखाया करते थे और कुछ बातों के बारे में उनकी राए भी लिया करते थे। एक बार चाचा जी ने उन से पूछा कि लड़कियों के भोजन करने बैठने का क्या सिस्टम रहे, जो कि सुविधा-जनक भी हो, और साथ ही पाश्चात्य ढंग का, कुर्सियों मेज़ों का भी न हो। पिता जी की राय के अनुसार भोजनालय में,लड़कियों की सुविधा के अनुसार, ऊंचे लम्बे चबूतरे बनाने का तै पाया, जिनके ऊपर थाली रख कर और नीचे पटरों पर बैठकर लड़कियां भोजन कर सकें।

चाचा जी ने विद्यालय की पत्रिका 'जलविद्-सखा' के सम्पादन का कुछ काम भी मुझे दे दिया था और सिखाया था।

चाचा जी को शौक था कि विद्यालय-भूमि में, स्थान-स्थान पर संस्था के कार्य में लगे त्यागी तपस्वी लोगों के नामों पर कुंजों और मार्गों आदि के नामों के चिन्ह-पट्ट लगवाएं। ऐसे बहुत से पट्ट जगह-जगह लगे थे।

हम को, विद्यालय की पुरानी छात्राओं को, जिन्होंने चाचा जी को देखा है, ऐसा अनुभव होता है कि हमने उनकी स्मृति को उतना आदर और सन्मान नहीं दिया जितना देना चाहिए था।

—×—

: 10 :

स्त्री शिक्षा के लिए समर्पित

प्रिंसिपल कुमारी शिवा दूआ

आर्चाया कुमारी लज्जावती जी की सब से छोटी बहिन, प्रिंसिपल कु० शिवा दूआ, अपनी माता के असामयिक निधन के फलस्वरूप, गोद में खेलने की अपनी आयु ही में, अपनी मातृ-तुल्य बड़ी बहिन के पास रहने के लिए कन्या महाविद्यालय में आईं। आप का बचपन संस्था के वातावरण में, चाचा देव राज के निकट सम्पर्क में, गुज़रा। यद्यपि आप आरम्भिक चन्द श्रेणियों तक ही विद्यालय में पढ़ीं और बाद में, आचार्या जी के लाला लाजपतराय के साथ राष्ट्रीय-क्षेत्र में कार्य करने के लिए लाहौर चले जाने के कारण उनके साथ ही संस्था से चली गईं, तो भी अपने संस्कार-ग्रंहणशील बचपन में आपने संस्था में जो संस्कार ग्रहण किए और बाद में भी चाचा जी के स्नेह-क्षेत्र में रहने के कारण जो प्रेरणाएं प्राप्त कीं, उनके आधार पर आप के जीवन में संस्था के आदर्श, राष्ट्रीयता और देश-भक्ति, बहुत गहरे पैठ गए।

लाहौर के प्रसिद्ध 'सेक्रिड-हार्ट' स्कूल में आपके छटी सातवीं श्रेणी में पढ़ने के दिनों में, लाहौर में लाला लाजपतराय का देहांत हुआ तो उस दिन आप स्कूल नहीं गईं। अगले दिन अनुपस्थिति का कारण पूछे जाने पर आपने स्पष्ट रूप में कारण बता दिया, जिसे उस राज-भक्त संस्था में वैसे पसन्द किया जा सकता था ?

चन्द वर्ष बाद सरदार भक्त सिंह को फांसी दिए जाने पर, आपकी प्रेरणा से, आप के कालिज 'गर्वनमैंट कालिज फार विमैन' की छात्राओं ने लगातार तेरह दिन तक शोक-चिन्ह के रूप में, काले कपड़े पहनने का फैसला किया तो होस्टल की पच्चास साठ लड़कियों के कपड़े रंगवाकर पहुंचाने की ज़िम्मेवारी आप ने निभाई।

1935 में आप के गर्वनमैंट कालिज लाहौर में ऐम० ए० में पढ़ने के समय, लाहौर में 'आल इंडिया स्टूडैंटस कांफ्रैंस' हुई, जिसमें कवि-सम्राट् रवीन्द्र नाथ टैगोर भी शामिल हुए थे, तो आप के कालिज के कुछ अन्य देश-भक्त विद्यार्थियों के साथ आप ने भी उस राष्ट्रीय समारोह में बढ़ चढ़ कर भाग लिया। आप के अंग्रेज़ प्रिंसिपल

मिस्टर गैरट के आपको बुलाकर डराने धमकाने पर भी आप ने ऐसी निडरता और स्थिरता दिखाई कि प्रिंसिपल को अपने कालिज के और किसी छात्र-छात्रा को बुलाने और धमकाने का साहस न हुआ।

'गर्वनमैंट कालिज फार विमैन' में आप के प्राध्यापिका नियुक्त किए जाने के समय, कालिज की अंग्रेज़ प्रिंसिपल के एक हाथ में आप की योग्यता का रीकार्ड था और दूसरे हाथ में कालिज के जीवन की आपकी राष्ट्रीय गति-विधियों का रीकार्ड। परन्तु आपकी योग्यता के आधार पर आप की नियुक्ति हो गई। आप का अध्यापन का विषय इतिहास था, जिसे पढ़ाते हुए छात्र-छात्राओं में राष्ट्रीय भावनाएं जागृत करने के अवसर सुलभ होते हैं। देश के विभाजन के पश्चात् आप को दिल्ली के 'मीरांडा कालिज' में प्राध्यापिका और बाद में लगभग दस वर्ष तक नए स्थापित हुए 'कालिंदी कालिज' में प्रिंसिपल के रूप में कार्य करने का अवसर मिला। छात्राओं में स्वस्थ राष्ट्रीय भावनाएं पैदा करने के लिए, आप ने अपनी इन स्थितियों का, विशेषत: प्रिंसिपल की स्थिति का, पूरा उपयोग किया। 'कालिंदी कालिज' में उस के आरम्भ-काल से, आपने राष्ट्रीय-भावनाएं पैदा करने वाली कई परम्पराएं स्थापित कीं। उदा-हरण के लिए आप ने अपनी संस्था में सर्वोत्तम रूप में राष्ट्र-गान गाने वाली छात्रा को पुरस्कृत करने की परम्परा चलाई।

'मीरांडा कलिज' में आपने समाज-सेवा के कार्य उठाने की दृष्टि से, 'आलोक' नाम से छात्राओं की एक सेवा-परिषद् संगठित की। 'जागृति' नाम से एक ऐसी ही सेवा-परिषद् आपने अपने 'कालिन्दी कालिज' में स्थापित की। इस परिषद् की सदस्य छात्राएं कालिज के आस-पास की निर्धन बस्तियों में स्त्रियों और बच्चों को साक्षर बनाने और उनमें दवा-दारू बांटने का काम करती थीं।

1978 से अपने सेवा-कार्य से मुक्त हो कर आप दिल्ली के समाज-सेवा के कार्यों में यथा-शक्ति भाग लेती हैं। कन्या महाविद्यालय जालन्धर तथा लाला देवराज जी के नाम आज भी आप के लिए आदर तथा प्रेरणा के स्रोत हैं। आप कन्या महाविद्यालय की उन चन्द छात्राओं में से हैं जिन्होंने संस्था के संस्थापक ला० देवराज जी के, कन्याओं के कुमारी-जीवन गुज़ारते हुए, स्त्री-शक्ति-जागरण के आन्दोलन को बल-प्रदान करने के आदर्श को अपनाया।

संस्मरण

मैं कन्या महाविद्यालय में बचपन का बहुत थोड़ा समय, आरम्भिक शिक्षा की केवल चंद श्रेणियां पढ़ी, परन्तु संस्था के 'कैम्पस' में, चाचा देवराज जी के निकट सम्पर्क में रहने के कारण, और आगे की पढ़ाई लाहौर में पूरी करने के बावजूद चाचा जी के परिवार के एक सदस्य के समान उनके सम्पर्क में आते रहने के कारण, मुझ पर उनके जीवन का और उनके जीवन के आदर्शों का गहरा प्रभाव पड़ा। जीवन के उस

संस्कार ग्रहण-शील बाल-काल में चाचा जी के पितृ-स्नेह की, उनकी देश-भक्ति की कविताओं की और संस्था के वातावरण की जो छाप मुझ पर पड़ी, वह अमिट साबित हुई और उसी की बुनियाद पर मेरा आगे का जीवन विकसित हुआ। मेरे जीवन के कार्य में, अध्यापन-क्षेत्र में, विद्यालय के आदर्श सदा मेरे सामने रहे। विद्यालय में बचपन के बहुत थोड़े वर्ष रह कर और पढ़ कर भी मैं अपने आप को विद्यालय-माता की एक बेटी कह सकती हूं।

अपने बचपन में चाचा जी से जो पितृ-स्नेह मिला उसकी मधुर स्मृति कभी मिट नहीं सकती। मैं अपनी मातृ-तुल्य बड़ी बहन, आचार्या कु० लज्जावती के पास रहती थी। हमारा निवास-स्थान विद्यालय के प्रवेश द्वार के समीप ही था। जब चाचा जी विद्यालय में आते तो प्रवेश करते ही पहली आवाज, विद्यालय के माली 'फखरू' को देते और दूसरी 'शिवो' की आवाज मुझे देते। आवाज सुनते ही मैं पहुंच जाती थी। मैं जानती थी कि वे मेरे लिए कोई खाने की चीज़ ज़रूर लाए होंगे। उनके बैठते ही मैं पहुंच कर उनकी पीठ पर चढ़ जाती और 'काटो' नाम का पंजाबी खेल आरम्भ हो जाता। वे कहते, "मेरे कोठे कौन चढ़ी ?" मैं लम्बी आवाज में उत्तर देती, "का आ...आ...टो।" वे कहते, "काटों दा मैं की चुराया ?" मैं वैसी ही लम्बी आवाज में उत्तर देती, "पै...ऐ...ऐ...सा।" वे कहते, "पैसे दा तू लैणा ?" उनकी लाई हुई चीज़ को बूझ कर मैं वैसी ही आवाज में उस चीज का नाम ले देती। तब वे मुझे अपनी लाई हुई चीज़ खाने को दे देते।

अपने लाहौर कालिज में पढ़ने के दिनों की उनकी एक स्मृति मेरे जीवन की एक बहुमूल्य निधि है। गर्मियों की छुट्टियों के लिए हम डलहौज़ी में थे। चाचा जी भी गर्मियां गुज़ारने वहीं आए हुए थे। वे रहते तो हमारे मकान से काफी दूर, अलग से थे परन्तु अक्सर हमारे यहां आते रहते थे। उन दिनों वे बच्चों के लिए लिखी अपनी अनेक पुस्तकों में से अपनी सुन्दर पुस्तक 'सन्त-वाणी' लिख रहे थे। उस पुस्तक की अन्तिम पांडु-लिपि भी उन्होंने मुझ से तैयार करवाई थी। वहीं एक दिन अचानक हमें तार मिला कि मेरे पिता का देहान्त हो गया था। भाई बहनों में मैं सबसे छोटी थी, इसलिए मुझे घर पर ही छोड़ कर सब लोग पेशावर चले गए। इस आकस्मिक आघात का मुझ पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि न मैं रोती थी, न खाती-पीती थी और न बात करती थी। हमारे अनेक प्रिय-जनों ने मुझे बहुत समझाया, दिलासा दिया, परन्तु मुझ पर कोई प्रभाव न पड़ा। सब चिंतित हो गए। बात चाचा जी तक पहुंची। वे आए और उन्होंने वैसे ही पहले की तरह, 'शिवो' कह कर मुझे पुकारा। मैं गई तो उन्होंने प्यार से मुझे अपनी गोद में बिठा लिया और मेरे सिर पर अपना स्नेह-सिक्त हाथ फेरना शुरू किया। पितृ-स्नेह का सम्पर्क पाकर मैं फूट-फूट कर रोने लगी। जब कुछ लोग मुझे चुप कराने लगे तो चाचा जी ने संकेत से उन्हें मना कर दिया। काफी देर तक मैं खूब रोती रही और चाचा जी मेरे सिर पर हाथ फेरते रहे। जब मेरा रोना कुछ हल्का हुआ तो उन्होंने प्यार से कहा, "बेटा, शिवो, मुझे चाए नहीं पिलाओगी ?"

मैं उठकर गई और चाए बना कर लाई। इस प्रकार उन्होंने मेरे हृदय की उस स्तब्धता को दूर किया।

अपने बचपन के उन चंद वर्षों में मैंने विद्यालय के वातावरण में जो संस्कार प्राप्त किए वे मेरे जीवन की आधार-शिला बन गए। लाहौर के 'गवर्नमेंट कालिज फार विमैन' में पढ़ते हुए मेरी वे राष्ट्रीय भावनाएं कायम रहीं जो मुझे बचपन में विद्यालय में मिली थीं। 1930 में जब, नव-युवकों के हृदय सम्राट सरदार भगत सिंह और उनके साथियों को फांसी दी गई तो कालिज की हिन्दू मुसलमान लड़कियों ने मिलकर, शोक-चिन्ह के रूप में काले कपड़े पहने। शिक्षा पूरी करके अपने उसी कालिज, 'गवर्नमैंट काकिज फार विमैन' में प्राध्यापिका का कार्य करते हुए भी वे राष्ट्रीय भावनाएं मेरे सामने रहीं।

देश के विभाजन के फल-स्वरूप दिल्ली आने पर और कुछ देर तक, नए स्थापित हुए 'कैम्प कालिज में अध्यापन कार्य करने के बाद, मैं 'मीरांडा कालिज' में प्राध्यापिका नियुक्त हुई तो उसके कुछ ही समय पश्चात् देश का प्रथम गण-तन्त्र दिवस आ गया। देश का नया विधान लागू होने के उस दिन मैंने, नए आरम्भ हो रहे युग के स्वागत में, आधी रात के समय, कालिज में राष्ट्र-ध्वज लहराने की योजना बनाई। उस समारोह के एक मुख्य अंग के रूप में मैंने अपने बचपन में सीखे गए, चाचा जी के रचे, एक राष्ट्रीय-गान फूल चढ़ाऊं, दीप जलाऊं, भारत-जननी-पूजन को, के साथ लड़कियों का एक नृत्य भी तैयार करवाया, जिसे देख कर, हमारी मुख्य अतिथि श्रीमती सुचेता कृपलानी बहुत प्रभावित हुईं।

सरोजिनी नायडू ने जो उत्तर-प्रदेश की गर्वनर नियुक्त हुई थीं, मुझे अपना प्राइवेट सैक्रेट्री बनने के लिए निमन्त्रण दिया तो विद्यालय से प्राप्त किए गए अपने स्त्री-शक्ति-जागरण के आदर्श के आधार पर मैंने उत्तर दिया, "क्या आप चाहेंगी कि मैं देश-निर्माण के इस अध्यापन-कार्य को छोड़ कर एक राज-नैतिक पद को अपना लूं?" 1952 में ऐसा हीं निमन्त्रण मुझे श्री के० एम० मुन्शी ने दिया। तब भी मैंने ऐसा ही उत्तर दिया।

1967 में नए स्थापित हुए 'कालिन्दी कालिज' की प्रिंसीपल नियुक्त होने पर, जब नए कालिज का 'माटो' निश्चित करने का प्रश्न आया तो बहुत से प्रस्ताव हमारे सामने आए। परन्तु उन में से कोई भी मुझे कन्या महाविद्यालय के प्रतिदिन, प्रार्थना के समय, दोहराए जाने वाले शब्दों 'विद्या-लाभ, कर्त्तव्य-पालन और सदाचार" से

अधिक अच्छा न लगा। इन्हीं शब्दों के रूपान्तर 'ज्ञानं शीलं, धर्मश्चैव भूषणम्' को कालिज का माटो निश्चित किया गया।

इस नए कालिज के संचालन में भी मेरे सामने वही राष्ट्रीय आदर्श रहे जो मैंने बचपन में कन्या महा विद्यालय में हृदगम किये थे और इस कालिज के विकास में मुझे जो सफलता मिली उसका बहुत कुछ श्रेय मेरी उन्हीं भावनाओं को है जो मेरे बचपन में कन्या महाविद्यालय के वातावरण और चाचा जी के जीवन-सम्पर्क से मेरे अन्दर जागृत हुई थीं।

—★—

: 11 :

दिल्ली में समाज-सेवा-क्षेत्र की आत्मा

पद्म-भूषण कु० सुरेन्द्र सैनी

इस लेखक ने दिल्ली के समाज-सेवा-क्षेत्र में काम करने वाली जिस बहन से भी बात की उसने कु० सुरेन्द्र सैनी का नाम अवश्य लिया। यह सेवा-साधिका महिला 1938-39 में, अपनी दस ग्यारह वर्ष की आयु में, कन्या महाविद्यालय में प्रविष्ट हुई और आपने 1944 में इस संस्था से मैट्रिक की परीक्षा पास की। लेखक ने संस्था की उन्हीं पुरानी छात्राओं के सेवा-कार्यों तथा संस्था-सम्बन्धी संस्मरणों को पुस्तक में स्थान देने का तै किया था, जो संस्था के संस्थापक, ला० देवराज जी के जीवन-काल में संस्था में रहीं और उन के जीवन और कार्य से प्रभावित हुईं। कु० सुरेन्द्र सैनी लाला जी की मृत्यु के कुछ वर्ष बाद संस्था में आईं। परन्तु आप की सेवा-साधना की तेजस्विता को देखकर लेखक ने आप के सम्बन्ध में अपवाद किया है। आपने जीवन-भर सेवा-साधना में लगे रहने की दृष्टि से, लाला जी के प्रिय आदर्श, कौमार्य का जीवन अपनाया है। आप की सेवा-साधना देश की स्वतन्त्रता के बाद आरम्भ हुई। इस साधना का विकास उस युग में हुआ, जिस में इस क्षेत्र के ऊंचे मूल्यों को संभालने की बहुत ज़रूरत है।

विद्यालय के अपने बचपन के पांच छः वर्षों में आपने संस्था के वातावरण से सादगी, सेवा और आदर्श-वादिता के जो प्रभाव ग्रहण किए, वे 1950 से समाज-सेवा-क्षेत्र में विशाल साकार रूप धारण करने लगे। देश के विभाजन के समय की उखाड़-पछाड़ ने मानव-सेवा के बहुत से क्षेत्र खोल दिए थे। जिन हृदयों में सेवा के बीज सुरक्षित थे, उन को उन बीजों को पुष्पित और पल्लवित करने का अवसर मिल गया। कु० सुरेन्द्र सैनी को ऊंची आध्यात्मिक भावनाएं अपने भक्त-हृदय पिता से मिली थीं और कन्या महाविद्यालय के छात्रावास के पांच छः वर्षों में उन भावनाओं में दृढ़ता आ गई थी।

आप के पिता ज़िला होशियार पुर के एक गांव में पैदा हुए और शिक्षा समाप्त

करके ज़िला मिंटगुमरी में, रेनाला नाम के स्थान पर इंजनीयर के रूप में कार्य करते रहे। वहां के अपने सेवा-काल में उन्होंने अपनी नौकरी के काम के इलावा, उस नए विकसित हो रहे स्थान पर, प्रायः सभी धर्मों के पूजा-स्थान, आर्य-समाज मंदिर, देवालय, गुरुद्वारा और मस्जिद बनाने में प्रमुख रूप में प्रयास किया। आप की माता को, अपनी प्रथम संतान, आप को ऊंची शिक्षा देने की बहुत इच्छा थी। परन्तु आप के मैट्रिक परीक्षा पास करने के वर्ष, 1944 में आप की माता का देहांत हो गया। इस से छः सात भाई बहनों की देख-भाल का बोझ आप पर पड़ गया और आप की कालिज की पढ़ाई बंद हो गई। देश के विभाजन के बाद अपने ज़िला के शहर, होशियारपुर में रहते हुए, अपने परिवार की सेवा के साथ-साथ अपनी कालिज की शिक्षा पूरी की और 'पोलिटिकल साइंस' में एम० ए० पास किया तथा 'जर्नलिजम' का डिपलोमा भी लिया।

विभाजन के बाद आप के पिता ने दिल्ली में अपना स्वतन्त्र कार्य आरम्भ किया और कुछ देर के बाद आप भी, अपने भाई बहिनों सहित, दिल्ली आ गईं। आप के पिता आपको नौकरी नहीं करने देना चाहते थे। आपके पिता ने और परिवार ने, उस समय सरकार की ओर से मिल रही कोई आर्थिक मदद न लेकर अपनी मेहनत के बल पर अपना कारोबार स्थापित कर लिया था और आप को नौकरी आदि कार्य करने की ज़रूरत भी नहीं थी। परन्तु हृदय में समाज-सेवा के भाव तो थे ही। 1950 में अपने पिता की अनुमति से, आप ने, दरिया गंज के अपने निवास-स्थान के समीपस्थ, एक शरणार्थी शिविर में, प्रतिदिन, एक घंटे के लिए, स्त्रियों और बच्चों को पढ़ाने का सेवा-कार्य आरम्भ किया। सेवा का समय बढ़ता गया। आपके इस सेवा-कार्य के बढ़ने के साथ आपके पिता आप के इस कार्य में आर्थिक सहायता भी करने लगे। जैसे-जैसे आप के सेवा-कार्य का तेज बढ़ा, वैसे-वैसे दिल्ली के नेता आप के कार्य को देखने आने लगे। पं० जवाहर लाल नेहरू की प्रेरणा से जब भारत-सेवक-समाज की स्थापना हुई तो आप उसकी दिल्ली शाखा की कार्यालय-मन्त्री नियुक्त हुईं। आप की लगन और योग्यता से आप का सेवा-क्षेत्र बढ़ने लगा। आप के इस सेवा-कार्य के लिए आपको 1969 में पद्म-भूषण की उपाधि मिली। इस समय दिल्ली का शायद ही कोई समाज-कल्याण-क्षेत्र होगा, जिसमें आपका योग-दान न हो। किसी संस्था में आप अध्यक्ष हैं, किसी में मंत्री और किसी में सदस्य। अपनी इस समाज-सेवा के आधार पर आपको अमरीका, कैनेडा, इंगलैंड, इटली, मंगोलिया और रूस आदि विदेशों में जाने का भी अवसर मिला है।

अपनी इस लगभग पच्चास वर्ष की आयु में आप अपने विशाल सेवा-क्षेत्र के कार्य में तन्मय रहती हैं। अभी दो वर्ष पहले, आप के भक्त-हृदय पिता, अपनी सेवा-भावी संतान की सेवा-साधना से सन्तुष्ट, अपनी अस्सी से ऊपर आयु में दिवंगत हुए हैं। आप के जीवन का आधार आध्यात्मिक है। इसलिए आप अपने कार्य से सन्तुष्ट हैं।

आप यह अनुभव जरूर करती हैं कि समाज-सेवा के क्षेत्र में पहले सा आदर्श-वाद नहीं रहा है, परन्तु आप के हृदय में कोई निराशा की भावना नहीं है। दीन-दुखियों के किसी दुःख और संकट में कुछ सहायता करने का हर अवसर आप को आनन्द और प्रेरणा देता है। इस लेखक के साथ, अपने जीवन-कार्य के बारे में बातें करने के दौरान भी, आप टैलीफोन पर किसी से कह रही थीं कि किसी विशेष बीमार के लिए किन्हीं विशेष टीकों का प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

विद्यालय की इस छात्रा की सेवा-साधना को देखकर इस बात का सन्तोष मिलता है कि संस्था के संस्थापक, लाला देवराज जी, के जीवन के बाद संस्था में आने वाली पीढ़ी भी, उनके द्वारा प्रज्वलित की गई, स्त्री-शक्ति-जागरण की अग्नि में अपनी आहुति डाल रही है।

संस्मरण

जब मैं संस्था में प्रविष्ट होने आई तब अपने साथ, अपने पहले के जीवन के मिल के तथा कुछ रेशमी कपड़े भी लाई थी। परन्तु संस्था में मेरे प्रविष्ट होते ही मेरे लिए शुद्ध खादी के नए कपड़े सिला दिए गए और मेरे पहले कपड़े घर लौटा दिए गए। संस्था में प्रवेश पाने वाली छात्राओं का यज्ञोपवीत संकार होता था। इस दीक्षा-संस्कार के बाद हमारा नया जीवन आरम्भ हुआ। प्रातः बहुत जल्दी उठकर हवन और सन्ध्या-प्रार्थना में बैठना होता था। पहले पहले यह कठिन मालूम होता था परन्तु बाद में यह कार्य स्वाभाविक हो गया।

हमें अपने सामान्य काम स्वयं करने की शिक्षा मिलती थी। हम अपने कपड़े स्वयं धोती थी और अपने कमरों की सफाई स्वयं करती थीं। सफाई के दृष्टिकोण से हमारे कमरों का, हमारी अलमारियों का, निरीक्षण होला था। छात्रावास की व्यवस्थापिका श्रीमती नारायण देवी का व्यवहार माता के समान था। वे हमें अपनी चारपाई पर बिठा कर स्नेह-पूर्वक हम से बातें करती थीं। घर से हमारे लिए जो मिठाई आदि चीज़ें आती उसे वे हमें अपने पास नहीं रखने देती थीं बल्कि सब की चीज़ें एक विशेष अलमारी में, ताले में रखी जाती थीं और निश्चित समय पर हमें दी जाती थीं। एक बार हमने पूछा कि ऐसा क्यों किया जाता है तो हमें बताया गया, "तुम्हारे घर वाले तुम्हारे लिए शौक से ये चीजें भेजते हैं परन्तु तुम लापरवाही से उन्हें इस्तेमाल करती हो और जल्दी खत्म कर देती हो।"

खाना परोसने का काम तो लड़कियां स्वयं करती ही थीं, खाना तैयार करने में भी उनका सहयोग रहता था। इस से हमें जीवन का बहुमूल्य शिक्षण मिलता था। हमें अपने खाने के बर्तन भी स्वयं साफ करने होते थे। उस समय कभी-कभी हमें ये काम अखरते भी थे। परन्तु मैं देखती हूं कि वे कार्य सरल और स्वावलम्बी जीवन

की आधार-शिला थे। जीवन में प्रवेश करने पर मुझे उस व्यावहारिक शिक्षण की कीमत मालूम हुई।

मुझे खेलने का बहुत शौक था और विद्यालय में इस शौक की पूर्ति के लिए पूरा प्रबन्ध और वातावरण था।

हमारे संस्कृत-अध्यापक, पं० चेत राम बहुत परिश्रमी और साथ ही बहुत शरीफ भी थे। उनकी शराफत और परिश्रम-शीलता का छात्राओं पर बहुत प्रभाव पड़ता था।

संस्था के वातावरण में राष्ट्रीय भावनाएं ओत-प्रोत थीं। राष्ट्रीय ध्वजा के आरोहण तथा उस समय के राष्ट्र-गान 'वन्दे मातरम्' से हमें बहुत प्रेरणा मिलती थी।

अपने इन्हीं मधुर अनुभवों के आधार पर मैंने बाद में अपनी छोटी बहन को भी विद्यालय में शिक्षा के लिए भेजा।

मैं समझती हूं कि अपने जीवन में मैं जो थोड़ा-बहुत सेवा-कार्य कर पा हूं उसकी प्रेरणा कुछ तो पिता जी से मिली और कुछ अपनी मातृ-संस्था कन्या महा-विद्यालय से। आज के युग में ऐसी प्रेरणाओं की बहुत ज़रूरत है।

—×—

यह परिशिष्ट

उत्तर-पश्चिमी भारत की ऐतिहासिक संस्था, कन्या महा विद्यालय का इतिहास एक सामान्य स्कूल या कालिज का इतिहास नहीं है। यह संस्था इस प्रदेश में स्वामी दयानन्द की जलाई जीवन-ज्योति का एक ज्वलंत रूप और स्त्री-शक्ति-जागरण का एक मूर्तिमन्त आन्दोलन रही है। उधर गुरुकुल शिक्षा का विचार एक क्रांति-कारी विचार था और इधर भारतीय स्त्री को जाग्रत और प्रबुद्ध करने का विचार समाज-क्रांति का एक विचार था। इन दोनों क्रांति-कारी विचारों को आकार देने के लिए बहुत तपस्या हुई। विद्यालय-सम्बन्धी इस पुस्तक में स्त्री-जागृति-क्षेत्र की तपस्या का वर्णन है।

इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य संस्था की छात्राओं के हृदयों में स्त्री-शक्ति की चेतना जागृत करना, अपनी संस्था के प्रति गौरव का भाव पैदा करना और संस्था में कार्य-रत रह चुके त्यागी तपस्वी स्त्री-पुरुषों, विशेषत: स्त्रियों, के गुणों के चिंतन और मनन की भावना पैदा करना है। यह पुस्तक इतिहास की पुस्तक कम और नैतिक शिक्षण की पुस्तक अधिक है।

लेखक की इस दृष्टि के आधार पर पुस्तक में बहुत-सी बातें नहीं आ सकी हैं जो एक सामान्य इतिहास-पुस्तक में आनी चाहिएं।

कुछ व्यक्तियों के वर्णन इसलिए भी नहीं आ सके या संक्षिप्त रूप में आए हैं क्योंकि उनके बारे में सामग्री नहीं मिली। पुस्तक के लिए काफी सामग्री आचार्या जी से मिली है। 1924 से लेकर 1935 तक उनके संस्था से बाहिर रहने के कारण उन वर्षों में कार्य करने वालों के बारे में स्वभावत: वे अधिक नहीं बता सकी हैं। संस्था की पुरानी छात्राओं को अपने संस्मरण भेजने के लिए लिखा गया, परन्तु लिखने का स्वभाव न होने से या संकोच-वंश अधिक सामग्री नहीं आ सकी। हां, जिन पुरानी छात्राओं से लेखक स्वयं मिल सका, उन से बहुत बातें मिलीं, संस्था के प्रति श्रद्धा की गहरी भावनाएं मिलीं। जैसे-जैसे सामग्री मिलती जाएगी अगले

संस्करणों में उसका यथोचित समावेश कर दिया जाता रहेगा।

लेखक का ध्यान इस बात की ओर ठीक ही आकर्षित किया गया कि संस्था के संस्थापक के साथ कार्य करते रहने वाले प्रबंधक महानुभावों के बारे में अधिक लिखा जाना चाहिए था। यह आपत्ति ठीक ही है। इसी कमी के निराकरण के लिए यह परिशिष्ट तैयार किया गया है। अब भी दो एक ऐसे महानुभावों के बारे में अधिक जानकारी न मिल सकने के कारण कमी रह गई है। इसके लिए लेखक क्षमा-प्रार्थी है।

—लेखक—

: 11 :

भगवद्गीता के स्थित प्रज्ञ—

राय बहादर बदरीदास

भगवद्-गीता के स्थित-प्रज्ञ व्यक्ति के, स्थिर बुद्धि वाले, निश्चित मति वाले और दुविधा-रहित व्यक्ति के, जो लक्षण वर्णन किए गए हैं उन लक्षणों को हम, संस्था के संस्थापक, लाला देवराज जी के दाएं हाथ, लगभग संस्था के आरम्भ-काल से सहयोगी और साथी, राय बहादुर बदरीदास में, एक बड़ी मात्रा में प्रत्यक्ष रूप में देख सकते थे। आप की चाल-ढाल, बोल-चाल में, आप के काम करने के ढंग में, ऐसी शांति और स्थिरता दिखाई देती थी, ऐसा नाप-तोल नज़र आता था, जैसे आप के हर शब्द के पीछे, आपकी हर हरकत के पीछे, दीप-शिखा के समान सीधी और स्थिर बुद्धि खड़ी हो। आप की शांत और भव्य मुद्रा आपके गम्भीर व्यक्तित्व की द्योतक थी। आपकी सुपुत्री श्री मती विमला सोंधी बताती हैं—

"कचहरी में आठ-आठ घंटे तक भी बहस करके जब आप घर लौटते थे तो आप के हाव-भाव में अशांति की कोई लहर नज़र नहीं आती थी। किसी के झूठ बोलने पर, अपनी ग़लती को छुपाने पर, आप बहुत शांति से इतना ही कहते थे, 'ओ भई, अपने आप को क्यों धोखा देते हो, ?' यदि आप को कोई ग़लत काम करने के लिए कहा जाता था तो, बिना अधिक कहे और बोले, एक बार 'न' कह कर, आप अटल रहते थे, फिर चाहे कुछ ही कहा जाता रहे। क्रोध तो आप को आता ही नहीं था। इसलिए यदि आप हमें ज़रा सा भी कुछ कहते थे तो हम सावधान होकर सुनते और सोचते थे।"

संस्था की स्थापना से चार-पांच वर्ष बाद ही, 1896 में, आप की वकालत के आरम्भ-काल ही में, ला० देवराज जी ने आपको अपने सेवा-कार्य में अपने साथ खींच लिया। जब तक विद्यालय शहर में रहा आप सामान्यत: छात्रावास का प्रबंध देखते थे। प्राय: प्रतिदिन शाम को, अपने वकालत के दैनिक कार्य के बाद, आप साइकल पर छात्रावास आते थे और उसके कार्यालय का आवश्यक कार्य करते थे। उस समय क्लर्क आदि नहीं थे। 1905-6 में जब छात्राओं के लिए अंग्रेज़ी की शिक्षा

का आरम्भ किया गया तो आप, कचहरी जाने से पहले, विद्यालय के पहले पीरियड में अंग्रेज़ी पढ़ाने के लिए भी आने लगे। आप के प्रति छात्राओं की आदर-भावना के बारे में आचार्या कु० लज्जावती बताती हैं —

"हम लाला देवराज जी को बड़े चाचा जी और आप को छोटे चाचा जी कहती थीं। बड़े चाचा जी तो हम पर अपने मातृ-स्नेह की वर्षा करने का, हम से खेलने तक का, हमारे लिए कविताएं लिखने का, किसी उदास छात्रा का दिल बहलाने का, संस्था में आए अतिथियों से, छात्राओं के संरक्षकों से, मिलने-जुलने का मधुर कार्य करते थे। संस्था को देखने का, श्रेणियों की पाठ्य-विधि निश्चित करने का, आश्रम की सफाई देखने का, संस्था के लिए पत्र-व्यवहार करने का सारा काम छोटे चाचाजी करते थे। एक दिन हम छोटी-छोटी छात्राएं आपस में बातें कर रही थीं कि हमें कौन से चाचा जी ज्यादा अच्छे लगते थे। स्वभावत: बड़े चाचाजी का हमारे प्रति स्नेह उन्हें हमारी माता ही बना देता था। हम में से एक लड़की ने कहा 'छोटे चाचाजी हमारे बुद्धि-वाले चाचा जी हैं' और इस तरह उसने दोनों चाचाओं के बुनियादी फर्क को व्यक्त कर दिया। बड़े चाचा जी में हृदय प्रधान था और छोटे चाचा जी में बुद्धि प्रधान थी। यदि हमें कभी आप बुला भेजते थे तो हम सोचने लगती थीं कि शायद ये हमारा कमरा साफ नहीं होगा या हम से कोई गलती हो गई होगी।"

अपने वकालत के काम से बचा आपका समय या तो अच्छी पुस्तकें पढ़ने के लिए था या विद्यालय के लिए। न आप को क्लब में रुचि थी और न खेल-कूद में। हां, आपको सदा सैर का शौक रहा। शहर के छात्रावास में शाम के अपने काम-काज के बाद कई दफा आप कुछ छात्राओं को भ्रमण के लिए भी कुछ दूर तक ले जाते थे। विद्यालय के बाहिर आ जाने पर आप बहुधा बग्घी में विद्यालय आते थे। परन्तु लौटते समय, बहुधा, बग्घी को खाली ही आगे भेज देते थे और स्वयं काफ़ी दूर तक पैदल चलकर बग्घी में बैठते थे। पगड़ी और बंद गले का लम्बा कोट पहने, हाथ में छड़ी लिए, विद्यालय से निकल कर पैदल शहर की तरफ जाते हुए आप को देखकर यह लेखक भी बहुत प्रभावित होता था। आपकी आकृति से एक शिष्टता, एक गहराई, एक शराफत टपकती थी।

अपनी शिक्षा के पश्चात् विद्यालय के स्टाफ पर आने के बाद आचार्या जी का आप के साथ जो सम्पर्क हुआ और उन पर आप का जो प्रभाव पड़ा उसके बारे में वे कहती हैं—

"संस्था के कार्यालय में पत्र-व्यवहार का काम करके आप कुछ काम मुझ पर भी छोड़ जाते थे। मैं ने आप से बहुत कुछ सीखा। अंग्रेज़ी की अच्छी पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा मुझे आप से हुई। आपने मुझे महाकवि टैगोर की 'गीतांजलि' और हर्बर्ट स्पैंसर की प्रसिद्ध पुस्तक 'ऐजूकेशन' विशेष रूप में पढ़ाईं। कार्यालय के काम का

संचालन करना मैंने आपसे सीखा। आप विद्यालय के शिक्षा-स्तर को उन्नत करने के लिए सदा प्रयत्न-शील रहते थे, स्टाफ तथा छात्राओं के पढ़ने के लिए अच्छी-अच्छी पुस्तकों की सूचियां बना कर लाते थे। एक बार यह देखकर कि संस्था में कोई दैनिक पत्र नहीं आता, आपने पता करके उत्तर-प्रदेश से निकलने वाले एक दो हिंदी पत्रों में से 'आज' पत्र को चंदा भिजवाया, और, हिंदी पत्रों से लग-भग शून्य उस युग में, हम को दैनिक हिंदी पत्र पढ़ने को मिलने लगा।"

सत्य का आचरण आप के जीवन का आधार था। वकालत में भी आप झूठे मुकद्दमे नहीं लेते थे। समय के इतने पावन्द थे कि किसी दैनिक निश्चित कार्य के लिए आपको जाते आते देखकर देखने वाला अपनी घड़ी ठीक कर सकता था। अपनी सूक्ष्म दृष्टि से किसी के झूठ या दोष को पहचान तो लेते थे, परन्तु प्रमाण मिलने तक उसे सन्देह का लाभ, 'बैनीफिट आफ डाऊट' देते थे। एक बार घर में आपके पांच सौ रुपये चुराए गए। सब को एक नौकर पर शक था। आप को भी शक था। नौकर से पूछ-ताछ की गई। परन्तु आप ने कहा, "मैं ने या किसी ने इसे रुपये निकालते हुए देखा तो नहीं है। मैं इसे दोषी कैसे मान लूं ?" जब आप से कहा गया कि कम से कम उस नौकर को निकाल तो दें तो आप ने कहा, "घर के नौकर को रखना या निकालना मेरा काम नहीं बल्कि 'शांति' (पुत्र-वधू) का काम है।"

आप अपने लिए विशेष नौकर नहीं रखते थे। नहाकर अपना तौलिया स्वयं सूखने डालने जाते थे। कोई टूटा हुआ बटन स्वयं लगा लेते थे।

दान-शीलता आप के स्वभाव का एक विशेष गुण था। परन्तु देते समय आप यह सावधानता रखते थे कि कहीं आप का नाम न हो। एक से अधिक बार यह लेखक भी साथियों के साथ, किसी सामाजिक काम के लिए आप से मांगने गया तो आपने बहुत नम्रता से यथोचित दिया। विद्यालय में डाइनिंग-हाल, प्रार्थना-भवन और वैज्ञानिक प्रयोग-शालाएं आप ही के दान से बनीं। आचार्या जी के अंदाज़े के अनुसार विद्यालय को आप का यह दान उस समय के एक लाख रुपये से ऊपर होगा। दोआबा कालिज के बनने में आप ने आरम्भ ही में पच्चीस हज़ार रुपया दे दिया, जो आज का अढाई तीन लाख होगा।

भारतीय संस्कृति और आर्य समाज के लिए आप की गहरी आस्था थी। उस ज़माने के अनुरूप आपकी पढ़ाई उर्दू और फारसी के माध्यम से हुई थी। आप फारसी भाषा के अच्छे विद्वान भी थे। वकालत के कार्य से निवृत्त हो कर, जालन्धर के निवास-काल में, आपने बाकायदा विद्यार्थी की तरह से संस्कृत पढ़ी और इस भाषा में योग्यता प्राप्त की। आपने संस्कृत के प्रमुख ग्रन्थों को, कुछ मौलिक रूप में और कुछ अनुवाद में, पढ़ा था। बीमारी की अवस्था में आप का समय इसी आध्यात्मिक अध्ययन में जाता था।

बीमारी से पहले आप कभी-कभी शाम को विद्यालय आते थे और प्रबंध को देखते थे। कभी-कभी आप छात्राओं को सम्बोधित भी करते थे।

राज-नीति में, आप 'माडरेट' (मध्यम-मार्गी) थे। अपने जीवन के आरम्भ-काल में आपने सरकारी 'कोप्रेटिव' योजना में बहुत सहयोग दिया। इसी के लिए आप को 'राय बहादुर' की उपाधि मिली।

कपूरथला रियासत के कस्बा सुल्तानपुर के प्रतिष्ठित पूरी परिवार में, 1872 के आस-पास जन्म लेकर और उस ज़माने की प्रमुख भाषाओं उर्दू और फारसी के साथ शिक्षा प्राप्त करते हुए आप 'फिज़िक्स' में एम० ए० और बाद में ऐल० ऐल० बी० पास करके, 1896 के आस-पास जालन्धर में वकालत करने लगे। जैसे कि पहले कहा जा चुका है तभी लाला देवराज जी ने आप को अपने कार्य में आकर्षित कर लिया। 1922 तक जालंधर में वकालत करके आप हाईकोर्ट की वकालत के लिए लाहौर चले गए और विभाजन से लगभग एक वर्ष पहले तक वहां रहे। आप लाहौर के चोटी के वकीलों में गिने जाते थे। दो बड़े महत्त्व-पूर्ण मुकद्दमों के कारण आप की बहुत प्रसिद्धि हुई। लाहौर का गुरद्वारा शहीद-गंज का मुकद्मा आप ने जीता और उसके बदले कुछ मुआवज़ा भी नहीं लिया। मुसलमानों की तरफ से मुकद्मे की अपील इंग्लैंड की 'प्रीवी कौंसिल में की गई तो उनकी तरफ से मिस्टर जिन्नाह वकील थे, जो उस समय इंग्लैंड में रहते थे। विश्व-युद्ध के कारण आप मुकद्मे की पैरवी के लिए इंगलैंड न जा सके तो आप ने अपने पक्ष की युक्तियां लिखित रूप में 'प्रीवी कौंसिल' में भेज दीं। उन युक्तियों के आधार पर ही आप मुकद्मा जीत गए।

दूसरा बड़ा केस जिस से आपकी ख्याति हुई आई० एन० ए० का था। देश के प्रसिद्ध वकील भूला भाई देसाई के साथ आप सहायक वकील थे। उस मुकद्मे में आप की कानूनी योग्यता की धाक बैठ गई और मुकद्मे में विजय हुई।

1946 में आप वकालत के कार्य से मुक्त होकर लाहौर से अपने पहले स्थान जालन्धर लौट आए और अपनी सौ से कुछ ही कम वर्षों की लम्बी आयु तक यहीं रहे। आप बहुत सी कारोबारी कम्पनियों के अध्यक्ष रहे। एक लम्बे समय तक आप आर्य-प्रतिनिधि-सभा के अध्यक्ष रहे। लाला देवराज जी के 1935 में हुए निधन के पश्चात् आप कन्या महा विद्यालय की प्रबंध-कर्तृ-सभा के अध्यक्ष हुए और अपनी मृत्यु तक इस जिम्मेदारी को निभाते रहे।

आप पंजाब, विशेषत: दोआबा, के विशेष प्रतिभावान महानुभावों में गिने जाते रहे हैं। जालन्धर शहर के बहुत से सम्पन्न हिंदू और मुसलमान घरानों की तरह आप भी शहर की पुरानी धार्मिक तथा साम्प्रदायिक रवादारी और सद्भावना के एक प्रतीक थे। विभाजन के समय की साम्प्रदायिक आग के भड़कने

के समय आपने अपनी इस विशाल-सहृदयता का वीरोचित प्रमाण दिया। जालन्धर में 'मिलाप' पत्र का वर्तमान स्थान शहर के एक प्रसिद्ध मुसलमान परिवार का निवास-स्थान था। उस भयानक आग की लपटों से अपने आप को बचाने के लिए उस परिवार ने, समीप-वर्ती, आप के मकान में शरण ली। यह जानकर मदान्ध लोगों ने आप के मकान को घेर लिया और उस परिवार को उनके हवाले कर देने के लिए मांग की। आप के ऐसा न करने की सूरत में इन्होंने आप के घर को आग लगा देने की धमकी दी। अपनी स्थित-प्रज्ञ की वृत्ति के अनुरूप ही आप ने शांत परन्तु दृढ़ शब्दों में कहा, "जो मेरी शरण में आ गए हैं, मैं उनको नहीं दे सकता। आप चाहें तो घर को आग लगा सकते हैं।" उस पागलपन के वातावरण में भी शहर में आप के व्यक्तित्व का प्रभाव था। लोग आगे आ गए और उस भीड़ को अपनी धमकी को कार्यान्वित करने की हिम्मत न हुई। बाद में आप ने अपनी गाड़ी में उस परिवार को लाहौर पहुंचाया और उसे उसी कोठी में स्थित किया जिस में अपने लाहौर-निवास के ज़माने में आप रहते थे।

उसी ज़माने की आप की निर्भीकता की एक दूसरी कहानी है। विभाजन से पहले ही आप के लाहौर-निवास के दिनों ही में, उस शहर का वातावरण बिगड़ गया था। हिंदू जनता की रक्षा करने वाले कुछ युवकों को पकड़ लिया गया और उन पर मुकद्दमे चल रहे थे। लाहौर से जालन्धर आ जाने पर भी आप, उस साम्प्रदायिक अव्यवस्था के ज़माने में, उन मुकद्दमों की पैरवी के लिए लाहौर जाते रहे और साथ ही उन नौजवानों के परिवारों को निरन्तर आर्थिक सहायता पहुंचाते रहे।

सामान्यत: मृत्यु का समय मनुष्य के चरित्र की कसौटी का समय होता है। किसी भी कष्ट-दायक रोग में, विशेषत: जीवन के अंतिम रोग में, दिखाई गई स्वाभाविक सहन-शीलता मनुष्य की जीवन भर की साधना ही से आती है। जीवन के अंत में, लगभग सौ वर्ष की आयु को पहुंचे हुए आप, वर्षों तक, घर में और हस्पताल में बिस्तर पर रहे। बहुत कष्ट की अवस्था में भी आप के मुंह से 'हाय' नहीं निकली। किसी के पूछने पर आपने यही कहा "भई, कर्मों का भोग तो भोगना ही है।" उस अवस्था में भी आपने सौम्य से मज़ाक की अपनी तबीयत को नहीं बदला और सदा मिज़ाज-पुर्सी के लिए आने वाले के मन के बोझ को कम करने की कोशिश की। आप की मृत्यु से कुछ समय पहले आप की मिज़ाज-पुर्सी के लिए दीवान आनन्द कुमार के आने की सूचना मिली तो आप पुराने रियासती रिवाज के अनुरूप पोशाक पहन कर उनके स्वागत के लिए तैयार होकर बैठ गए। वहां पर आचार्या जी भी मौजूद थीं। बातचीत के दौरान जब आप की पुत्र-वधु चाय लाने के लिए उठीं तो आपने आचार्या जी की चाय के प्रति रुचि के सम्बन्ध में मज़ाक से कहा, "शांति, दो ही प्याले लाना। लज्जावती तो चाय पसन्द ही नहीं करती है।" ऐसी कष्ट की स्थिति में आप की तबीयत के मज़ाक को देखकर दीवान साहिब

बहुत प्रभावित हुए। अपनी लम्बी आयु और लम्बी बीमारी के सम्बन्ध में आप मिलने आने वालों से मज़ाक में कहा करते थे, "मालूम होता है भगवान् के दरबार में मेरी पत्नी कहीं गुम हो गई है।"

ऐसी शारीरिक दुर्बलता की अवस्था में भी आप का मस्तिष्क और आप की स्मरण-शक्ति ठीक अवस्था में रहे। आप के मार्ग-दर्शन में चल रहे, लुधियाना के 'कुंदन-विद्या मंदिर' स्कूल के अधिकारी स्कूल से सम्बंधित किसी पुराने झगड़े में आप की कानूनी राए लेने आए तो आप ने उनका ठीक मार्ग-दर्शन किया।

अंतिम दिनों में घर वालों ने आप को हस्पताल से घर ले जाने की बात कही तो आपने कहा, "अब मेरा अंत समय बहुत दूर नहीं है। यहां सब तरह का प्रबंध है। यहीं रहना ठीक है।"

इस प्रकार अपनी स्थित-प्रज्ञ की जीवन-वृति के अनुरूप ही अंतिम दिनों में भी आप की वह स्थिति कायम रही और वेदों के 'जीवेम शरदः शतम्' के आदर्श के बहुत नज़दीक पहुंच कर आप शांत-भाव से दिवंगत हुए। जिस स्थिरता और सहन-शीलता का आपने सदा स्वास्थ्य की अवस्था में परिचय दिया था उसी का रुग्णावस्था में परिचय देकर आप ने अपनी जीवन-साधना सफल कर दी।

: 12 :

ला० करमचन्द बाहरी

इस लेखक को जालन्धर शहर के अपने अध्ययन-काल और आरम्भिक अध्यापन-काल की जो विशद स्मृतियां हैं। उनमें से एक, बांसांवाले बाज़ार में, आपकी कोठी के आंगन में होने वाले एक धार्मिक सत्संग की स्मृति है जिस में मुसलमान और ईसाई विद्वान् भी अपने विचार प्रकट किया करते थे। वह सत्संग उस ज़माने का, 1940 से पहले का एक सर्व-धर्म-सत्संग था। आप के पौत्र श्री देवेन्द्र बाहरी ने बताया कि उनके स्कूल में पढ़ने के उन दिनों में इतवार का दिन उनके लिए सत्संग के लिए सफाई बिछाई आदि का दिन होता था। पुराने जालन्धर की एक विभूति, मौलाना मुहम्मद अली 'आज़र', जो उर्दू के एक प्रसिद्ध शायर होने के साथ-साथ पक्के राष्ट्रीय, खद्दर-पोश मुसलमान थे, और जो एक लम्बे समय तक दोआबा स्कूल और कन्या महा विद्यालय में ड्राइंग आदि विषय पढ़ाते रहे, आप के सम्बन्ध में कहा करते थे, "आप साहिबे ज़ौक हैं" (साहित्य-वृत्ति हैं)।

आप लाला देवराज जी के उन चंद साथियों में से थे जो नियमित रूप में शाम को विद्यालय आते थे और संस्था के काम-काज तथा सलाह-मशवरे में भाग लेते थे।

दोआबा-स्कूल की स्थापना करने वालों में आप भी थे। बहुत वर्षों तक आप वकालत के लिए, कचहरी जाने से पहले, स्कूल में एक-आध पीरियड लेने के लिए भी आते थे।

जालन्धर में आप राय बहादुर बदरी दास के हमसाए और भाइयों जैसे मित्र थे। उस ज़माने में, 'सिविल लाइन्ज़' की कोठियां बनने से पहले, डिस्ट्रिक्ट जेल के पास का बांसां वाला बाज़ार का इलाका ही, जालन्धर के प्रमुख वकीलों का निवास-स्थान था। राय बहादुर बदरी दास भी लाहौर जाने से पहले यहीं निवास करते थे, आप भी यहीं रहते थे और शहर के अन्य कई वकील भी इधर ही रहते थे।

आचार्या कु० लज्जावती जी बताती हैं कि एक बार विद्यालय के वार्षिक उत्सव के लिए, गुजरात के 'गर्वा' नृत्य की तैयारी की जा रही थी तो आप ने उसे देखकर

कहा, "यह नाच है, क्या हम लड़कियों को स्टेज पर नचाएंगे ?" आपकी भावना का ख्याल रखते हुए उत्सव की उस 'आइटम' को छोड़ दिया गया। लाला देवराज जी ने, जो 'गर्वा' नृत्य के बहुत प्रशंसक थे, आचार्या जी से कहा, "सब साथियों की भावनाओं का ध्यान तो रखना ही चाहिए।" इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि किस तरह संस्था के संचालक मिल-जुलकर एक-दूसरे के विचारों और भावों का ख्याल रखते हुए काम करते थे।

आपके पौत्र श्री देवेन्द्र बाहरी बताते हैं, "हमने दादाजी को कभी गुस्से में बोलते या ऊंचे बोलते नहीं सुना। आप सदा शांत रहते थे। अपनी अंतिम बीमारी में भी आपके मुंह से हाय नहीं निकली। आप ने बहुत धैर्य के साथ कष्ट को सहन किया।"

श्री देवेन्द्र ने आर्य-समाज की संस्थाओं के प्रति आप की आस्था की एक घटना सुनाई। आप के कुछ पोते गवर्नमैंट स्कूल में पढ़ने लगे तो आर्य समाज के दोआबा स्कूल के अधिकारियों ने आप से इस सम्बन्ध में शिकायत की। आप की आज्ञा से उन लड़कों को दोआबा स्कूल में दाखिल करवाया गया।

1935 में हुई लाला देवराज जी की मृत्यु के बाद आप कुछ वर्षों के लिए विद्यालय की प्रबंध-कर्तृ-सभा के अध्यक्ष भी रहे।

1944 में आप का देहान्त हो गया।

———

: 13 :

रायज़ादा भगत राम सोंधी

रायज़ादा भगतराम सोंधी लाला देवराज जी के छोटे भाई थे। आपको अपने बड़े भाई, लाला देवराज के समाज-सेवा के काम पर गर्व था। यद्यपि आप सीधे इस कार्य में नहीं आए, तो भी आप की रुचि सदा इस काम में रही।

अपने बड़े भाई से कुछ ही वर्ष छोटे होने के कारण आप उनके बचपन के साथी रहे थे। लाला जी ने अपनी डायरी में एक से अधिक बार आपके साथ धार्मिक और सामाजिक विषयों पर हुए वार्तालाप का और उन विषयों पर आप की बहुमूल्य राए का जिक्र किया है। आप को अपने सेवा-भावी भाई के प्रति बहुत आदर था और आप सदा उनके काम और उनके हितों को ध्यान में रखते थे। खानदानी जायदाद के बटवारे के समय जब परिवार के कुछ लोगों ने अधिक मांग की और लाला जी उस मांग को भी मान गए तो आप ने उन लोगों को धमकाते हुए कहा, "तुम लोग इस साधु-पुरुष का हिस्सा लेना चाहते हो ?"

रायज़ादा साहिब इंगलैंड से बैरिस्ट्री पास करके जालन्धर में प्रैक्टिस करते थे। फौजदारी के मुकद्दमों में आप पंजाब के चोटी के वकील थे। किसी मुल्जिम को फांसी के तख्ते तक से उतारने की आप की योग्यता प्रसिद्ध थी।

आप का रहन-सहन का ढंग अंग्रेज़ी था परन्तु हृदय से आप पक्के देश-भक्त, गांधी-भक्त और भारतीयता-भक्त थे। सार्वजनिक क्षेत्र में और सरकारी क्षेत्र में आपका बराबर का सम्मान था। सरकार के बड़े से बड़े अधिकारी को आप टैलीफोन पर कोई बात कह सकते थे। पंजाब के अंग्रेज़ गवर्नर तक आपको मानते थे। दूसरी तरफ जब सरोजिनी नायडू पहली बार जालन्धर आईं, तो आपने उन्हें अपने घर ठहराया। 1920 में पंजाब की पहली पोलिटीकल कानफ्रेंस का, जिसके अध्यक्ष लाला लाजपत राए थे, आयोजन आप ने किया था। महाराजा कपूरथला पर भी आपका बहुत प्रभाव था।

कन्या महाविद्यालय के वार्षिक उत्सव पर आप, अपनी बहुत व्यस्तता के बावजूद, कुछ समय के लिए सही, आते थे। विद्यालय पर कोई आपत्ति आए तो आप

झट मदद के लिए तैयार रहते थे। एक बार विद्यालय की छात्राएं दो-दो की पंक्तियों में सड़क पर से गुज़र रही थीं। कुछ गोरे सैनिक, पंक्ति को तोड़ कर, अपने घोड़े बीच में से निकाल ले गए। आप ने तत्क्षण गवर्नर को टैलीफोन किया और लड़कियों के आने-जाने का क्षेत्र गोरे सैनिकों के लिए वर्जित क्षेत्र हो गया था। असहयोग के दिनों में कन्या महा विद्यालय की राष्ट्रीय गति-विधियों के कारण संस्था की तलाशी लेने की बात निकली तो आप ने झट अधिकारियों को फोन पर कहा, "विद्यालय मुझे बहुत प्रिय है। इस के लिए मैं अपना सब कुछ दांव पर लगा सकता हूं"। और वह तलाशी की बात आगे न बढ़ी।

आचार्या जी बताती हैं, "एक बार मैं लाहौर से जालन्धर आ रही थी। राए ज़ादा साहिब मुझे स्टेशन पर मिल गए। मेरे पास इंटर का टिकट था। उन्होंने मेरा वह टिकट लौटवा कर और सैंकड क्लास का टिकट लेकर मुझे गाड़ी में बिठाया। वे हमारा इतना ख्याल रखते थे।"

: 14 :

लाला अच्छरू राम सहगल

लाला अच्छरूराम ज़िला जालन्धर के कस्बा महतपुर के एक प्रतिष्ठित खत्तरी वंश से आए थे। 1918 से कुछ वर्ष पहले आप ने जालन्धर में अपनी वकालत जमा ली थी और जालन्धर आर्यसमाज में आप के व्याख्यान होने लगे थे।

आप बहुत अध्ययन-शील थे और आप के अध्ययन का क्षेत्र विशाल था। कन्या महा विद्यालय के पुस्तकालय में, लगभग बीस भागों में, एक सुन्दर-सचित्र, विश्व-इतिहास की एक अंग्रेज़ी पुस्तक है, जिस पर आप ने हाथ से लिखा है कि यह पुस्तक-माला आप ने संस्था को 'डोनेट' की है। विद्यालय के अपने लम्बे जीवन में लेखक के लिए यह पुस्तक पुस्तकालय की सब से अधिक रोचक पुस्तक रही है और इस को बार-बार देखते हुए लेखक को लाला अच्छरूराम जी की इतिहास के प्रति, और वह भी विशाल विश्व के इतिहास के प्रति अभिरुचि का इहसास होता रहा है।

जालन्धर में अपनी वकालत के दौरान आप विद्यालय के प्रबंध में विशेष रुचि रखते थे। एक लम्बे समय तक आप विद्यालय की प्र० कर्तृसभा के उप-प्रधान भी रहे। 1930 के आस-पास आपने लाहौर में वकालत शुरू करदी, तब भी आप का सम्बन्ध और सम्पर्क विद्यालय के प्रबंध के साथ रहा। 1940 के आस-पास आप पंजाब हाई कोर्ट के जज नियुक्त हुए। जजों को राजनैतिक और सामाजिक संघटनों से अलग रहना होता है। परन्तु आप ने चीफ़ जस्टिस को बता दिया कि आप कन्या महा विद्यालय से अपना सम्बन्ध-विच्छेद नहीं कर सकते और चीफ जस्टिस ने आप की भावना की प्रशंसा की।

देश के विभाजन के समय तक आप पंजाब हाई-कोर्ट के जज रहे और आप ने अपनी योग्यता और न्याय-प्रियता के लिए नाम पाया। विभाजन के पश्चात् आप दिल्ली आ गए और 'अवैकुई प्रापर्टी' के 'विस्थापितों की सम्पत्ति के' 'कस्टोडियन', संरक्षक, नियुक्त हुए। यह भी एक महान कार्य था जिसे आपने योग्यता के साथ सम्पन्न किया।

'इंडियन नैशनल आर्मी' के तीन प्रसिद्ध नेताओं, 'सहगल, ढिल्लों, शाहनिवाज़ में प्रेम सैहगल आप के सुपुत्र थे, जिन्हों ने अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त की और देश के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में स्थान प्राप्त किया।

: 15 :

सेठ बिंदराबन सोंधी

सेठ बिंदराबन सोंधी लाला देवराज जी के बड़े भाई के सुपुत्र थे और आप ने अपने पूज्य चाचा के विद्यालय के काम में और दूसरे सामाजिक कामों में जीवन-भर योगदान दिया। शहर के सामाजिक जीवन में आप का विशेष स्थान था। अपनी सेवा-भावना और दान-शील वृत्ति के कारण शहर के प्राय: सभी सामाजिक कार्यों में आप की रुचि थी।

आचार्या जी के शब्दों में आप विद्यालय के 'जन-सम्पर्क-विभाग' के अध्यक्ष थे। शहर में आने वाले नए बड़े सरकारी अधिकारियों के साथ आप सम्पर्क पैदा करते थे ताकि समय आने पर विद्यालय के किसी काम में उनसे मदद ली जा सके। अपनी आँखों की कमज़ोरी के कारण आप गर्मियों के मई जून महीने डलहौज़ी में गुज़ारते थे और वहां भी आप का घर, गर्मियों के लिए आए सरकारी अधिकारियों और सार्वजनिक महानुभावों के आतिथ्य का केन्द्र रहता था।

बचपन ही में आँखें ख़राब हो जाने के कारण आप आरम्भिक कुछ श्रेणियों से आगे नहीं पढ़ सके थे और व्यापार के काम में पड़ गए थे। मंडी में आप की दुकान थी और मिट्टी के तेल आदि की एजेंसियां आप के पास थीं। जब विद्यालय शहर में था तो छात्रावास के किचन की ज़रूरतों को और किचन के हिसाब को, देखना आपके ज़िम्मे था। जब विद्यालय शहर से बाहिर चला गया तब भी उस के छात्रावास के किचन के लिए सामग्री खरीदना और पहुंचाना अक्सर आप के ज़िम्मे रहा।

दान-शीलता आप का विशेष गुण था। आप अपनी सुख-सुविधा पर बहुत कम खर्च करते थे, परन्तु खुले दिल से दान देते थे। आप कार रख सकते थे परन्तु किफायत के ख्याल से नहीं रखते थे। एक दफा सर्दियों में आपने नया गर्म कोट बनवाने की जगह पुराना कोट ही धुलवा कर पहन लिया तो एक साथी ने आप का ध्यान इधर दिलाया। आप ने कहा, "यदि मैं इस प्रकार व्यक्ति-गत खर्च को बढ़ाता जाऊं तो फिर आप ने मुझ से सामाजिक कामों के लिए रुपया न मंगाना।"

1915 के आस-पास उस समय भी विद्यालय की आचार्या पंडिता सावित्री देवी को, बीमारी के कारण मसूरी भेजने का प्रस्ताव हुआ और इसके लिए खर्च की बात आई तो आप ने इस भार को सहर्ष ले लिया। विद्यालय की प्रबंध-कर्तृ-सभा ने दोआबा कालिज की स्थापना का निश्चय किया तो आप ने इसके लिए एक लाख रुपया जमा हो जाने तक अपने घर में कदम न रखने का व्रत ले लिया और जल्दी ही वह राशि जमा कर ली। इसके लिए आपने स्वयं भी एक अच्छी राशि दी।

आप का घर आतिथ्य के लिए प्रसिद्ध था। आर्य समाज के क्षेत्र के अतिथियों का तो आना-जाना रहता ही था। अन्य क्षेत्रों के महानुभावों के लिए भी आपका द्वार सदा खुला था। आर्य समाज के उत्सव पर आए विशेष अतिथि आपके घर ही ठहरते थे। स्वामी सत्यानन्द अक्सर आप ही के मेहमान होते थे। जब राष्ट्र-पति राजेन्द्र प्रसाद विद्यालय में पधारे तो आपने कह दिया था, "आने वालों के आतिथ्य में कोई कमी न रहे। खर्च की चिंता न करें।"

आप को अपने परिचय-क्षेत्र के परिवारों में रिश्ते-नाते करवाने में भी रुचि थी और आप इस कार्य में कुशल भी थे।

आप को किसी छोटी मीटिंग में भी खड़े होकर बोलते शायद ही देखा गया हो। आप की रुचि काम में थी और आप चुप-चाप काम में लगे रहते थे।

: 16 :

लगभग आधी शताब्दी तक जैनरल सैक्रेट्री

ला० जगन्नाथ मित्तल

1918 में बाईस तेईस वर्ष की आयु में जालन्धर में वकालत आरम्भ करते ही, ला. जगन्नाथ मित्तल आर्यसमाज, विशेषत: कन्या महाविद्यालय, के सेवा-क्षेत्र में आ गए और चार-पांच वर्ष पहले तक, अपनी लगभग अस्सी वर्ष की आयु तक, निरंतर सेवा-कार्य-रत रहे, लगभग, पैंतालीस वर्ष तक, 1931 से 1974 तक आप प्रबंधकर्तृ-सभा के जैनरल सैक्रेट्री रहे।

आप के पिता ला. भक्त राम शहर के उन चन्द लोगों में से थे जो सब से पहले, स्वामी श्रद्धानन्द और ला. देवराज के साथ ही, आर्यसमाज में शामिल हुए। एक सह-भोज में जिसमें अस्पृश्य कहे जाने वाले लोग भी शामिल थे, सम्मिलित होने के कारण, उनके निवास-स्थान, बस्ती शेख़ की बिरादरी ने बहुत वर्षों तक उनको बहिष्कृत भी कर रखा। युवक जगन्नाथ को आर्य-समाज के विचार अपने पिता से मिले और जीवन भर आगे से आगे विकसित हुए।

1915 में आपने अंग्रेज़ी में आनर्ज़ तथा संस्कृत विषय के साथ, बहुत अच्छी पोज़ीशन लेकर, बी. ए. तथा 1917 में ऐल. ऐल. बी. पास किया। आप की वकालत के आरम्भ के वर्ष ही में लाला देवराज जी ने, आर्य-समाज के कार्य में अपने साथी, आप के पिता, ला. भक्तराम के पास आ कर यह मांग की कि आप, अपनी वकालत के साथ साथ, आंशिक रूप में विद्यालय के काम में सहयोग दें। पिता पुत्र दोनों ने लाला जी की मांग को सहर्ष मान लिया और आप नियमित रूप से अपना कुछ समय विद्यालय के काम को देने लगे। 1931 में आप विद्यालय की प्रबंध-कर्तृ-सभा के जैनरल सैकेट्री नियुक्त हो गए।

आप के सुपुत्र श्री चर्तुभुज मित्तल बताते हैं कि कचहरी से आकर आप प्रति-दिन, तांगे में कन्या महा विद्यालय जाते थे और कभी कभी, कुछ देर के लिए, शहर के देवराज विद्यालय और दोआबा हाई स्कूल में भी, वहां के काम के लिए ठहरते थे।

चतुर्भुज जी को भी अपने बचपन में कभी-कभी तांगे में आप के साथ जाने के मधुर स्मरण हैं।

आप का खानदानी काम व्यापार था। आप के खानदान की व्यापारिक शाखाएं लाहौर, पठानकोट और होशियारपुर में भी थीं, जिन में से जालन्धर की दुकान का काम आप के पिता के हिस्से में आया था। आपने स्वयं तो मंडी फैंटनगंज की अपनी दुकान का काम नहीं किया परन्तु आप के निर्देशन से वह काम चलता रहा।

1939 में जालन्धर में दोआबा कालिज की स्थापना का विचार आप ही ने प्रस्तुत किया। इस कार्य के लिए आपने अपनी वकालत छोड़ दी और ला. विदरावन ने, जैसे कि अन्यत्र कहा गया है, एक लाख रुपया जमा हो जाने तक अपने घर आना छोड़ दिया। देखते ही देखते 1941 में दोआबा कालिज की स्थापना हो गई।

आरम्भ से आप का स्वभाव शांत था। व्यापार-सम्बन्धी किसी खानदानी झगड़े को निपटाने के लिए आप के पिता आप ही को नियुक्त करते थे और आप माधुर्य के साथ मुआमले को निपटा देते थे। खानदान की पठानकोट की दुकान आप के ताया जी के हिस्से में आई थी। वे कट्टर सनातनी थे, परन्तु उनके सुपुत्र ला. कुलदीप चंद, आपकी संगति से आर्य-समाज तथा कांग्रेस के सेवा-क्षेत्र में आ गए। उनके माध्यम से उस शहर और इलाके में बहुत सेवा-कार्य हुआ।

आरम्भ से आप को स्वाध्याय का, संस्कृत ग्रन्थों के अध्ययन का, बहुत शौक रहा है और इसका प्रभाव आप के घर में, अगली पीढ़ी में भी नज़र आता है।

आप के सुपुत्र श्री चतुर्भुज व्यापार के काम में पड़े और आप से मार्ग-दर्शन लेते रहे। एक बार उन्होंने एक नए काम को आरम्भ करने के बारे में आप की राय ली और आप को बताया कि उस काम में ईमानदारी के साथ भी बहुत अधिक लाभ होने की पूरी आशा थी तो आप ने कहा :—

"लाभ तो इतना ही होना चाहिए जितना आटे में नमक होता है। अधिक लाभ होने से, अपना न सही, अगली पीढ़ी का जीवन अच्छा नहीं रहता। यदि अधिक लाभ हो ही तो उसे आगे काम में या दान में लगाना चाहिए, अपने भोग-विलास में नहीं। अपना जीवन सरल और सादा ही रखना चाहिए।"

इतने शब्दों में आप ने वैश्य धर्म और गांधी जी के 'ट्रस्टी शिप' सिद्धांत की व्याख्या कर दी।

आप का अपना जीवन इसी सिद्धान्त के अनुसार चला है। सदा ही आप को खादी की सादा पोशाक में देखा गया है। घर में आप एक छोटे से कमरे से सन्तुष्ट हैं। अपने लिए कोई नौकर-चाकर भी नहीं रखते हैं।

इस समय, अपनी लगभग पच्चासी वर्ष की आयु में, आप आराम, स्वाध्याय और प्रभु-भजन का जीवन गुजार रहे हैं। अपने सेवा-क्षेत्र के किसी पुराने साथी और परिचित से मिलकर आप बहुत खुश होते हैं।

———

: 17 :

ला० प्यारे लाल कपूर

ला. प्यारे लाल कपूर और ला. जगन्नाथ मित्तल लगभग एक ही साथ जालन्धर में वकालत करने लगे थे। ला. प्यारे लाल कपूर को भी वहां परम्परा से आर्य समाजी विचार मिले थे। पिता जी सरकारी नौकरी के कारण आप तीसरी श्रेणी में ही डी. ए. वी. स्कूल लाहौर में दाखिल हो गए और बोर्डिंग हाऊस में रहने लगे। डी. ए. वी. कालिज लाहौर से बी. ए. और बाद में ऐल. ऐल. बी. पास कर के आप 1918 में जालन्धर में वकालत करने लगे।

आप के अध्ययन-काल की एक घटना से आप की आर्य-समाज के प्रति श्रद्धा-भावना का सुन्दर प्रमाण मिलता है। कालिज में पढ़ने के समय आप पंजाब में हाकी के इने-गिने खिलाड़ियों में थे और अपने कालिज की हाकी टीम के कैप्टन थे। गर्वन-मैंट कालिज लाहौर की हाकी टीम के 'इनचार्ज'. प्रो. जोन्ज़ ने आप को अपने कालिज में खींचने की कोशिश की। उस ज़माने में लाहौर के गर्वनमैंट कालिज में दाखिला मिलना एक बड़ी बात थी। परन्तु प्रो. 'जोन्ज़' ने अपने रसूख़ से प्रबंध कर दिया और दाख़िल किए जाने वाले नए छात्रों में आप का नाम सब से ऊपर था। परन्तु जब आप दाख़िल होने जा रहे थे तो रास्ते में आपको डी. ए. वी. कालिज के तत्का-लीन प्रिंसीपल महात्मा हंसराज मिल गए। वे अपने कालिज के छात्र को अच्छी तरह जानते थे। जब आपने उनको बताया कि आप गवर्नमैंट कालिज में दाख़िल होने जा रहे हैं तो उन्होंने आप को ऐसा करने से मना कर दिया और उनकी आज्ञा मान कर आप ने ऐसे अवसर का लाभ उठाने का इरादा छोड़ दिया।

बाद में प्रो. जोन्ज़ के पूछने पर आप के कह दिया, "मैं अपने श्रद्धेय प्रिंसीपल की आज्ञा को नहीं टाल सकता था"। प्रो. जोन्ज़ आप के मित्र बन गए और आप की इस भावना के लिए आप की कद्र करने लगे।

बचपन से आर्य समाज के संस्कार लेकर आने वाले और महात्मा हंसराज तथा प्रिंसिपल साईं दास जैसे महापुरुषों के व्यक्ति-गत सम्पर्क में रह चुके आप जब जालन्धर में

ला. देवराज जी तथा राय बहादुर बदरीदास के साथी ला. कर्म चंद बाहरी के साथ वकालत करने लगे तो आप का आर्य-समाज और कन्या महाविद्यालय के सेवा-क्षेत्र में आना स्वाभाविक था। ला. जगन्नाथ मित्तल तो आप के अध्ययन-काल के मित्र थे। वे 1918 ही में इस सेवाक्षेत्र में आ गए थे।

आप ने 1964 में अपनी मृत्यु तक आर्य-समाज तथा कन्या महाविद्यालय की, पूरी वफादारी के साथ सेवा की। आप कन्या महाविद्यालय की प्रबंध-कर्तृ-सभा के सदस्य तथा काफी देर के लिए सहायक मंत्री भी रहे। आप जालन्धर आर्य-समाज के मंत्री भी रहे। दोआबा स्कूल के प्रबंध में भी आपका हाथ रहा।

1941 में दोआबा कालिज की स्थापना में आपका बड़ा योगदान था।

खेल-कूद और व्यायाम आपके शौक रहे। आप सिनेमा नहीं जाते थे, परन्तु सरकस कभी नहीं छोड़ते थे। सैर के स्थान पर दौड़ पसन्द करते थे। सर्दियों में भी आप गर्म कपड़ा बहुत कम पहनते थे। प्रसिद्ध पहलवान राममूर्ति से भी आप का व्यक्तिगत सम्पर्क रहा था और आप भी उस की तरह संगल तोड़ने का अभ्यास करते रहे हैं। आपकी मृत्यु के बाद वह संगल और डंडा आप के घर से मिला।

आपके सुपुत्र डा. चमन लाल बताते हैं—

"स्वभाव से आप निश्चिन्त थे। जालन्धर 'बार' के किसी सदस्य ने कहा था कि 'बार के 126 मैम्बरों में सब से निश्चित व्यक्ति ला. प्यारेलाल कपूर हैं।' मृत्यु के बारे में आप कहा करते थे, 'मौत क्या है? नींद से न जागे तो मृत्यु हो गई'। आप कभी पांव को हाथ नहीं लगवाते थे और दूसरों से शरीर की कोई सेवा बहुत कम लेते थे। 1947 के हिंसा के वातावरण में भी आप निश्चित रहे। आप कहा करते थे, 'यदि कोई आक्रमण होगा तो मुकाबिला करेंगे। दो-चार को मार कर मर जाएंगे।'"

आचार्या जी बताती हैं—

"आप सभा की मीटिंगों में नियमित रूप से आते थे और शायद ही कभी अनुपस्थित रहे हों। जो काम आप के ज़िम्मे लगाया जाता था उसे आप पूरी लगन से निभाते थे।"

जीवन के अंतिम वर्षों में आप का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहा परन्तु अंत तक आप खुश और निश्चित रहे। 1964 में लग-भग सत्तर वर्ष की आयु में, आपका देहांत हो गया।

: 18 :

चाचा जी की सेवा-भावी पुत्र-वधु

माता लक्ष्मी देवी

विद्यालय के अपने पच्चीस वर्ष से ऊपर के अध्यापन-कार्य के जीवन में लेखक ने माता लक्ष्मी देवी जी को, शहर के स्त्री-क्षेत्र के सामाजिक कार्यों में, विशेषत: स्त्री समाज के कार्य में संलग्न देखा है। जब तक आप के सुपुत्रों के परिवार, अपने वंश-परम्परागत निवास-स्थान को, ला. सालगराम द्वारा निर्मित, 'सालिग-निवास' को छोड़ कर, आज की नव-निर्मित, माडल टाऊन और न्यू जवाहर नगर आदि, नई आधुनिक आबादियों में नहीं चले गए, आप लाला जी के समय से स्थापित स्त्री-समाज का, बहुधा अध्यक्ष के रूप में, कार्य करती रही हैं। इस समय आप, अपनी सत्तासी वर्ष की आयु में, अपने सुपुत्र बलवीर सोंधी के साथ रहती हैं। वृद्धावस्था के कारण सुनने की शक्ति कम हो गई है और दुर्बलता तो है ही, परन्तु चाचा जी के समय के अपने संस्मरण सुनाते हुए आप गद-गद हो उठती हैं।

आप अपने पूज्य पिता डा. गणेश दास के सेवा-भावी जीवन का और विद्यालय के प्रति उनका सेवा-कार्य का उत्साह के साथ वर्णन करती हैं। आप महसूस करती हैं कि आप को आर्य-समाज का पाठ अपने आरम्भिक जीवन में अपने पिता से मिला था, जो बाद में विद्यालय में आकर आगे विकसित हुआ।

आप का चोपड़ा खत्तरी वंश ज़िला गुजरात के एक गांव का रहने वाला था। आप के पिता डा. गणेश दास एक लम्बे समय तक आनन्दपुर साहिब में डाक्टर रहे। अपने वहां के सेवा-काल में उन्होंने अपनी डाक्टरी सेवा के अतिरिक्त समाज के दूसरे बहुत कार्य भी किए। अपने गांव में भी उन्होंने कई सेवा-कार्य किए।

गत शताब्दी के अंतिम दशक में कन्या महा विद्यालय की ख्याति दूर-दूर तक फैलने लगी थी। डा. गणेश दास ने भी विद्यालय की ख्याति को सुना और आप की बड़ी बहन को और आप को, मामूली आरम्भिक शिक्षा के बाद, इस शताब्दी के प्रथम वर्ष में, विद्यालय में पढ़ने के लिए भेज दिया, जहां आप ने विद्यालय की उस समय की पढ़ाई पूरी की।

कुछ वर्ष बाद आप के पिता डा. गणेश दास, अपनी पुत्रियों के लिए योग्य वर तलाश करने के लिए, लम्बी छुट्टी लेकर जालन्धर आकर रहने लगे। वे विद्यालय में अवैतनिक रूप में सेवा-कार्य भी करने लगे। इस प्रकार वे लाला देवराज जी के बहुत निकट सम्पर्क में आ गए। आप का रिश्ता लाला जी के बड़े सुपुत्र ला. गन्धर्व राज के साथ हो गया और 1909 में विवाह सम्पन्न हो गया। तब से लेकर लाला जी के मृत्यु के वर्ष 1935 तक, आप के संस्मरण सुनने के लिए जब लेखक आप के पास पहुंचा तो आप के हर्ष का पार नहीं था।

आप के सक्रिय सेवा-कार्य के दिनों में भी यह लेखक बहुधा आप से मिलता रहा था और आप के आमंत्रण पर स्त्री-समाज के सत्संगों में स्वयं भी बोलने जाता रहा था और सर्वोदय के अन्य महानुभावों को भी ले जाता रहा था। लगभग दस वर्ष पहले, विनोबा जी की प्रेरणा से बारह वर्ष की लम्बी पद-यात्रा की प्रतिज्ञा लेकर निकली, उनकी चार शिष्या महिलाएं, अपनी यात्रा के दौरान जालन्धर आईं तो उनके ठहरने का प्रबंध आप ही के, उस समय के निवास-स्थान, सालिग-निवास के 'शांति-सरोवर' नाम के घर में किया गया था और आपने तथा आप के परिवार ने उस आतिथ्य को बहुत हार्दिकता से निभाया था।

संस्मरण

(लेखक के प्रश्न को आपका सुपुत्र बलबीर सोंधी ऊंचे से दोहराता था और अपनी माता के उत्तर की भी स्वयं व्याख्या करता था।)

हमारा छात्रावास शहर में अड्डा होशियारपुर के रेलवे फाटक के पास था और विद्यालय, कुछ दूर पर स्थित, आज का देवराज गर्ल्ज़ हायर सैकंड्री स्कूल का स्थान था। हम दो-दो की पंक्ति बना कर छात्रावास से विद्यालय आती जाती थीं। एक दिन कुछ गोरे सैनिक हमारी पंक्ति को तोड़ कर बीच में से निकल गए, तो, पता लगने पर चाचा जी लड़कियों पर नाराज़ हुए कि उन्होंने उनके गुज़रने के लिए पंक्ति को क्यों तोड़ा।

आचार्या लज्जावती मेरे आने के बाद विद्यालय में आई थीं। उनको संध्या, स्वस्ति-वाचन और शांति-प्रकरण के मंत्र खूब कंठस्थ थे और चाचा जी उनको मंत्र बोलते सुनकर बहुत खुश होते थे।

चाचा जी से तो हमें माता का स्नेह मिलता था। हमें अपने धर्म-शिक्षा के अध्यापक भक्त रैमलदास के प्रति भी बहुत आदर-भाव था। वे बहुत त्यागी और तपस्वी थे। पढ़ाते भी बहुत अच्छा थे।

जब मेरा विवाह हुआ तो चाचा जी बिना परदे के विवाह-संस्कार सम्पन्न करना चाहते थे परन्तु बड़े लाला जी (ला. सालिग राम जी) ऐसा नहीं चाहते थे। दोनों बातों को रखने के लिए कनातें तान दी गईं और बड़े लाला जी और दूसरे पुराने विचार के लोग, कनातों की आड़ में बैठ गए, और शेष, नए विचार के लोग अन्दर बैठ गए।

लाला जी प्रात: बहुत जल्दी उठते थे। बहुधा जल्दी उठकर वे पुस्तकें और कविताएं आदि लिखते थे। प्रात: बहुत जल्दी वे भ्रमण के लिए ज़रूर जाते थे। उन के पढ़ने लिखने का एक छोटा-सा अलग कमरा था।

लाला जी अपने पास बर्तनों में तरह-तरह की, बच्चों के खाने की, चीज़ें रखते थे। जब वे विद्यालय के छात्रावास में जाते थे तो अपनी जेबें उन चीज़ों से भर लेते थे ताकि वहां छोटी-छोटी लड़कियों को बांट सकें।

जब तक छात्रावास शहर में रहा लाला जी छुट्टी के दिन बहुत-सी छात्राओं को घर बुला लेते थे और उनके खिलाने-पिलाने का, आने-जाने का प्रबंध मेरे ज़िम्मे रहता था।

असहयोग के दिनों में हम ने घर के सभी विदेशी कपड़ों को जला दिया और खद्दर पहनना शुरू किया। हम ने कातना भी शुरू किया। जुलाहे छोटे अर्ज़ का कपड़ा बुनकर लाते थे। एक दफा माता कस्तूरबा गांधी और मौलाना मुहम्मद अली-शौकत अली की माता, बी अम्मा हमारे घर ठहरीं। उन्होंने हमारे घर के कपड़ों को हाथ लगा-लगा कर देखा कि वे विदेशी तो नहीं हैं।

विदेशी कपड़े की दुकानों पर पिकेटिंग के लिए मैं भी जाती थी। और कई महिलाएं भी जाती थीं।

जब गांधी जी ने शराब की दुकानों पर पिकेटिंग का कार्य-क्रम बनाया तब भी मैं ने उस में भाग लिया। प्रात: से सायं तक शराब के ठेकों पर पिकेटिंग करना होता था। लाला जी इसके लिए प्रोत्साहन देते थे।

लाला जी मुझे किसी बच्चे को पीटने नहीं देते थे। बच्चे की शरारत पर मैं कभी ज़रा पीटती तो वे कहते, "तुम बच्चे को नहीं पीटती हो, मुझे पीटती हो।"

हमारे तवेले में बहुत से मकान थे। यदि किसी ग़रीब आदमी को कहीं मकान न मिलता तो लाला जी उसे तवेले के मकानों में से कोई दे देते थे।

एक दफा विद्यालय में कोई चोर आ गया और पकड़ा गया। लाला जी उसे घर पर ले आए। उसे नहलाया-धुलाया, खिलाया-पिलाया गया और कुछ दिन रख

कर छोड़ दिया गया। बहुत वर्षों तक वह व्यक्ति हमारे घर कोई न कोई मौसमी फल भेजता रहा।

लाला जी को सब्ज़ी बनाने का शौक था। बहुधा वे सबके लिए एक सब्ज़ी स्वयं बनाते थे। अदरक और दाख की सब्ज़ी उन की मनभाती सब्ज़ी थी।

अपनी मृत्यु से पहले, कई दिनों तक लाला जी विद्यालय नहीं गए थे। वे किसी बात पर ज़रा नाराज़ थे। परन्तु मृत्यु के दिन वे विद्यालय गए और सब कहीं घूम फिर कर आए। उसी रात को उनकी अचानक मृत्यु हो गई।

(सम्बंधित विषयों से लेखक की पूरी जानकारी के अभाव में आगे के तीन अध्याय श्री सत्यपाल धीर द्वारा लिखे गए—लेखक—)

: 19 :

विद्यालय का वर्तमान रूप

1886 में एक नन्हे पौधे के रूप में स्थापित कन्या महाविद्यालय अब तक विशाल वट वृक्ष का रूप धारण कर चुका है। परिस्थितियां बदलती रहीं और साथ ही साथ धीरे धीरे संस्था का रूप भी परिवर्तित होता रहा।

1935 में संस्था के संस्थापक ला. देवराज जी का निधन हो गया। स्नातिका कोर्स के लिए छात्राएं मिलनी कठिन हो गई थीं, इस लिए प्राईवेट रूप में युनिवर्सिटी कोर्स के अनुसार छात्राओं को परीक्षाएं दिलाने का कार्यक्रम भी आरम्भ हो गया, रत्न, भूषण, प्रभाकर आदि की तैयारी भी संस्था में करवाई जाने लगी। प्रसिद्ध हिन्दी अध्यापक पं. चेतराम जी शर्मा का योग-दान इस दिशा में सराहनीय रहा।

1941 में द्वाबा कालेज खुला और क. म. विद्यालय में द्वाबा कालेज का गर्ल्ज़ सैक्शन खुला जिस से छात्राओं को यूनिवर्सिटी परीक्षाओं में बैठने की सुविधा हो गई। 1945 में कन्या महाविद्यालय स्वतंत्र रूप में पंजाब युनिवर्सिटी के साथ सम्बन्धित हो गया और आर्टस विषय ले कर छात्राएं परीक्षाओं में बैठने लगीं।

द्वाबा कालेज के सहयोग से विज्ञान की शिक्षा का भी आरम्भ हो गया। 1952 से कन्या महाविद्यालय में ही प्रयोगशालाएं बन गईं तथा रसायन-शास्त्र, भौतिक-विज्ञान, जीव-विज्ञान और वनस्पति-शास्त्र की शिक्षा सुचारू रूप से दी जाने लगी।

1971 से कन्या महा विद्यालय गुरु नानक देव विश्व विद्यालय से सम्बन्धित है। संस्था निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर रही जिसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि जहां 1941 में कालेज छात्राओं की संख्या कुल 50 थी वहां अब लगभग 1700 के है। होस्टल में छात्राओं की संख्या जहां 1941 में (स्कूल की छात्राओं को मिलाकर) 75 थी, अब 600 के लगभग है। इस समय 60 अध्यापक और अध्यापिकाएं विद्यालय-स्टाफ पर हैं।

इस समय विद्यालय में बी. ए. तक आर्टस के प्राय: सब विषयों अर्थात् अंग्रेज़ी

हिन्दी, संस्कृत, गणित, इतिहास, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, दर्शन-शास्त्र, संगीत, ललितकला, गृह-विज्ञान तथा मनोविज्ञान आदि की पढ़ाई का प्रबंध है। मनोविज्ञान तथा गृह-विज्ञान विषयों की छात्राओं में दाखिले केलिए होड़ लगी रहती है। पढ़ाई के लिए विशाल प्रयोग-शालाएं हैं। संगीत तथा ललित कला के लिए अलग सुसज्जित कक्ष हैं। पिछले वर्ष विभिन्न उत्सवों में पधारने वाले विशेष अतिथियों को विद्यालय की छात्राओं द्वारा बनाई गई कलाकृतियां भेंट की गईं।

अंग्रेजी, हिन्दी और पंजाबी में आनर्ज़ श्रेणियों का प्रबंध है। हिन्दी, संगीत अंग्रेजी, राजनीति शास्त्र तथा गणित में एम. ए. की श्रेणियां हैं। हिन्दी एम. ए. की श्रेणियां तो 1951 में ही खुल गई थीं। बाद में भौतिक और वाद्य-संगीत की श्रेणियां तथा क्रमश: अंग्रेजी, राजनीति-शास्त्र और गणित में एम. ए. तक की पढ़ाई का प्रबंध किया गया।

विज्ञान की शिक्षा के लिए आठ सुसज्जित प्रयोग-शालाएं हैं और इस समय प्री-युनिवर्सिटी साईंस, प्री-मैडीकल, बी. एस. सी भाग I, II, III, मैडीकल तथा तथा नान-मैडिकल की श्रेणियां चल रही हैं। प्री-युनिवर्सिटी और प्री-मैडीकल में तो दाखिले के समय इतनी छात्राएं आ जाती हैं कि बहुत-सी छात्राओं को निराश हो कर लौटना पड़ता है।

यही हाल छात्रावास का है। दाखिले के दिनों में एक सप्ताह के अन्दर ही प्राय: सब सीटें भर जाती हैं और देर से आने वाली छात्राओं को निराश लौटना पड़ता है। छात्रावास में छात्राओं की सुविधा का विशेष ध्यान रखा जाता है। एक विशाल भोजन-शाला, प्रार्थना-भवन तथा आधुनिक बाथ-रूम छात्रावास की विशेषताएं हैं। दूसरी मंज़िल पर अधिक हवादार कमरे बना लिये गये हैं। छात्रावास में ही एक डिस्पैंसरी तथा रोगीशाला की भी व्यवस्था है। पानी की आवश्यकता दो ट्यूबवैलों द्वारा पूरी की जाती है।

होस्टल में रहने वाली छात्राओं की सुविधा के लिए कालेज में ही एक दुकान है जहां पुस्तकें, कापियाँ, स्टेशनरी, नहाने और कपड़े धोने का साबुन तथा अन्य आवश्यक सामग्री बाजार के भाव पर ही मिलती है। आरम्भ में यह बुक-डिपो एक प्रकाशन-संस्था थी जहां लाला देवराज की रचित पुस्तकों का प्रकाशन किया जाता था, अब इसने एक आधुनिक स्टोर का रूप धारण कर लिया है।

छात्राओं के खेलने के लिए कालेज भवन के दोनों ओर दो विशाल मैदान हैं, जिन में हाकी वाली-बाल, बास्केट-बाल और क्रिकेट आदि खेलने की व्यवस्था है। बास्केट-बाल के लिए एक पक्का कोर्ट सरकारी सहायता से तैयार किया गया है और खेल विभाग में बास्केट-बाल के खिलाड़ियों को विशेष प्रोत्साहन देने के लिए कालेज में बास्केट-बाल

विंग की स्थापना की गई है। यहां की छात्रायें यूनिवर्सिटी खेलों में भाग लेती हैं और विशेष स्थान प्राप्त करती हैं।

इस के अतिरिक्त कालेज में N- C. C. का युनिट भी है। जालन्धर के कालेजों से चुनी जा कर यहां की छात्राएं दिल्ली में गणतन्त्र दिवस की परेड में भाग लेती रही हैं और Best Cadet चुनी जाती रही हैं। लोक-सेवा की भावना छात्राओं में जीवित रखने के लिए N. S. S का यूनिट भी कालेज में कार्य-रत रहता है।

कालेज में एक आधुनिक तरन-ताल (Swimiming Pool) भी है जहां युनिवर्सिटी की ओर से छात्राओं की प्रतियोगिताएं होती रहती हैं। पिछले कुछ वर्षों के कन्या महाविद्यालय की छात्रा ही सर्वोत्तम तैराक का सम्मान प्राप्त करती रही है।

शहर तथा आसपास के गांवों से आने वाली छात्राओं की सुविधा के लिए कालेज की दो अपनी बसें हैं जो जालन्धर छावनी तथा मॉडलटाऊन आदि के निवासियों की मांग पर चलाई गई थीं। जनता की ओर से अभी तक यह मांग की जा रही है कि एक बस और चलाई जाये।

छात्राओं की सुविधा के लिए एक विशाल कैंटीन है जहां शहर से आने वाली छात्राओं के आराम करने का भी प्रबन्ध है। बाज़ार के भाव पर ही खाने-पीने की चीज़ें तथा दूध, फल चाय आदि यहां उपलब्ध रहते हैं। अध्यापिकाओं की एक समिति इस की देखभाल करती है।

विद्यालय में दो-मंज़िला एक स्टाफ़-होस्टल भी है जिस में खेल-विभाग की अध्यापिकाओं के निवास की ही व्यवस्था है। प्रबन्धकर्तृ सभा द्वारा बनाये गये नियमों का पालन करने वाली अध्यापिकाएं ही यहां रह सकती हैं।

इस प्रकार विद्यालय हर क्षेत्र में प्रगति की ओर अग्रसर है। यूनिवर्सिटी परीक्षा परिणामों, खेलों तथा अन्य कार्य-क्रमों में यहां की छात्राएं बढ़-चढ़ कर भाग लेती हैं और हर वर्ष अनेक ट्राफियां तथा पदक प्राप्त करती हैं।

: 20 :

आर्य–शिक्षा–मण्डल की स्थापना

जैसा कि पूर्व अध्यायों में वर्णित किया जा चुका है कि कन्या महा विद्यालय की स्थापना एक कन्या पाठशाला के रूप में सन् 1886 में हो गई थी।

सन् 1897 तक इस का प्रबन्ध लाला देवराज जी, लाला मुन्शीराम जी तथा उनके कुछ सहयोगी करते रहे। 1897 में इस संस्था के प्रबन्ध म आर्य समाज का सक्रिय सहयोग लेने के लिए 'कन्या महा विद्यालय मुख्य-सभा' बनाई गई जिस में आजीवन सदस्यों के अतिरिक्त विभिन्न आर्य समाजों के प्रतिनिधि तथा पंजाव, यू० पी०, राजस्थान, बंगाल और बम्बई की आर्य-प्रतिनिधि-सभाओं के प्रधान भी प्रतिष्ठित सदस्य बनाये गये। मुख्य-सभा तथा प्रबन्धकर्तृ सभा के विधान भी बने जिन में समय-समय पर संशोधन होते रहे। मुख्य-सभा के सदस्यों के रूप में प्रो० रामदेव, पं० बुद्धदेव विद्यालङ्कार तथा आचार्य प्रियव्रत जैसे प्रसिद्ध आर्य समाजी विद्वान् भी पधारते रहे।

1940 में संस्था के प्रधान रा० ब० दीवान बदरीदास जी, स्वर्गीय लाला बृन्दाबन जी सोंधी तथा स्वर्गीय लाला अच्छरूराम जी ने लड़कों का एक कालेज जालन्धर में खोलने की योजना बनाई। इस में सब से बड़ी अड़चन यह थी कि कन्या महाविद्यालय की मुख्य-सभा के विधान के अनुसार केवल लड़कियों की शिक्षा के प्रचार और प्रसार के लिए ही संस्थाएं खोली जा सकती थीं और यह भी स्पष्ट उल्लेख था कि लड़कियों की शिक्षा के लिए केवल निम्न प्रकार की संस्थाएं ही खोली जा सकेंगी—

(क) विद्यालय और उस की शाखाएं
(ख) कन्या-आश्रम
(ग) अनाथालय
(घ) विधवा-भवन

इस अड़चन को दूर करने के लिए मुख्य-सभा के विधान में 16 जून 1940 को संशोधन किया गया और एक नई धारा जोड़ ली गई जिस में यह अंकित था कि

'मुख्य-सभा यदि उचित समझे तो लड़कों के लिए शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना भी कर सकती है'। तदनुसार 1941 में द्वाबा कालेज की स्थापना हुई। द्वाबा कालेज की स्थापना के लिए किये गये प्रयासों में स्वर्गीय लाला वृन्दावन जी सोंधी का योगदान नहीं भुलाया जा सकता, जिन्होंने इस संस्था के लिए हज़ारों रुपया दान दिया और इकट्ठा भी किया।

इधर पश्चाव में आर्य समाज के गुरुकुल पक्ष की अनेक संस्थाएं खुल गई थीं। आर्य-प्रतिनिधि-सभा पंजाब के अधिकारी उसे एक अलग संगठन के अधीन संगठित करना चाहते थे और जालंधर की इन संस्थाओं को भी इस प्रकार सभा के नये संगठन में लाना चाहते थे।

इस पर बहुत विचार करने के उपरान्त रा० ब० बदरीदास जी, महाशय कृष्ण जी, श्री विशम्बरदास जी तथा पंडित ठाकुर दत्त वैद्य, अमृतधारा वाले आदि महानुभावों ने एक नया संगठन 'आर्य शिक्षा मण्डल' के नाम से बनाने की योजना बनाई, जिस का विधान रजिस्टर्ड करवाया गया तथा चार सदस्यों के रूप में रा० ब० बदरीदास जी, श्री वृन्दावन जी सोंधी, श्री ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य तथा श्री नोतन दास गम्भीर ने हस्ताक्षर किये।

आर्य-प्रतिनिधि-सभा पंजाब की अन्तरंग सभा ने प्रस्ताव संख्या दिनांक 6-5-44 द्वारा यह निर्णय किया कि "यह सभा आर्य शिक्षा मण्डल के विधान को स्वीकार करती है और सभा से सम्बन्धित समाजों, व्यक्तियों और संस्थाओं को आदेश देती है कि वे अपने शिक्षणालयों का संचालन (सम्पत्ति विषयक आवश्यक निर्णय के बाद) इस मण्डल के अधीन कर दें। सभा द्वारा संचालित इस प्रकार के शिक्षणालयों का संचालन भी (सम्पत्ति विषयक आवश्यक निर्णय के बाद) इस मण्डल के अधीन किया जाये।

आर्य-प्रतिनिधि-सभा की साधारण सभा दिनांक 28-5-44 में यह सिफारिश पंडित भीमसेन जी मंत्री ने प्रस्तुत की और सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि

1. आर्य-शिक्षा-मण्डल स्थापित करना स्वीकार है,
2. इस के प्रस्तावित उद्देश्य स्वीकार हैं।

आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा दिनांक 1-7-44 के प्रस्ताव संख्या 3 अ में.....सर्व-सम्मति से निश्चय हुआ कि आर्य शिक्षा मण्डल के.....उद्देश्य तथा नियम स्वीकार हैं। इस के अनुसार कार्य आरम्भ कर दिया जाए।'

इस प्रकार आर्य-शिक्षा मण्डल की स्थापना हुई इस के आदरी सदस्यों में, आर्य-सार्वदेशिक-सभा के प्रधान, आर्य-प्रतिनिधि-सभा पंजाब के प्रधान तथा मन्त्री तथा यू. पी., राजस्थान, बंगाल, बम्बई, हैदराबाद दक्षिण, सिंध तथा बिहार की आर्य प्रतिनिधि सभाओं के प्रधान भी सदस्य बनाये गये। इस के विधान में अंग्रेज़ी,

साईंस, आर्टस, डाक्टरी, इंजनीयरिंग तथा आयुर्वेद आदि की शिक्षा देना भी अंकित किया गया। पंडित विशम्बरदास जी की मृत्यु, आर्य प्रतिनिधि सभा के अधिकारियों की परिवर्तित नीति, आर्य शिक्षण-संस्थाओं की स्थानीय प्रबंधक समितियों के विरोध तथा देश के विभाजन आदि के कारण शिक्षा-मण्डल के विधान के निर्माताओं का स्वप्न पूरा न हो सका। द्वाबा कालेज और कन्या महाविद्यालय तो तुरन्त शिक्षा मण्डल के अधिकार में आ गए परन्तु सभा से सम्बंधित संस्थाओं ने ऐसा करना उचित न समझा। बाहर की केवल दो संस्थाएं अर्थात् डी. ए. वी. हाई स्कूल गुड़गांव तथा बी. एल. वैदिक गर्ल्ज़ हाई स्कूल अबोहर ही इससे सम्बंधित हुए और वह भी नाममात्र। इस समय शिक्षा मण्डल के अधीन निम्नलिखित संस्थाएं हैं—

1. कन्या महाविद्यालय, जालन्धर
2. द्वाबा कालेज, जालन्धर
3. देवराज गर्ल्ज़ हायर सैकण्डरी स्कूल, जालन्धर
4. देवराज मॉडल स्कूल, जालन्धर
5. जालन्धर मॉडल स्कूल, जालन्धर

निम्न दो संस्थाएं इस से सम्बंधित हैं—

1. डी. ए. वी. हाई स्कूल, गुड़गांव,
2. बी. एल. वैदिक गर्ल्ज़ हाई स्कूल, अबोहर।

शिक्षा मण्डल के अधिकारियों का चुनाव हर तीन वर्ष के बाद होता है। नया चुनाव 1981 में होगा। इस समय शिक्षा मण्डल के 52 सदस्यों में से तीस आजीवन सदस्य हैं, वर्तमान अधिकारियों के नाम निम्नलिखित हैं—

प्रधान—सेठ सत्यपाल जी, एम. ए.,
उप-प्रधान—श्री वीरेन्द्र जी, एम. ए.,
—कुमारी लज्जावती जी,
—सेठ शिवचन्द जी अग्रवाल,
महामन्त्री—श्री रामचन्द्र जी जावेद, एम. ए. बी. टी.,
मन्त्री—श्री यशराज जी अग्रवाल,
कोषाध्यक्ष—श्री बलबीर राज जी सोंधी।

अन्तरंग सभा के सदस्य

1. श्री देवदत्त जी पुरी
2. श्री चतुर्भुज जी मित्तल
3. श्री योगेन्द्रपाल जी सेठ
4. श्री सोहनलाल जी पुरी
5. श्री रोशनलाल जी गुप्ता
8. श्रीमती मायादेवी जी टण्डन
9. श्री नकुलसैन जी सोंधी
10. श्री रामलाल जी गुप्ता
11. डा० चमन लाल जी कपूर
12. प्रिंसीपल कन्या महाविद्यालय

6. श्रीमती प्रकाशवती जी गुप्ता
7. श्रीमती राजलक्ष्मी जी
13. प्रिंसीपल द्वाबा कालेज
14. प्रिंसीपल देवराज गर्ल्ज़ हायर सैकण्डरी स्कूल

शिक्षा-मण्डल का अधिवेशन हर वर्ष मई में होता है, जिस में सम्बंधित संस्थाओं का वार्षिक हिसाब-किताब प्रस्तुत किया जाता है। संस्थाओं की प्रबन्ध-कृर्तृ-सभाओं का चुनाव शिक्षा मण्डल के सदस्यों में से किया जाता है। 1978 से शिक्षा-मण्डल का कार्यालय कन्या-महाविद्यालय में स्थापित किया गया है।

प्रो० सत्यपाल धीर जो 1940 में विद्यालय की सेवा में आए थे, इस समय कार्यालय-मन्त्री के रूप में कार्य कर रहे हैं।

—×—

: 21 :

विद्यालय के अब तक के प्रिंसीपल

जब तक विद्यालय में स्नातिका का पाठ्यक्रम चलता रहा विद्यालय के प्रिंसीपल आचार्य या आचार्या कहलाते रहे। इस क्रम में 1935 तक क्रमशः लाला देवराज जी, श्रीमती सावित्री देवी, कु० लज्जावती, श्रीमती शन्नोदेवी, श्रीमती शान्ताबाई ने आचार्या-पद को सुशोभित किया।

1941 में द्वाबा कालेज खुलने के बाद आचार्या के स्थान पर विद्यालय की प्रमुख को प्रिंसीपल कहा जाने लगा। इस प्रकार विद्यालय की सब से पहली प्रिंसीपल कु० लज्जावती जी थीं जिन्होंने 1935 से 1965 तक प्रिंसीपल के रूप में कार्य किया।

मार्च 65 में उन के रिटायर होने के बाद प्रिंसीपल के पद को 1-4-65 को डा० रामप्यारी जी शास्त्री ने सुशोभित किया। आप विद्यालय की भूतपूर्व छात्रा तथा अत्यन्त ही सौम्य स्वभाव तथा धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं। अपने त्याग-भाव के कारण उन्होंने अपने कार्य-काल में कभी भी पूरा वेतन नहीं लिया। उन्होंने विद्यालय की सेवा 7-7-66 तक की और बाद में वे ऋषिकेश तथा ज्वालापुर जाकर तपस्या में लीन हो गईं।

8-7-66 से 30-6-67 तक पं० शादी राम जी जोशी संस्कृत प्राध्यापक, कार्यवाहक प्रिंसीपल के रूप में कार्य करते रहे। आप 1944 में विद्यालय की सेवा में आये थे और 1968 में संस्कृत प्राध्पापक के रूप में ही रिटायर हुए।

1-7-67 को प्रिंसीपल का कार्य-भार कु० कमला खन्ना ने संभाला। आप आर्य समाजी परिवार से थीं तथा उन्होंने बी० ए० तक कन्या महाविद्यालय में ही शिक्षा प्राप्त की थीं। आप कुछ समय तक देवराज गर्ल्ज स्कूल में मुख्याध्यापिका रहीं, विद्यालय में हिन्दी प्राध्यापिका के रूप में भी आपने कार्य किया तथा 7-6-61 तक विद्यालय का प्रिंसीपल रहीं। आजकल आप स्थानीय हंस राज महिला कालेज की प्रिंसीपल हैं।

इन के बाद फिर किसी योग्य प्रिंसीपल की तलाश आरम्भ हो गई। हिमाचल के शिक्षा विभाग की निर्देशिका कु० कृष्णा पसरीचा से पत्र-व्यवहार चलता रहा।

दिसम्बर 1969 में यह बात निश्चित हुई कि मिस पसरीचा जनवरी 1970 के आरम्भ में कार्य-भार संभाल लेंगी। इस परिस्थिति में प्रबन्धकर्तृ-सभा ने कार्य-वाहक प्रिंसीपल का कार्य प्रो० सत्यपाल धीर, अध्यक्ष स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग को सौंपा। आप 1940 में विद्यालय की सेवा में आये थे और 1954 से निरन्तर अध्यापन-कार्य कर रहे थे। इन्होंने यह कार्य 4-10-70 तक अर्थात् प्रिंसीपल पसरीचा के आने तक निभाया।

मिस कृष्णा पसरीचा जो अनेक वर्षों तक सरकारी कालेजों में प्रोफैसर तथा प्रिंसीपल रहीं, हिमाचल प्रदेश की शिक्षा-निर्देशिका के पद से रिटायर हो कर प्रिंसीपल का काम करने को सहमत हो गईं। आप विद्यालय की भूत-पूर्व छात्रा भी थीं, इसलिए अत्यन्त ईमानदारी तथा लग्न से 31-12-77 तक इस पद पर सुशोभित रहीं।

1-1-78 को कुमारी आ. कमला ने प्रिंसीपल का कार्य-भार सम्भाला। आप 1942 से 1965 तक विद्यालय में कार्य कर चुकी थीं और सोनीपत में प्रिंसीपल बन कर विद्यालय की सेवा से मुक्त हुई थीं। बाद में लगभग 12 वर्ष तक आप सहारनपुर में प्रिंसीपल रहीं। दुर्भाग्य से यहां आने पर आपका निधन 13-8-78 को हो गया।

नई प्रिंसीपल के आने तक मिसेज़ उमा दादा, अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग ने कार्यवाहक प्रिंसीपल के रूप में कार्य किया। 16-11-78 को मिसेज पुरी ने प्रिंसीपल का कार्यभार सम्भाला। आप बटाला के लड़कियों के डी. ए. वी. कालेज में लगभग 12 वर्ष प्रिंसीपल रहीं। आशा है विद्यालय इन की देख-रेख में निरन्तर प्रगति के पथ पर बढ़ता रहेगा।

—×—